प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप मे प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी मे इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य-पुस्तके उपलब्ध नही होने से यह माध्यम-परिवर्तन नही किया जा सकता था। परिणामत भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए "वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत पीछे १९६९ मे पांच हिन्दी भाषी प्रदेशो मे ग्रन्थ अकादमियो की स्थापना की गयी।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी मे विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ-निर्माण मे राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानो तथा अध्यापको का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्राय. सभी क्षेत्रो मे उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थो का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्त तक तीन सौ से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते है। प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम मे तैयार करवायी गयी है। हमे आशा है कि यह अपने विषय मे उत्कृष्ट योगदान करेगी।

चंदनमल वैद
अध्यक्ष

स.ही. वात्स्यायन
निदेशक

परिचय

कच्छवाह वश का इतिहास बहुत विशद एव महत्वपूर्ण है, परन्तु इसका वर्णन अपेक्षाकृत थोडा मिलता है। डा० भटनागर ने "सवाई जयसिंह" नामक पुस्तक को प्रस्तुत कर एक बहुत बडी कमी की पूर्ति की है। सवाई जयसिंह का जीवन एक ऐसे उथल-पुथल की कहानी है जिसमे मुगल राज अपनी अन्तिम सास ले रहा था, सैयद भाई अपने प्रभाव को बढाने के प्रयत्न मे लगे हुए थे और मराठा सरदार उत्तरी भारत के अभियान के ताने बाने बुन रहे थे। इस जीर्ण-शीर्ण मुगल व्यवस्था, दरबारी हलचल तथा मराठा-उत्कर्ष के बीच अपना राजनीतिक अस्तित्व बनाए रखना जयसिंह के लिए एक समस्या थी। भाग्यवश उसने अपने अदम्य साहस, कूटनीति, दूरदर्शिता और अद्भुत व्यक्तित्व से भारतीय राजनीति मे अपने लिए एक उचित स्थान बनाया। महाराणा राजसिंह की मृत्यु के उपरान्त उत्पन्न होने वाली राजस्थान की विषम स्थिति को उसने फिर से सभाला और जयपुर राज्य को प्रतिभा सम्पन्न बनाया।

इन विभिन्न पक्षो को छूते हुए विद्वान् लेखक ने १२ अध्यायो मे सवाई जयसिंह के जीवन और नीति का विश्लेषण किया है। इसमे यथा स्थान एतद् कालीन शासन-व्यवस्था तथा विज्ञान, कला, साहित्य आदि क्षेत्रो की प्रगति का समुचित समावेश किया है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमे लेखक ने तथ्यपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए मौलिक ग्रन्थो को प्राधान्यता दी है। फरमान, फारसी ग्रन्थ तथा अन्य उपयोगी राजस्थानी साधन सामग्री का भी यथा साध्य प्रयोग करने से इस ग्रन्थ की उपयोगिता बढ गई है। सरल भाषा के प्रयोग से भावो को सहज-गम्य तथा स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया गया है। आशा है यह पुस्तक राजस्थान के इतिहास के अध्येताओ के लिए उपादेय सिद्ध होगी।

गोपीनाथ शर्मा
प्रोफेसर, इतिहास एव भारतीय सस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्राक्कथन

अट्ठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे आबेर के महाराजा सवाई जयसिंह की देश के सर्वाधिक प्रसिद्ध व प्रभावशाली व्यक्तियो मे गणना की जाती थी। यह परिवर्तन का युग था। इस काल मे मुगल साम्राज्य का तीव्र गति से ह्रास हुआ और मराठो का देश की सबसे बडी शक्ति के रूप मे उदय हुआ। जयसिह ने राजनैतिक क्षेत्र मे आकस्मिक परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली अराजकता को रोकने का भरसक प्रयत्न किया और इस परिवर्तन की गति व दिशा को प्रभावित किया। वास्तव मे जयसिंह देश के उन गिने चुने व्यक्तियो मे था जो मराठो के उत्थान के मूल कारणो और मराठा अभ्युदय की प्रकृति को भली-भाति समझते थे। उसकी मराठा-नीति निस्सदेह उसकी दूरदर्शिता का प्रमुख प्रमाण है।

सवाई जयसिंह का उत्कर्ष १७१३ ई० से आरम्भ हुआ और १७२० ई० के वाद उसका प्रभाव अबाध गति से बढता गया। उसके विचारो व दृष्टिकोण को सतारा, पूना, दिल्ली व हैदराबाद आदि सभी जगह महत्व दिया जाता था। राजपूताने मे ऐसा कोई राज्य नही था जहा के शासक उसकी सहायता अथवा सम्मति के बिना अपना कार्य करते थे। बुन्देलखण्ड की रियासतो व नरवर के शासक के साथ उसके घनिष्ठ सम्वन्ध थे और वे सदा अपनी आन्तरिक समस्याओ के बारे मे उसकी सलाह लेते थे। मुगल दरबार मे उसका असाधारण प्रभाव था। देश के सभी छोटे बडे राजा, मुगल अफसर व दूर-सुदूर के विद्वान उसके साथ सम्पर्क रखते थे और उसकी मैत्री की कामना करते थे। अपने जीवन-काल मे वह सात बादशाहो, तीन प्रमुख पेशवाओ व तीन महाराणाओ के सम्पर्क मे आया था। छत्रसाल बुन्देला, निजाम-उल-मुल्क, राजा गिरधर बहादुर, खानदौरा आदि के साथ उसके घनिष्ठ सम्बन्ध रहे थे। वह तीन वार मालवा का तथा आगरा व अजमेर का भी सूवेदार रहा।

जयसिंह अपने समय के सवसे योग्य, चतुर व प्रभावशाली व्यक्तियो मे से ही नही था अपितु वह अपनी विद्वत्ता व विद्यानुराग के लिए भी देश भर मे प्रसिद्ध था। उसने जयपुर नगर को, जिसकी उसने १७२७ ई० मे स्थापना की थी, उस अराजकता के काल मे भी देश मे संस्कृत साहित्य व सिद्धान्त ज्योतिष का सवसे वडा केन्द्र बना दिया। जयपुर के अलावा भी उसने ४ अन्य स्थानो पर वेधशालाएँ वनवाई, देश-विदेश से खगोलशास्त्र सवधी पुस्तके व यन्त्रों के बारे मे सूचना एकत्रित की और ग्रह-नक्षत्र संवधी अनेक ग्रंथ व सारणियां तैयार करवाई।

आबेर राज्य के विस्तार का मुख्य श्रेय जयसिंह को ही है। यद्यपि यहा के राजवश के अनेक राजा, मुख्यत: राजा मानसिंह व मिर्जा राजा जयसिंह, मुगल सेवा मे सर्वोच्च पदो तक पहुँच सके थे और उन्होने असाधारण ख्याति व सम्मान प्राप्त किए थे, तथापि सवाई जयसिंह के राज्यारोहण के पूर्व आबेर राज्य बहुत छोटा था। आबेर का विस्तार जिन परिस्थितियो मे व जिस भाति सभव हो सका, उसका विवरण इस कृति के ग्यारहवे अध्याय मे है। इसी अध्याय मे जयसिंह की शासन-व्यवस्था के बारे मे भी विस्तार से लिखा गया है।

जयसिंह पर अबतक कोई स्वतत्र ग्र थ नही लिखा गया है। इस कारण उसकी नीतियो व चरित्र के बारे मे अनेक भ्रातिया है। यदि डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने अन्य राजपूत राज्यो के साथ जयपुर का इतिहास भी लिखा होता तो निश्चय ही वे जयसिंह की नीति व कार्यों के अध्ययन के लिए आवश्यक आधार सामग्री एकत्रित कर लेते। कर्नल जेम्स टॉड ने भी जयसिंह के बारे मे कुछ ही पृष्ठ लिखे है। कविराजा श्यामलदास ने 'वीर विनोद' मे मेवाड का इतिहास लिखते हुए जयसिंह की नीति व कार्यो से सबधित कुछ महत्वपूर्ण पत्र दिए है। उनका इस पुस्तक मे उपयोग किया गया है। 'वंश भास्कर' मे जयसिंह के बू दी-कोटा के साथ सबधो का विस्तृत वर्णन मिलता है परन्तु उसकी अन्य नीतियो व कार्यो के बारे मे आशिक जानकारी ही मिल पाती है। फारसी तवारीखो मे जयसिंह के बारे मे उपलब्ध सूचना अपर्याप्त ही नही भ्रमात्मक भी है। मराठी पत्रो मे जयसिंह के मराठो के साथ सबधो के बारे मे महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है परन्तु वह एक पक्षीय ही है। कुछ परवर्ती ग्र थो मे, विशेषकर श्री विलियम इरविन, सर जदुनाथ सरकार, डा० दिघे, डा० सतीशचन्द्र के ऐतिहासिक शोध से परिपूर्ण ग्रन्थो मे जयसिंह के प्रभाव व महत्व के बारे मे अनेक स्थलो पर उल्लेख है परन्तु उनसे उसकी नीतियो व कार्यो के विभिन्न पहलुओ व गति-विधियो पर पर्याप्त प्रकाश नही पडता है। डा० मथुरालाल शर्मा कृत जयपुर राज्य के इतिहास मे जयसिंह पर जो अध्याय उन्होने लिखे है उनसे भी जयसिंह पर एक स्वतत्र रचना की आवश्यकता की पूर्ति नही होती है।

यह पुस्तक प्रमुख रूप से राजस्थान अभिलेख सग्रहालय, बीकानेर मे समकालीन पत्रो, ड्राफ्ट खरीतो, वकील रिपोर्ट्स, अहलकारो के पत्रो, अखबारात, फरमान व निशान, बहियो, वकाया, दस्तूर कोमवार कागजात व प्रशासन सबधी विभिन्न प्रकार के कागजातो पर आधारित है। परन्तु निस्सन्देह टॉड, श्यामलदास, ओझा, इरविन, जी० एन० शर्मा, सतीशचन्द्र आदि की विद्वत्तापूर्ण कृतियो के बिना यह पुस्तक लिखना कही अधिक कठिन होता। लेखक इन विद्वानो व अन्य ग्र थकर्ताओ का, जिनके ग्र थो से इस पुस्तक के लिखने मे सहायता मिली है और जिनके नाम यथाप्रसग टिप्पणो मे दिए गए है, अत्यन्त अनुगृहीत है।

पुस्तक मे टिप्पण सक्षेप मे ही दिए गए है परन्तु उनसे सामग्री के स्रोत के बारे मे मोटे तौर से जानकारी अवश्य मिल जाएगी। पाठको की सुविधा के लिए हिजरी व विक्रम सवत की तिथियो को ईसवी सवत की तिथियो मे परिवर्तित कर दिया है। राजस्थान के कुछ राज्यो मे राज का सवत श्रावण कृष्ण प्रतिपदा से बदलता था परन्तु राजकीय अभिलेख व पत्रो मे कही-कही चैत्रादि और कही श्रावणादि संवत भी प्रयुक्त किया गया है अतएव श्रावणादि को चैत्रादि सवत मे बदल कर ईसवी सवत मे प्रयुक्त किया है। इसके लिए इन्डियन एफिमरिज (मद्रास १९२२ ई०) प्रयुक्त की गई है।

पुस्तक की लेखन शैली मे कुछ स्थलों पर विवेचनात्मकता का अभाव दृष्टिगोचर होगा। परन्तु जयसिह के जीवन, नीतियो व कार्यो के बारे मे अपर्याप्त जानकारी को देखते हुए उसका क्रमबद्ध प्रमाणिक जीवन-वृत्त व सबंधित घटनाएं देने पर अधिक महत्व दिया गया है। आशा है, अनेक कमियो के बावजूद भी यह पुस्तक उत्तर-मुगल कालीन व राजपूताने के अट्ठारहवी शताब्दी के इतिहास के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

लेखक राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० मथुरालाल शर्मा का बहुत कृतज्ञ है जिनके निर्देशन मे उसने राजपूताने के अट्ठारहवी शताब्दी के इतिहास पर शोध कार्य किया था। राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास व भारतीय सस्कृति विभाग के वर्तमान अध्यक्ष प्रोफेसर डा० गोविन्दचद्र पाडे ने उसे यह पुस्तक लिखने का अवसर व हर सम्भव सहायता प्रदान कर बहुत अनुग्रहीत किया है। लेखक इसके लिए उनका बहुत कृतज्ञ है। वह विभाग के ही प्रोफेसर डा० गोपीनाथ शर्मा का भी बहुत कृतज्ञ है, जिन्होने पुस्तक की पाडुलिपि पढने की कृपा की और अनेक महत्वपूर्ण सुझाव देकर व परिचय लिखना स्वीकार कर उसे अनुग्रहीत किया। लेखक प्रोफेसर डा० सतीशचन्द्र व स्वर्गीय प्रो० नाथूराम खडगावत का भी बहुत कृतज्ञ है जिनसे उसे समय-समय पर सहायता मिलती रही। वह हिन्दी ग्रन्थ अकादमी के निदेशक श्री यशदेव शल्य के सौहार्द्र पूर्ण व्यवहार तथा ग्रन्थ को सुचारू रूप से छपवाने के लिए उनका बहुत आभारी है।

जयपुर
अप्रेल १९७२

वीरेन्द्रस्वरूप भटनागर

संकेत परिचय

अजाइब	अजाइब-उल्-आफाक़
अहवाल	अहवाल-उल्-खवाकीन
अथर अली	दि मुगल नोबिलिटी अण्डर औरंगजेब, अथर अली कृत
आशूब	तारीख-इ-शहादत-इ-फर्रूखसियर वा जुलूस-इ-मुहम्मदशाही
इरफान	इरफान हबीब कृत 'दि एग्रेरिअन सिस्टम ऑव् मुगल इंडिया'
इरविन	विलियम इरविन कृत 'लेटर मुगल्स'
इरादत	तजकिरा, इरादत खां कृत, (अनु० स्कॉट, हिस्ट्री ऑव् डेक्कन)
इ० ऐंटि०	इंडियन ऐंटिक्वेरी
उ० आ०	उदयपुर आरकाइव्ज़
ओझा, उदयपुर	गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत 'उदयपुर राज्य का इतिहास'
ओझा, जोधपुर	गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत 'जोधपुर राज्य का इतिहास'
ओझा, बीकानेर	गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत 'बीकानेर राज्य का इतिहास'
कानूनगो	कालिकारंजन कानूनगो कृत 'हिस्ट्री ऑव् दि जाट्स'
कामराज	'इबरतनामा'
कासिम	'इबरतनामा', मुहम्मद कासिम कृत
खफी खां	'मुंतखबुल्लुबाब'
ज० अख०	अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला
ज० आ०	जयपुर आरकाइव्ज
जो० आ०	जोधपुर आरकाइव्ज़
टॉड	जेम्स टॉड कृत एनल्स एण्ड एन्टिक्विटिज ऑव् राजस्थान'
डफ	जेम्स ग्रान्ट डफ कृत 'ए हिस्ट्री ऑव् दि मराठाज'
द० को०	दस्तूर कोमवार
दिघे	वी० जी० दिघे कृत 'पेशवा बाजीराव फर्स्ट एण्ड मराठा एक्सपेन्शन
नैणसी	मुंहता नैणसी री ख्यात
पार्टीज	सतीशचन्द्र कृत 'पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स एट दि मुगल कोर्ट १७०७–४०'
पेशवा दफ्तर	सिलेक्शन्स फ्रॉम दि पेशवा दफ्तर

प्रो० इं० हि० काग्रेस	प्रोसीडिंग्स ऑव् दि इंडियन हिस्ट्री काग्रेस
फा० प०	फारसी पत्र
फा० व० रि०	फारसी वकील रिपोर्ट्स
वाकीदास	ऐतिहासिक वाते
वालमुकुन्दनामा	मेहता वालमुकुन्द कृत 'वालमुकुन्दनामा', अनु० सतीशचन्द्र, पाडुलिपि
भगवानदास	'महाराजा छत्रसाल बुंदेला', भगवानदास कृत
भीमसेन	'नुस्खा-इ-दिलकुशा', भीमसेन कृत
मा० उ०	मआसिरुल-उमरा, समसमुद्दोला शाहनवाज खा कृत, वेवरिज व वेनीप्रसाद कृत अनुवाद
मा० आ०	मआसिर-इ-आलमगीरी, सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद
मालवा	रघुवीर सिंह कृत 'मालवा इन ट्राजीशन'
यह्या	तज़किरत-उल-मुलूक
यूसुफ हुसैन	निजाम-उल-मुल्क आसफज़ाह फर्स्ट
रा० आ०	राजस्थान आरकाइव्ज़
रे	एच० सी० रे कृत 'दी डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑव् नॉरदर्न इंडिया'
रेउ, ग्लोरीज	विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत 'ग्लोरीज़ ऑव् मारवाड़ एण्ड दि ग्लोरियस राठौरस्'
रेउ, मारवाड	विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत 'मारवाड का इतिहास'
वशभास्कर	सूर्यमल मिश्रण कृत 'वशभास्कर'
वीरविनोद	कविराजा श्यामलदास कृत 'वीरविनोद'
शर्मा, कोटा	मथुरालाल शर्मा कृत 'कोटा राज्य का इतिहास'
शर्मा, सोशल लाइफ	जी० एन० शर्मा कृत (१) सोशल लाइफ इन मिडीवल राजस्थान (२) राजस्थान स्टडीज
शिवदास	मुनव्वर उल कलाम
स० क० वॉ०	सरदेसाई कमोमोरेशन वॉल्यूम
सरकार, औरगज़ेब	जदुनाथ सरकार कृत 'हिस्ट्री ऑव् औरगज़ेब'
सरकार, फॉल	जदुनाथ सरकार कृत 'फॉल ऑव् दि मुगल एम्पायर'
सरदेसाई	जी० श्रे स० सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री ऑव् मराठा पीपुल'
सिन्हा	एच० अन० सिन्हा कृत 'राइज ऑव् दि पेशवाज'
सिअर	सिअर-उल्-मुताखिरीन
हिंगणे	हिंगणे दफ्तर

—:o:—

विषय-सूची

—:०:—

अध्याय १

जयपुर के इतिहास की पृष्ठभूमि

कछवाहो की उत्पत्ति; आंबेर के कछवाहों का नरवर के कच्छपघाटों से संबंध

सवाई जयसिंह का जन्म आंबेर के कछवाहा राजपूत वंश मे हुआ था। अनेक वंश-वृक्ष, भाटो व चारणो के वृत्तान्त व कुछ शिलालेखो के बावजूद भी कछवाहा राजवंश की उत्पत्ति के बारे मे निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। कछवाहा अपनी उत्पत्ति अयोध्या के भगवान राम के पुत्र कुश से मानते है। भाटो के पारम्परिक वृतान्तो के अनुसार कछवाहा पूर्व की ओर से पहले रोहतास आए और वही से इनकी एक शाखा नल के नेतृत्व मे पश्चिम की ओर बढी। इस प्रकार राजा नल ने नरवर बसाया[1]। यह भी कहा जाता है कि कच्छपक जाति को निकाल कर अपना राज्य स्थापित करने के कारण ये कच्छपघाट, कच्छपाहन, सामान्य बोलचाल मे कछवाहा, कहलाए। इनके कछवाहा कहे जाने का एक कारण यह भी बताया जाता है कि इनकी कुलदेवी कच्छपवाहिनी थी। सत्रहवी शताब्दी के कुछ अभिलेखो मे इन्हे कूर्मवंशी कहा गया है जिससे सामान्य बोलचाल मे ये कछवाहा कहलाए[2]। परन्तु इनके प्राचीन अभिलेखो मे न तो इन्हे सूर्यवंशी कहा गया है और न ही इनके पूर्व से नरवर आने का कोई उल्लेख है। उनमे इनकी शाखाओ के वंशधर का विरुद कच्छपघाट-वंश-तिलक, कच्छपघाटान्या-साराह-कमल-मार्तण्ड, दिया गया है। यद्यपि 'कच्छपघाट' व 'कछवाहा' शब्दो की व्युत्पत्ति 'कुश' से संभव नही है परन्तु इनकी एक शाखा का नरवर मे आकर बसना वीरसिंह के नलपुर महादुर्ग के विक्रम संवत् ११७७ के दानपत्र से ज्ञात होता है। अन्य अभिलेखो से भी ज्ञात होता है कि दसवी व ग्यारहवी शताब्दियो मे पूर्वी राजपूताने के समीप ही नरवर, ग्वालियर व दूबकुंड मे कच्छपघाट राजपूतो की शाखाएं राज्य कर रही थी[3]। संभवत इनके राजा कन्नौज के अधीन थे क्योकि यह प्रदेश गुर्जर प्रतिहारो के साम्राज्य मे था।

ग्वालियर शाखा के महीपाल का वि० सं० ११५० का सहस्रबाहु मंदिर का लेख कछवाहो के इतिहास के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। लेख मे लक्ष्मण को यहा

1. टाड 2, पृ. 280, नैणसी 1, पृ. 288, 292, 295।
2. काम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री आफ इंडिया, (दिल्ली 1970), 5, पृ. 836।
3. रे, 2, पृ. 821–22।

के राजवश का प्रथम शासक कहा गया हे । इसके अनुसार लक्ष्मण के पुत्र वज्रदामन ने ग्वालियर जीता । वज्रदामन के बाद मगलराज, कीर्तिराज (१०१५–३५ ई० के लगभग), मूलदेव, देवपाल, पदमपाल और महीपाल हुए[1] ।

ढोलाराय द्वारा ढूंढाड़ राज्य स्थापित करना : ढोला के समय के बारे मे तथ्य

भाटो के आवेर के कछवाहो के वृत्तान्त के अनुसार नरवर शाखा के सोढदेव ने, जो नल से ३३वा वशज था, अपने पिता के राज्य से निकाले जाने के बाद ९६६ ई० मे ढूढाड राज्य की स्थापना की थी[2] । लगभग इसी समय लक्ष्मण अथवा उसका पुत्र वज्रदामन, जिसका अवतक प्राप्त लेखो मे सबसे पहला लेख ९७७ ई० का हे, ग्वालियर मे राज्य कर रहे थे । परन्तु उन्ही के भाट राजपण ने नैणसी को जो वशावली लिखाई उसमे नल (क्र० स० १२१) के वशजो के नाम इस क्रम मे मिलते हैं—१२२. ढोला १२३. लक्ष्मण १२४. वज्रधाम (जिसने ग्वालियर वनवाया) १२५. मगलराय १२६. कतराय १२७ मूलदेव १२८ पदमपाल १२९. सूर्यपाल १३०. महीपाल और फिर उन्नीस नामो के बाद १५०. ईसर्सिह १५१. सोढदेव १५२. दूलहदेव "जिसने आवेर बसाया…. ।" उपर्युक्त सूची मे ढोला का नाम नल व लक्ष्मण के बीच मे आता है और देवपाल व सूर्यपाल को छोडकर लक्ष्मण से महीपाल तक के शासको के नाम इसी क्रम मे महीपाल के वि० स० ११५० के लेख मे मिलते है । नेणसी द्वारा दी गई दूसरी वशावली मे भी ढोला को नल का पुत्र बताया है और उसका नाम नल व लक्ष्मण के बीच मे दिया है[3] । जयपुर राजकीय अभिलेख सग्रहालय मे रखी कछवाहा वशावली मे भी ढोला का नाम नल के तुरन्त बाद ही मिलता है । उपयुक्त तथ्यो से यह निष्कर्ष निकलता है कि आबेर व ग्वालियर के कछवाहा नरवर के कछवाहा राजवश की ही शाखा मे हें । नल के तुरन्त बाद ढोला को ढूढाड आना पडा जहाँ उसने एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की । लगभग इसी समय लक्ष्मण ने ग्वालियर मे अपना राज्य स्थापित किया । यह भी निष्कर्ष निकलता है कि ढूढाड राज्य का सस्थापक दुलहाराम (क्र० स० १५२) के स्थान पर ढोला था और यदि ढूढाड राज्य की स्थापना का काल, जो भाटो ने दिया है, सही है तो इसका यह अर्थ हुआ कि आवेर के कछवाहो की वशावलियो मे लक्ष्मण से महीपाल तक के नाम होने ही नही चाहिए ।

---

1 इ ऐंटि., 15, पृ. 33–46, रे, 2, पृ. 822–28 ।

2 इसके बारे मे विभिन्न वृत्तान्त है । देखिये टाड 2, पृ 280-81, नैणसी 1, पृ. 293, 295 । कच्छवश महाकाव्य, सर्ग 3, श्लोक 10, कच्छवश महाकाव्य, सर्ग 3, श्लोक 10–23, जयवश महाकाव्य, सर्ग 1, श्लोक 13 ।

3 नैणसी 1, पृ. 289–90. 293 ।

कछवाहों का आंबेर पर अधिकार

अपनी मृत्यु से पहले ढोला राय ने बडगूजरो से दौसा (जयपुर के ३० मील दक्षिण-पूर्व मे) और मीनाओ से माची (जिसका नाम उसने रामगढ रखा), व खोह (जयपुर से पाच मील पूर्व) छीन लिये, व अलवर के निकट देवती किले पर भी अधिकार कर लिया। उसके पुत्र काकिल ने, जो १०३६ ई० मे गद्दी पर बैठा था, मीनाओ से आंबेर ले लिया[1]। यह स्थान लगभग ७०० वर्ष तक कछवाहा राजाओ की राजधानी रहा।

आंबेर द्वारा शाकम्भरी की सर्वोपरिता स्वीकार करना : पजवन के समय के बारे मे भ्रांति

इस समय साभर के चौहाण उत्तरी भारत की प्रमुख शक्ति के रूप मे विकसित हो रहे थे। इस कारण कछवाहो द्वारा शाकम्भरी की अधीनता स्वीकार किये जाने मे कोई आश्चर्य नही है। पजवन या प्रद्युम्न (ढोलाराय से पाचवा) को पृथ्वीराज का सामन्त बताया गया है[2]। उसका विवाह चौहाण शासक की भतीजी से हुआ था। परन्तु लगभग सभी भाटो, कवियो व इतिहासकारो ने पृथ्वीराज प्रथम को पृथ्वीराज तृतीय समझने की भूल की है और पजवन के तराई के प्रथम युद्ध मे अपूर्व वीरता प्रदर्शित करने व कन्नौज से सयोगिता को लाते समय पृथ्वीराज की रक्षार्थ मारे जाने का विस्तृत वर्णन किया है[3]। परन्तु पजवन को पृथ्वीराज तृतीय का समकालीन मान लेने से ढोला के बाद सारा तिथिक्रम, जो काफी सही प्रतीत होता है, एकदम गलत हो जाता है। वशावलियो मे जो पजून या पजवन का समय दिया है[4], वह पृथ्वीराज प्रथम के शासनकाल के बहुत निकट है और पृथ्वीराज तृतीय के समय से बहुत दूर। फिर भी उपरोक्त वंशक्रम को अधिकृत रूप से जानना अपेक्षित है।

कुन्तिल, मुहम्मद तुगलक का आक्रमण

बीच मे कुछ सामान्य शासक हुए। उनके पश्चात् १२७६ मे कुन्तिल आंबेर की गद्दी पर बैठा। ईसामी कुन्तिल के बारे मे ही उल्लेख करता है जब वह सुल्तान

1. टाड 2, पृ. 281–82, कच्छवशमहाकाव्य, सर्ग 3, श्लोक 24–30, 40, 49, 69, सर्ग 4, श्लोक 1–19 कूर्मविलास, पत्र 10–11।
2 नैणसी, 1, पृ 296।
3. जैसे टाट 2, 283–84, कच्छवशमहाकाव्य, सर्ग 4, श्लोक 86–94; जयवशमहाकाव्य, सर्ग 4, कूर्मविलास, पत्र 19, 21; नाथावतों का इतिहास, पृ 23, केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया 3, पृ. 534।
4 इनके अनुसार उसका राज्यकाल वि. सं 1127–51 तक रहा। पथ्वीराज प्रथम का सबसे पहला लेख वि. सं. 1162 का है।

मुहम्मद तुगलक के तर्माशीरीन के आक्रमण (१३२७–२८ ई०) के बाद दिल्ली आने तथा उसके बाद 'कछावा कोतल' के विरुद्ध जाने एव वहाँ मे ख्वाजा मुइनउद्दीन चिश्ती की दरगाह के दर्शन के लिये अजमेर जाने का वर्णन करता है[1]। इस अभियान के परिणाम के बारे मे तो ज्ञात नही, परन्तु यदि आवेर ने दिल्ली की अधीनता स्वीकार करली थी तो भी इसमे सशय नही कि १३३५ के बाद सल्तनत की बढती हुई कमजोरी का लाभ उठाकर आवेर पुन. स्वतन्त्र हो गया होगा।

पृथ्वीराज कछवाहा का सांगा की ओर से खनवा के युद्ध मे लड़ना

१३२६ से मेवाड की शक्ति व प्रभाव पुन' द्रुतगति से बढने लगे, और लाखा, कुम्भा तथा सागा के योग्य नेतृत्व मे वह शीघ्र ही उत्तरी भारत की प्रमुख शक्तियो मे गिना जाने लगा। अन्य राजपूत राज्यो की भाँति आवेर ने भी मेवाड की सर्वोपरिता स्वीकार की और पृथ्वीराज (जो १५०२ ई० मे आवेर की गद्दी पर बैठा था), उसका पुत्र जगमल व उनके अनेक सबंधी मार्च १७, १५२७ को मेवाड की ओर से बाबर के विरुद्ध खनवा के युद्ध मे लडे। कुछ महीने बाद (नवम्बर) पृथ्वीराज की मृत्यु हो गई[2]। वह बडा योग्य व धर्मपरायण राजा था। अपने आठ पुत्रो को उसने जो ठिकाने दिये थे, वे तथा उनकी शाखाए, बारह कोटडी कहलाई और इन कोटडियो के स्वामी राज्य के सर्वोच्च ठाकुर माने गए।

पृथ्वीराज से भारमल तक का इतिहास स्पष्ट नही है। पृथ्वीराज के पुत्रो मे कौन बडे थे, इसके बारे मे वशावलियो मे भिन्न-भिन्न वृत्तान्त मिलते है। पृथ्वीराज के बाद उसके पुत्र व पौत्र किस क्रम से शासक बने, इसके बारे मे भी कोई एक वर्णन नही मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि भारमल के राज्यारोहण (जून १५४७) के पूर्व उसके भाई पूरनमल व भीम और भीम के पुत्र–रतनसिह व आसकरन, आवेर की गद्दी पर बैठे थे।

आंबेर द्वारा मुगल अधीनता स्वीकार करना आंबेर के इतिहास मे नया मोड़

भारमल के समय से आवेर के इतिहास मे एक नया मोड आया जब उसने मेवात, नारनोल व अजमेर के मुगल अधिकारी शर्फउद्दीन से, जो पूरनमल के पुत्र सूजा का पक्ष ले रहा था, परेशान होकर अकबर से १५६२ मे सागानेर मे भेंट की और अकबर के अजमेर से लौटते समय साभर मे प्रस्तुत होकर अपनी पुत्री का

1. ईसामी, (रिजवी कृत हिन्दी अनुवाद, तुगलक कालीन भारत 1, पृ. 104)।
2 डा. गोपीनाथ शर्मा कृत मेवाड एण्ड दी मुगल एम्परर्स, पृ. 39, टिप्पणी 112, टाड (2 पृ. 285) ने पृथ्वीराज की हत्या का उल्लेख किया है। पृथ्वीराज के पुत्र व उत्तराधिकारी पूरनमल के हुमायूं के भाई हिन्दाल की ओर से तातार खा के विरुद्ध लडते हुए मारे जाने का उल्लेख मिलता है।

उसे डोला भी दिया[1]। इस विवाह के बाद अकबर ने जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर आदि के राजघरानों से भी वैवाहिक संबंध स्थापित किए। ये संबंध, अकबर का उदार दृष्टिकोण और उसकी असाधारण प्रतिभा व चरित्र राजपूतों को मुगल बादशाह के निकट ला सके और वे न केवल अपने राज्यों को हानि से बचा सके, अपितु मुगल सेना व प्रशासन के क्षेत्र में भी अपनी योग्यता प्रदर्शित कर सके। केवल मेवाड़ ने श्रेष्ठतम परन्तु दुर्गम मार्ग चुना, और वह अपनी स्वतन्त्रता के लिये ५० वर्ष से भी अधिक समय तक शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के विरुद्ध बड़ा असमान परन्तु अत्यन्त गौरवशाली संघर्ष करता रहा, जिसका वृत्तान्त देश के इतिहास के सर्वाधिक गौरवमय प्रसंगों में से एक है। अपने उच्च आदर्श व अपूर्व संघर्ष के कारण मेवाड़ के महाराणाओं को 'हिन्दुवा रो सूरज' कहा गया और आने वाली शताब्दियों में जब-जब किसी हिन्दू शक्ति की स्थिति संकटमयी हुई तो उसने मेवाड़ के शासक को इस विरुद का स्मरण दिलाकर सहायता मांगी और बहुधा प्राप्त भी की।

आंबेर के शासकों को असीमित अवसर मिलना

मुगल सेवा स्वीकार कर लेने से योग्य व प्रतिभाशाली कछवाहों के लिये अब विभिन्न व विस्तृत क्षेत्रों में अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के द्वार खुल गए और कई कछवाहा शासकों ने सर्वाधिक योग्य व सफल सेनानायक व कूटनीतिज्ञ होने का श्रेय प्राप्त किया, और अपने कला, साहित्य प्रेम, तथा धर्म निष्ठा से हिन्दू समाज की कृतज्ञता अर्जित की। अपनी मृत्यु से काफी पहले ही भारमल को ५००० का पद मिल गया था। यह इस समय सर्वोच्च पद था जिसकी शाही परिवार के बाहर कोई भी व्यक्ति आकांक्षा कर सकता था। गुजरात के दोनों अभियानों के समय अकबर अपनी राजधानी की देख-रेख का कार्य भारमल को सौंप कर गया था[2]। उसके पुत्र भगवानदास को अमीर-उल-उमरा का पद एवं ५००० का मनसब मिला था और उसने राजपूताना, गुजरात व काश्मीर के अभियानों में महत्वपूर्ण भाग लिया था। १५८३–८९ ई० में वह लाहौर का सूबेदार रहा था। नवम्बर १५८९ में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र मानसिंह गद्दी पर बैठा। वह अकबर के समय का सफलतम सेनानायक था। प्रशासक के रूप में उसने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। उसे पहले ५००० का और बाद में ७००० का पद मिला, और वह काबुल व बाद में बिहार व बंगाल का सूबेदार रहा। राजा मान ने आंबेर, वृंदावन, बिहार व

1. भा. उ. (अनुवाद बिवरिज व बेनीप्रसाद कृत) जि 2, पृ. 409–11।
2. भा. उ (अनुवाद बिवरिज व बेनीप्रसाद कृत) जिल्द 2, पृ. 409–11, भारमल द्वारा मुगल अधीनता स्वीकार करने व उस पर अकबर की विशेष कृपा के लिये देखिये डा. ए एल श्रीवास्तव का लेख प्रोसीडिंग्स आफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस 1967, पृ 49–55।

बंगाल में अनेक मंदिर व महल बनवाए। उसके समय से आंबेर मुगल साम्राज्य के अर्धस्वतन्त्र राज्यों में सबसे प्रसिद्ध व समृद्ध राज्य बन गया[1]।

मिर्जा राजा जयसिंह का असाधारण उत्कर्ष

मान के उत्तराधिकारी भावसिंह का उल्लेख मात्र कर हम राजा मान के बड़े लड़के जगतसिंह के पुत्र जयसिंह के बारे में देखेंगे जो १६२२ ई० में १२-१३ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा था। जयसिंह, जिसे बाद में मिर्जा राजा की उपाधि मिली, अपने समय के सबसे प्रसिद्ध व प्रभावशाली व्यक्तियों में से एक था। १०००/५०० के पद से मुगल सेना में नौकरी आरम्भ कर १६४९ में उनका पद ५०००/५००० हो गया था जिनमें ४००० दो अस्पा से अस्पा थे। इस समय वह केवल चालीस वर्ष का था और उसने मुगलों के अबतक के सभी प्रमुख अभियानों में भाग लिया था तथा प्रशंसा प्राप्त की थी। १६५७ के उत्तराधिकार के युद्ध में मिर्जा राजा का निर्णायक भाग रहा।

संघर्ष में विजय प्राप्त करने के बाद औरंगजेब ने जयसिंह को दारा द्वारा दी गई ७०००/७००० (७००० दो अस्पा सेह अस्पा) की मनसब बहाल कर दी। १६६४ में उसे महाराजा शिवाजी के विरुद्ध भेजा गया। वह एकमात्र शाही अफसर था जो शिवाजी के विरुद्ध सफल रहा। उसने कुछ ही माह में शिवाजी से पुरन्दर की संधि स्वीकार करवाली (जून १६६५) और उन्हें आगरा जाने के लिये भी तैयार कर लिया। यह मिर्जा राजा के अत्यधिक सफल जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। मिर्जा राजा का प्रभाव उसके औरंगजेब को लिखे उन पत्रों से ज्ञात होता है जिनमें उसने पुरन्दर की संधि की शर्तों की पुष्टि व बीजापुर पर आक्रमण करने की स्वीकृति मांगी थी। बादशाह ने मिर्जा राजा द्वारा लिये गए हर निर्णय की पुष्टि की। शिवाजी के अगस्त १६६६ में आगरे से बचकर निकल जाने में मिर्जा राजा के पुत्र रामसिंह का हाथ समझा गया। इस घटना से व मिर्जा राजा के बीजापुर अभियान के असफल हो जाने से उनको बहुत धक्का पहुँचा। अगस्त १६६७ में हाथी से अकस्मात गिर जाने से उनकी बुरहानपुर के पास मृत्यु हो गई (२८ अगस्त)[2]। कुछ दिन बाद औरंगजेब ने रामसिंह को आंबेर के राज्य का टीका और ४०००/४००० का पद व हाथी आदि दिये[3]।

---

1 राजा मानसिंह के बारे में देखिये मा. उ. (अनुवाद), 2, पृ. 48–57, आर एन प्रसाद कृत "मानसिंह आफ आंबेर" (कलकत्ता 1966)।

2 मा उ. (अनुवाद), 1, पृ. 731–34, सरकार, औरंगजेब, जि 1–5, बांकीदास, क्र. स. 1440, मिर्जा राजा के नाम अनेक पत्र, बादशाहों के फरमान, शहजादों के निशान आदि जयपुर आरकाइव्ज में सुरक्षित हैं।

3. यददाश्त, 13 सितम्बर 1667, कल्याणदास की अर्जदाश्त, 16 सितम्बर 1667, ज. आ।

रामसिंह

यद्यपि औरंगजेब ने रामसिंह को ऊपरी तौर से क्षमा कर दिया था परन्तु उस पर कभी विश्वास नही किया और उसे १६६९ से ७६ तक आसाम मे और १६७७–७८ तथा १६८१–८८ मे अफगानिस्तान मे रखा। वहाँ उसने सैनिक व प्रशासकीय योग्यता का परिचय दिया, और वहाँ से भेजी गई रिपोर्ट्स मे उसका अनेक वार उल्लेख किया गया[1]। उसका एकमात्र पुत्र किशनसिंह १० अप्रैल १६८२ को दक्षिण मे संदेहास्पद परिस्थिति मे मारा गया। तीन दिन बाद बादशाह ने किशनसिंह के ग्यारह वर्षीय पुत्र बिशनसिंह को उसके पिता का मनसब (१०००/४०००) दे दिया[2]। नवम्बर १६८५ मे उसे दक्षिण बुलाया गया, परन्तु रामसिंह ने बिशनसिंह के आवेर की गद्दी के एकमात्र उत्तराधिकारी होने के कारण उसे बादशाह के पास भेजना उचित नही समझा, और जैसे तैसे उसकी कोहात मे अपने पास ही नियुक्ति करवाली।

बिशन सिंह

यहा अप्रैल १६८२ मे रामसिंह का देहान्त हो गया[3]। बिशनसिंह तब आवेर लौट आया और ७ सितम्बर १६८८ को उसका राज्यारोहण हुआ। इस समय उसकी आयु लगभग अट्ठारह वर्ष की थी। कुछ दिन बाद उसे २०००/२००० का मनसब व १००० का अतिरिक्त मनसब (विशेष सेवा के लिए) दिये गये, और बादशाह के पौत्र व आजम के पुत्र बीदारबख्त के पास उसे नियुक्त कर दिया गया। बीदारबख्त इस समय जाटो के विरुद्ध अभियान मे संलग्न था[4]।

सवाई जयसिंह का जन्म

इस प्राचीन राज्य परिवार मे सवाई जयसिंह का जन्म ३ नवम्बर सन् १६८८ को राजा बिशनसिंह की राठौड रानी, काशीसिंह जोधा की पुत्री इन्द्रकुँवर से हुआ[5]।

●●●

1. रामसिंह के बारे मे संक्षिप्त वृत्तान्त मा. उ. (अनुवाद) 2, पृ. 591–93; गोहाटी मे उसकी सेवा के लिये मनसब मे वृद्धि के लिये फरमान, 29 जुलाई 1669, 7 मार्च 1670 व अफगानिस्तान मे सेवा के लिये शाहआलम के निशान, 17 मोहर्रम, 23 शाबान हि सं. 1089 (1678 ई.)।
2. ज. अख , 4 अप्रैल 1682, मा. आ (अनु. सरकार), पृ. 134।
3. फरमान, 15 नवम्बर 1685, केशोराय (वकील)—रामसिंह, फा व. रि , 20 दिसम्बर 1685, ज. आ केशोराय बादशाह के पास दक्षिण मे था। उसे रामसिंह की मृत्यु का समाचार 28 अप्रैल को मिला (फा. व. रि. 20 अप्रैल 1688, ज. आ)।
4 केशोराय—राजा बिशनसिंह, फा व रि. 1, 4 मई 1688, जयपुर वंशावली (राज्यारोहण के लिये), जूनी बही, 113, सुखसिंह—राजा बिशनसिंह [?] 1688 ज आ ।
5. सवाई जयसिंह की जन्मपत्री, ज आ , कच्छवंश महाकाव्य, सर्ग 10, श्लोक 50, वाकीदास, क्र. स 1445।

अध्याय २

जयसिंह का प्रारम्भिक जीवन

आंबेर की संकटमयी स्थिति; बिशनसिंह की समस्याएं

विशनसिंह के गद्दी पर बैठने के समय आँबेर की स्थिति अच्छी नहीं थी। मिर्जा राजा जयसिंह की मृत्यु (अगस्त १६६७) के बाद राज्य की प्रतिष्ठा व उनके प्रभाव मे बहुत कमी हो गई थी। जैसा हम पहले देख चुके है कि औरगजेब ने यद्यपि रामसिंह को आँबेर का राजा स्वीकार कर लिया था, परन्तु उसने कभी भी रामसिंह पर विश्वास नही किया, और उसे सुदूर आसाम और बाद मे अफगानिस्तान मे रखा। राजा का देश से लगातार दूर रहना, राज्य की शासन व्यवस्था के लिये हानिकारक होता था। अफसरो व सैनिको को जागीरो से मिलने वाली आय मे भी कमी हो जाती थी, जिससे वे काफी चिन्तित रहते थे। इस समय के अनेक पत्रो मे इसका उल्लेख मिलता है। रामसिंह को जो तनख्वाह व जागीरे मिली थी वे मुगल प्रशासकीय परम्परा के अनुसार, उसकी मृत्यु के बाद खालसा मे ले ली गई थी। राज्यारोहण के समय विशनसिंह के पास केवल आबेर का छोटा सा राज्य ही था। यह स्पष्ट था कि राज्य की जो प्रतिष्ठा व समृद्धि पहले थी उसका दशाश भी पुन स्थापित करने मे उसे जी तोड प्रयत्न करना होगा।

जाटो के विरुद्ध अभियान में बिशनसिंह की विशिष्ट सेवाएं

राज्यारोहण के पश्चात् विशनसिंह बीदार बख्त के पास मथुरा पहुँचा। शीघ्र ही उसे मथुरा की फौजदारी दे दी गई, और मथुरा व आगरे के बीच के मार्ग पर जाने वाले काफिलो की सुरक्षा का भार सौप दिया गया। विशनसिंह योग्य, निडर व साहसी नवयुवक था, और शाही सेवा मे उसकी शीघ्र पदोन्नति हुई। कुछ सप्ताह बाद ही जाटो के पिथोर व कसोट किलो को लेने के लिये उसके जात पद मे ५०० की वृद्धि कर दी गई। जनवरी १६९० मे सिनसिनी का किला लेने मे उसने बहुत तत्परता दिखाई। मार्च १६९० मे उसके पद मे फिर ५००/१००० की वृद्धि की गई[1]। इन सफलताओ व पुत्र जन्म ने, जिससे उत्तराधिकारी की

---

1 केशोराय (वकील)—विशनसिंह, फा॰ व॰ रिपोर्ट, 11 मई 1688, अकिल खा—विशनसिंह, फा॰ प॰ 1 जुलाई 1689, मुहम्मद अजीज—विशनसिंह, फा॰ प॰ 1107 हि, जगजीवन—विशनसिंह, 8 सितम्बर 1688, रा॰ आ।

चिन्ता दूर हुई, राजा विशनसिंह की ऐश आराम की स्वाभाविक प्रवृत्ति को तेज कर दिया और उसके यहाँ अब रोज बड़े पैमाने पर नाच गाना होने लगा। इसकी सूचना बादशाह के पास पहुँचने पर उसके मनसब मे कुछ समय के लिये कटौती कर दी गई और उसे यह भी सकेत दिया गया कि उसे काबुल भेजा जा सकता है[1]।

इसके बाद विशनसिंह ने शाही सेवा मे बडी तत्परता दिखाई। सोगर-१६९१, हरसोली १६९३, कसेहर १६९३, सोखर १६९४, रायसिन, बथाओली १६९४, जवाहर की गढी १६९५, व अन्य कई जाट किलो को लेने मे उसकी उत्कृष्ठ सेवाओ का शाही रिपोर्टस मे अनेक बार उल्लेख किया गया। १६९२ मे उसे हिन्डोन व बयाना की फौजदारी भी दे दी गई और १६९५ मे उसे नगाडा देकर सम्मानित किया गया। उस वर्ष उसने टोडाभीम, सोखर आदि कई परगने हजारे मे प्राप्त किये[2]।

जयसिंह की प्रारम्भिक शिक्षा

अब जयसिंह (जिसे तात्कालीन पत्रो मे 'महाराजकुमार बडा साहिब जी' 'श्री चिमनाजी' कहा गया है) सात वर्ष का हो गया था और उसका छोटा भाई ('चिमना साहिब छोटा', छोटा साहिब जी', चिमना साहिब जी') जो बाद मे विजय सिंह कहलाया लगभग पाँच वर्ष का था। जयपुर ऐतिहासिक अभिलेख सग्रहालय मे इस समय के कुछ ही पत्र मिलते है (जिनमे से तीन-चार स्वय जयसिंह की लिखावट मे है) जिनसे इनकी शिक्षा के बारे मे जानकारी मिलती है। परन्तु इसमे कोई सदेह नही कि आबेर घराने की परम्परा के अनुसार इनकी शिक्षा-दीक्षा का पर्याप्त प्रबन्ध किया गया होगा। शिक्षा का उद्देश्य इन्हे शाही सेवा की कठिन आवश्यकताओ के लिये उपयुक्त बनाना व उनमे राज्य का सुचारू रूप से शासन चलाने की योग्यता विकसित करना होता था। आबेर के राजकुमारो को बहुधा तीन-चार भाषाए (डिंगल, सस्कृत, फारसी और कभी-कभी अरबी व तुर्की) सिखाई जाती थी। वे शास्त्रो का अध्ययन करते और गणित का आवश्यक ज्ञान भी प्राप्त करते थे। सैनिक शिक्षा को पर्याप्त महत्व दिया जाता था। हम महल के कर्मचारियो को राजा बिशनसिंह को लिखे गये कई पत्रो मे सूचित करते पाते है कि दोनो राजकुमार नियमपूर्वक घुडसवारी व धनुर्विद्या सीख रहे है। सभी राजकुमार जब १०–१२ वर्ष के होते, तभी से उन्हे प्रशासन सम्बन्धी जानकारी दी जाने लगती थी और १३–१४ वर्ष की आयु मे उन्हे प्रशासकीय अनुभव प्राप्त करने का अवसर

---

1. आकिल खा—विशनसिंह, फ. प, 28 जून 1691, ज. आ।
2 कानूनगो, पृ 43-45, मा. आ, पृ 205, आकिल खा—विशनसिंह, 28 जून 1691; अमीराम (अर्जदाश्त), 1693 ई, शुक्रुल्लाह खा के पत्र अक्टूबर 1693 आदि।

मिल जाता था। १५-१६ वर्ष के होने पर वे राज्य का शासन और संचालन व शाही सेवा के लिये उपयुक्त स्वीकार कर लिए जाते थे। जयसिंह बड़ा कुशाग्र बुद्धि का छात्र रहा होगा, क्योंकि बाद मे वह अपनी बौद्धिक उपलब्धियों, विशेषकर खगोलशास्त्र के क्षेत्र मे, सारे देश मे प्रसिद्ध हुआ, और उसने जयपुर को तत्कालीन समय का साहित्य, कला व विज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र बना दिया।

जयसिंह की औरंगज़ेब से प्रथम भेंट

जयसिंह जब आठ वर्ष का था तब उसे कुछ माह के लिए अपनी पुस्तके छोड अपने पिता के स्थान पर दक्षिण जाना पड़ा। राजा विशनसिंह शाही दरबार मे नही जाना चाहता था, और उसने औरंगजेब की छोटी पुत्री जीनत-उल-निसा बेगम की मार्फत अपनी जगह जयसिंह को कुछ समय के लिये दरबार मे भिजवाने की व्यवस्था करली। इस पर उसे मथुरा मे अपनी जगह ही रहने की आज्ञा मिल गई थी[1]। जयसिह अप्रैल १६९६ मे बादशाह के समक्ष प्रस्तुत हुआ। सम्भवत इसी अवसर पर बादशाह ने जयसिंह की वाक्पटुता से प्रसन्न होकर उसे 'सवाई जयसिह' कहा था। बादशाह ने उसके दोनो हाथ पकड़ कर पूछा "अब तू क्या कर सकता है?" जयसिंह ने उत्तर दिया "अब तो मै बहुत कुछ कर सकता हूँ क्योंकि जब पुरुष स्त्री का हाथ पकड लेता है तो उसे कुछ अधिकार मिल जाते है। आप जैसे बादशाह ने तो मेरे दोनो हाथ पकड लिये है, इसलिये मै तो सबसे बढकर हो गया"। औरगजेब ने उत्तर मे प्रसन्न होकर कहा कि यह बहुत होशियार होगा। इसका नाम सवाई जयसिह (मिर्जा राजा जयसिंह से बढकर) रखना चाहिए[2]।

परन्तु तत्कालीन कागजातो से यह स्पष्ट है कि जयसिह को सवाई की उपाधि विधिवत रूप से पहली बार फर्रुखसियर के समय मे सैयद हुसैन अली के प्रयत्नो से जुलाई १७१३ मे मिली थी। इससे पहले कुछ ही पत्रो मे हम जयसिह के नाम के साथ सवाई की पदवी प्रयुक्त करते हुए देखते है और ये पत्र भी साधारण स्तर के लोगो के है[3]। महाराणा अमरसिह व महाराणा सग्रामसिह, दुर्गादास, छत्रसाल बुन्देला आदि के जुलाई १७१३ से पहले के पत्रो मे केवल 'महाराज

1 अमीराय—मिश्र चक्रपाणी (दोनो आंबेर राज्य के पदाधिकारी), 9, 13 मई 1696 ई., ज आ।

2. ईश्वर विलास महाकाव्य, (सर्ग 7, श्लोक 47) मे जयसिह को सवाई की पदवी औरंगजेब द्वारा दिये जाने का उल्लेख है।

3 जैसे—मुकुन्ददास-बिहारीदास, मई 8, 1708 (वीर विनोद 2, 768-69), पेमा बडारन-जयसिह, 4 फरवरी 1709, भिक्षु जेठमल (साढोरा से)—जयसिह (1711 ई.) अ. जा.।

श्री जयसिंह जी', 'महाराजाधिराज श्री जयसिह जी' ही लिखा मिलता है। वकील जगजीवनदास पचोली ने पहली बार जुलाई १२, १७१३ की रिपोर्ट मे[1] बादशाह फर्रुखसियर द्वारा सवाई का पद दिये जाने की सूचना जयसिंह को दी थी। इससे यह ज्ञात होता है कि औरगजेब का जयसिंह को 'सवाई' कहने का प्रसग तो प्रचलित हो गया था, परन्तु सरकारी तौर से यह पदवी जयसिह को नही मिली थी। जयसिंह १६९८ के शुरु तक दरबार मे रहकर आंबेर लौट आया। कुछ समय बाद बिशनसिंह की बादशाह के बडे पुत्र मुअज्जम के पास काबुल सूबे मे नियुक्ति हो गई।

दक्षिण से आबेर लौटने पर जयसिह की शिक्षा पुन आरम्भ हो गई। नीति व धर्मशास्त्र के ग्रन्थो के अलावा शिक्षा का एक प्रमुख स्त्रोत उसके वश का ७०० वर्ष लम्बा इतिहास था जिसमे मनन चिन्तन करने के लिये पर्याप्त सामग्री थी। यह इतिहास उसने अपने शिक्षको, दरबारियो व भाटो से सुना जिन्होने अपनी-अपनी समझ व दृष्टिकोण से उसे इससे अवगत कराया। भारमल के समय से इस इतिहास मे कुछ नए रंगो का समावेश हुआ था जो अच्छे और बुरे दोनो ही प्रकार के थे। मुगलो की अधीनता स्वीकार करने के पश्चात् उसके वश के इतिहास मे अनेक महत्वपूर्ण प्रसग जुड गए थे। इनका वर्णन करते हुए उसे जहाॅ-तहाँ नीति व राजनीतिक गतिविधियो की जानकारी दी जाती थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस मौखिक शिक्षा व परिवार महिलाओ से सुनी धार्मिक गाथाओ और भजनो ने जयसिंह के चरित्र व दृष्टिकोण को ढाला और जीवन मे घोरतम विपत्तियो का दृढतापूर्वक सामना करने की उसे शक्ति प्रदान की।

बिशनसिह की मृत्यु; जयसिंह का राज्यारोहण

१६९८–९९ मे जयसिह व विजयसिह आबेर मे ही रहे। कोहात से उनके पिता के पत्र आते रहते थे। बिशनसिह के पास भी उसके परिवार व राज्य के सब समाचार पहुँचते रहते थे। परन्तु यह स्थिति अधिक दिन नही चली। १९ दिसम्बर १६९९ को बिशनसिह का कोहात मे देहान्त हो गया। वह इस समय केवल अठ्ठाइस वर्ष का था[2]। इस दु खद सूचना के आबेर पहुँचने पर २५ जनवरी १७००

---

1 जगजीवन ने 26 फरवरी 1713 की अर्जदाश्त मे लिखा—"श्री महाराजाधिराज श्री मिर्जा राजा जैसिहजी" परन्तु 12 जुलाई 1713 के पत्र मे "श्री महाराजाधिराज महाराजा जी श्री मिर्जा राजा सवाई जैसिहजी"।

2. जयपुर वशावली, वीर विनोद (2 पृ 1297) के अनुसार बिशनसिह की मृत्यु 30 दिसम्बर 1699 को हुई।

को जयसिंह का राज्यारोहरण हुआ। कुछ दिन बाद उसे सूचना मिली कि बादशाह ने उसे राजा जयसिंह की उपाधि व १५००/१००० का पद प्रदान किये हैं।[1] राजा मानसिंह व मिर्जा राजा जयसिंह के वंशज के लिये शाही सेवा में यह साधारण सी शुरुआत थी।

1. द. कौ. जि. 24, मा. आ., पृ. 256, मा. उ. 1, पृ. 735।

अध्याय ३
जयसिंह और औरंगज़ेब

राज्यारोहण के समय जयसिंह ग्यारह वर्ष पूरे कर चुका था। यद्यपि इस आयु मे बढते हुए बालक को परिवार के बडे सदस्यो के सरक्षण की व घर के उन्मुक्त वातावरण की आवश्यकता होती है, तथापि जयसिंह को अपने पिता की असामयिक मृत्यु के कारण भारी जिम्मेदारिया सभालनी पड गई, और अल्पायु मे ही उसे अनेक उतार चढाव देखने पडे।

जयसिंह की दक्षिण में नियुक्ति; उसकी अन्य मन्सकता व दरबार मे पहुंचने का वृतान्त

अप्रेल १७०० मे उसे २००० अतिरिक्त सवारो के साथ दक्षिण जाने का हुक्म मिला[1]। ये सवार वहाँ वर्षो से चल रहे मराठा युद्ध मे झौक देने के लिये बुलाए गए थे। इस समय शाही अफसरो मे दक्षिण मे नियुक्ति अप्रिय थी। वहाँ के दुर्गम पहाड व घाटियाँ, वरसात के दिनो मे भारी वर्षा, मराठो के आकस्मिक आक्रमण, सघर्ष की निरन्तरता व औरगजेब की दक्षिण मे चिरतन उपस्थिति इस अप्रियता का कारण थे। सघर्ष की समाप्ति अव भी उतनी ही दूर लगती थी जितनी कि उस समय जब यह सघर्ष आरम्भ हुआ था। हम यह देख चुके है कि जयसिंह का पिता बिशनसिह, जिसने जाटो के विरूद्ध बडी वीरता प्रदर्शित की थी, दक्षिण मे नियुक्ति नही चाहता था और उसने अपनी नियुक्ति काबुल सूबे मे करवाली थी। लेकिन जयसिह के लिये शाही आज्ञा की अवहेलना करना अथवा उसे बदलवा देना सभव नही था। इसलिये वह कई महीनो के विलम्ब के बाद २००० सवारो के साथ दक्षिण के लिये चल पडा। परन्तु लाखेरी होते हुए जाने की जगह उसने आगरे होकर जाने वाला लम्बा मार्ग चुना। उसकी माँ मथुरा तक उसके साथ रही जहाँ उन्होने २००० ब्राह्मणो को भोजन कराया। इसकी सूचना बादशाह के पास तुरन्त पहुँचा दी गई[2]।

मई १७०१ के मध्य मे जयसिह आगरे से रवाना हुआ और २२ मई को ग्वालियर पहुँच गया। वह २८ मई को नरवर पहुँचा। मार्ग मे वह गौपुर की

1. फा॰ व रि॰, 17 अप्रैल 1700, ज आ॰।
2. ज अख॰, 1-4 अप्रैल 1701 ज॰ आ॰।

ओर मुड गया जहाँ उसने राजा उत्तम राम की भतीजी से विवाह किया । क्योंकि विवाह के लिये रुकने की उसने पूर्वाज्ञा नही ली थी इसलिये उसने अपने वकील को लिखा कि वह रुपये देकर बादशाह के पास इसकी शिकायत जाने की सूचना न पहुँचने दे[1] ।

अच्छी नियुक्ति की चिन्ता

इस समय जयसिंह की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नही थी । जो जागीरें उसके पिता को जाटो के विरुद्ध सफलता प्राप्त करने के परिणाम स्वरूप मिली थी, वे पुन: खालसा मे ले ली गई थी । विशनसिंह की मृत्यु के बाद भी इसको व जयसिंह के राज्यारोहण के उत्सव मे काफी व्यय हुआ था । फिर १६६७ के बाद आंबेर के राजाओ को जिन प्रदेशो मे रहना पड़ा था वे आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद नही थे । इसलिये जयसिंह ऐसी नियुक्ति के लिये उत्सुक था जो शाही सेना मे उसकी पदोन्नति मे सहायक हो । उसने वकील को लिखा कि वह उसकी नियुक्ति किसी शाही अफसर के नीचे नही बल्कि किसी शाहजादे के पास करवाए और यदि यह सभव न हो तो उत्तरी प्रान्तो मे उसकी नियुक्ति की भी कोशिश करे । विजयसिंह की कुछ माह पूर्व काबुल सूबे मे मुअज्जम के पास नियुक्ति हुई थी । जयसिंह ने वकील को यह भी लिखा कि वह महाराव बुद्धसिंह की छुट्टी की अर्जी स्वीकार करवाये जिससे उनका आंबेर आकर उसकी (जयसिंह की) बहन से विवाह हो सके[2] ।

मार्ग मे बरसात के कारण जयसिंह को कई जगह रुकना पड़ा । अगस्त के मध्य मे भारी वर्षा के कारण उसे बुरहानपुर मे भी रुकना पड़ा । परन्तु शाही सजावलो ने बादशाह को यह लिख दिया कि जयसिंह आने मे विलम्ब कर रहा है । इस पर वकील मेघराज को दरबार से निकाल दिया गया और जयसिंह के मनसब मे ५०० की कमी कर दी गई । जयसिंह ने वकील को लिखा कि सजावल भारी रिश्वत माँगते थे परन्तु वह उन्हे उचित रकम से अधिक देने को तैयार नही था[3] ।

जयसिंह की बीदारबख्त के पास नियुक्ति

अक्टूबर के मध्य मे जयसिंह शाही शिविर मे पहुचा । कुछ दिन बाद उसे बीदारबख्त के पास नियुक्त कर दिया गया व उसके मनसब मे जो ५०० की कटौती की गई थी वह जनवरी १७०२ मे माफ कर दी गई[4] ।

---

1. जयसिंह—मेघराज, फारसी परवाने 15, 22 मई, 17 जून, 1701, ज. आ ।
2 जयसिंह—मेघराज, फारसी परवाने 7, 17 जून 1701, ज. आ ।
3 जयसिंह—मेघराज, फारसी परवाने, 22 सितम्बर 1701, 29 अगस्त, 27 सितम्बर 1701, ज आ ।
4 जयसिंह—राजा उत्तमराम, ड्राफट खरीता, 6 नवम्बर 1701, ज. आ. ।
जयसिंह—जगजीवनदास, फारसी परवाना, 18 फरवरी 1701, ज आ. ।

कोंकण दुर्ग को लेने में जयसिंह की विशिष्ट सेवाएं

बीदारबख्त योग्य सेनानायक था और उसे पन्हाला से विशेष रूप से कोकण के किले को जीतने मे मदद देने के लिये बुलवाया गया था। किले को जीतने की कठिनाइयो को समझ कर औरगजेब स्वय जनवरी १७०२ मे घेरे का सचालन करने वहा आ पहुँचा था। इस दुर्ग को लेने के लिये उसके चारो ओर रऊनी (टेरेस) को लेना आवश्यक था जिसकी मराठे बडी वहादुरी से रक्षा कर रहे थे। २७ अप्रैल को मुगल सेना ने जोरदार आक्रमण कर इस पर अधिकार कर लिया। इसका मुख्य श्रेय आँवेर के कछवाहा दस्ते को मिला जिसका नेतृत्व जयसिह स्वय कर रहा था। जयसिंह ने १३ मई को आवेर भेजे गए एक पत्र मे लिखा कि उनका पचरगा ध्वज सर्वप्रथम किले के बाहरी बुर्ज पर फहराया गया। इस सेवा के लिये जयसिंह के जात पद मे ५०० की वृद्धि की गई और बीदारबख्त ने एक हाथी भी भेट किया[1]। जयसिह ने अभी चौदहवाँ वर्ष भी पूरा नही किया था। इस आयु मे शाही सेवा मे उसकी शुरुआत सतोषजनक कही जा सकती थी।

बीदारबख्त के साथ खानदेश व मालवा मे

खेलना दुर्ग की विजय के बाद जयसिह बीदारबख्त के साथ ही रहा। पहले वह खानदेश मे मराठा आक्रमणो को रोकने के लिये नियुक्त की गई सेना के साथ रहा। १७०३ के आरभ मे उसकी मुठभेड मराठो की एक बडी सेना से हुई जो खारगोन मे घुस आई थी। अगस्त १७०४ मे जब बीदारबख्त को मालवे की सूबेदारी मिली तो जयसिह को उस समृद्ध व महत्वपूर्ण प्रान्त की समस्याओ को समझने का प्रथम बार अवसर मिला।

दिसम्बर १७०४ मे जब बदारबख्त मालवा गया और वहाँ बीमार पड गया तो उसने जयसिह को सूबे मे अपना नायब नियुक्त कर दिया। परन्तु औरगजेब ने इस नियुक्ति को अस्वीकार कर यह आज्ञा जारी की कि भविष्य मे किसी राजपूत को फौजदार तक भी नियुक्त न किया जाय। उसने बीदारबख्त को लिखा कि वह खानआलम को अपना नायब नियुक्त करे[2]।

मालवा के नायब सूबेदार

मार्च 1705 मे जयसिह को मराठा घुसपैठ रोकने के लिये पुन बुरहानपुर जाना पडा। इन दिनो वह बराबर अपनी तरक्की के लिये प्रयत्न करता रहा। जब

---

1 मा आ, पृ. 271–72, सरकार, औरगजेब, 5, पृ 147–151, किशोरदास—जयसिह, अर्जदाश्त, 18 जून 1702, ज आ। पत्र मे वह जयसिह के 13 मई के परवाने में लिखी मुख्य बातो को वह पुन लिखता है।

2. मालवा, पृ 35-36, पजितराय को लिखे (28 मुहर्रम, 11 मई 1705) परवाने मे जयसिह औरगजेब द्वारा बीदारबख्त को खानआलम को नियुक्त करने के आदेश का उल्लेख करता है।

उसे ज्ञात हुआ कि खान आलम को मालवे मे राजपूतो व जमीदारो के विरोध के कारण कठिनाइयो का सामना करना पड रहा है तो उसने अपने वकील को सूबे की नायब सूबेदारी प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करने को लिखा। जयसिंह की आकांक्षा जून १७०५ के आरम्भ मे पूरी हुई जब बीदारबख्त ने उसे मालवा का नायब सूबेदार नियुक्त कर दिया और कुछ माह बाद उस बारे मे बादशाह की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली। परन्तु जयसिंह इस नियुक्ति से सतोष करने वाला नही था। हम इसी माह मे उसके वकील को लिखे परवाने मे देखते है कि वह मालवा की सूबेदारी के लिये प्रयत्न कर रहा था। उसने वकील को लिखा कि यदि बीदारबख्त को कही और भेजा जा रहा हो तो वह उसकी (जयसिंह की) नियुक्ति का प्रयत्न करे और यदि आवश्यकता हो तो इस कार्य के लिये पचास हजार रुपये तक खर्च कर दे[1]। यद्यपि जयसिंह ने अभी सत्रहवा वर्ष भी पूरा नही किया था परन्तु वह उन सब तरीको को जान गया था जिनके बिना उस समय मुगल सरकार मे कुछ भी करना सभव नही था।

मालवा के नायब सूबेदार होने के नाते उसका प्रमुख कार्य सूबे मे शान्ति व सुरक्षा बनाए रखना था। इसके अलावा आवश्यकता पडने पर उसे लगान की वसूली मे सहायता करनी पडती, प्रान्त मे से होकर जाने वाली खजाने व गोला-बारूद की गाडियो की सुरक्षा का प्रबन्ध करना पडता व वे सब कार्य करने पडते जो नायब सूबेदार के कार्यक्षेत्र मे आते थे। मार्च १७०६ मे वह आजम के सबसे छोटे पुत्र अली तबार के साथ मराठो की घुसपेठ रोकने के लिये गुजरात भेजा गया। मई १७०६ मे बीदारबख्त को गुजरात का सूबेदार बनाया गया। जुलाई मे खान आलम को मालवा का सूबेदार बनाया गया। कुछ माह पूर्व वहाँ अमानुल्ला खा को नायब नियुक्त किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अगले कुछ महीनो मे जयसिंह मालवे मे ही रहा, क्योकि, जैसा हम देखेंगे, बादशाह की मृत्यु के बाद जब बीदारबख्त अहमदाबाद से ग्वालियर की तरफ जा रहा था तो जयसिंह उससे शाहजहाँपुर व उज्जैन के बीच कही मिला था।

विजयसिंह

जयसिह का छोटा भाई विजयसिह सन् १६९९ से मुअज्जम के पास काबुल सूबे मे था। इस समय जयसिंह के अपने भाई के साथ अच्छे सम्बन्ध थे। बाद मे उन दोनो मे जो तीव्र कटुता उत्पन्न हो गई, उसके बारे मे हम आगे देखेंगे। विजयसिह के काबुल सूबे से जयसिह व उसकी रानी को लिखे अनेक पत्र मिलते है। हर

1 जयसिह—पञ्चितराय—का. प., 28 अप्रैल, 11 मई, 27 मई, 4, 21 जून व 13 जुलाई 1705, ज. आ.।

तीसरे-चौथे महीने उसके व उसकी सैनिक टुकडी के लिए आंबेर से खर्चा भेजा जाता था। १७०५ मे उसे हिन्डोन, अभानेरी, टोडा व मडावा जागीर तनख्वाह मे मिले। उसने जयसिंह से इन जागीरो को स्वीकार करने की आज्ञा मॉगी। अगस्त, १७०६ मे जयसिंह ने परगना दौसा मे उसे ४, १५, ५३० दाम की जागीर दिलवाई। सितम्बर मे जयसिंह को जो पत्र मिला उसमे लिखा था कि मुअज्जम विजयसिंह की सेवा से प्रसन्न है और शाहजादा २५ सितम्बर को पेशावर के लिए रवाना हो जावेगा[1]। इन पत्रो से जयसिंह को न केवल अपने भाई के कुशल समाचार मिलते रहते थे अपितु उसे मुअज्जम की गतिविधियों के बारे मे भी जानकारी मिलती रहती थी, जिसका बादशाह के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखते हुए काफी महत्व था।

जनवरी १७०७ मे उसे कोलियो को दवाने के लिए दक्षिणी मालवा भेजा गया। बीदारबख्त जयसिंह की सेवा से संतुष्ठ था और उसने आंबेर के वकील से कहा कि बादशाह उसके स्वामी को नगाडा प्रदान करने का विचार कर रहे है और उसके पूर्वजो के पद व उपाधियो के बारे मे तहकीकात की गई है[2]।

संभावित संघर्ष के संबंध में जयसिंह के पास सूचना पहुंचना

फरवरी, १७०७ के प्रारम्भ मे जयसिंह को बादशाह के पास नियुक्त अपने वकील से मिले समाचारो से निकट भविष्य मे होने वाली उथलपुथल का संकेत मिल गया। वकील ने लिखा कि बीदारबख्त को तुरन्त आने को कहा गया है, बादशाह ने बीजापुर व कर्नाटक अपने छोटे पुत्र कामबख्श को दिए है। कामबख्श ने बादशाह से अपनी माँ द्वारा कहलाया है कि उसने रक्षात्मक तैयारी केवल अपने आपको आजम से सुरक्षित करने के लिए की है। ८ फरवरी को वकील ने सूचित किया कि कामबख्श बीजापुर के लिए रवाना हो चुका है और १२ को आजम भी मालवे के लिए चल पडेगा। १८ फरवरी की एक रिपोर्ट मे उसे सूचित किया गया कि मुअज्जम ने उस इकरारनामे पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया, जिसमे कामबख्श को बीजापुर और आजम को बाकी सारा राज्य देने की व्यवस्था थी, जबतक कि मुअज्जम के भी उस पर हस्ताक्षर न हो[3]। ये पत्र आंबेर के वकील व अन्य अफसरो की सतर्कता का परिचय देते है। साथ ही ये शाही परिवार की तत्कालीन आन्तरिक स्थिति भी स्पष्ट करते है।

---

1. विजयसिंह के बारे मे उपरोक्त वृत्तान्त के लिए विजयसिंह के जयसिंह व उसकी रानी को पत्र (बिना तिथि के), पंडितराय–जयसिंह, फा अ., 27 अगस्त 1706 व 1706 की एक रिपोर्ट, ज. आ.।
2. खेमकरन—जयसिंह, फा. अ., 4 फरवरी 1707, ज. आ.।
3. फा. व. रिपोर्ट, 8 फरवरी, बसन्तराय–जयसिंह, फा. अ., 9 फरवरी व एक अन्य अनाम अर्जदाश्त, 18 फरवरी 1707, ज आ.।

औरंगजेब की मृत्यु; जगजीवनदास की रिपोर्ट

संभवत जयसिंह के पास उपरोक्त रिपोर्ट औरगजेब की मृत्यु (२० फरवरी, १७०७) के बाद पहुँची। यद्यपि वकील जगजीवनदास ने पूरे हाल का पत्र २७ फरवरी को ही भेजा, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसने बादशाह के मरने की खबर तुरन्त अपने स्वामी के पास भिजवादी थी। २७ फरवरी की रिपोर्ट मे उसने लिखा कि बादशाह की मृत्यु होते ही अमीर-उल-उमरा असद खॉ ने ७० सवार आजम के पास, जो अहमदनगर से १५–१८ कोस दूर ठहरा हुआ था, इस घटना की सूचना देने के लिए भेज दिए। रात होने तक आजम आ पहुँचा। असद खाँ ने उसका स्वागत किया और फिर सब शोक मनाने मे व्यस्त हो गए[1]।

एक असफल युग का अन्त व उससे शिक्षा

औरगजेब की मृत्यु के साथ ही भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय समाप्त हुआ। यद्यपि अन्त तक वह मुगल साम्राज्य को बचाने के लिए प्रयत्न करता रहा परन्तु उसने साम्राज्य की बीमारी का कारण गलत समझा और उसकी चिकित्सा से बीमारी बढी, घटी नही। उसकी मृत्यु के बाद वे शक्तियाँ, जिन्हे उसने कुचलने का भरसक प्रयत्न किया था, नई गति व स्फूर्ति के साथ विकसित होने लगी, और उसके उत्तराधिकारियो ने उसकी नीतियो व दृष्टि-कोण को, बिना किसी दुख या पश्चाताप प्रदर्शित किए, त्याग दिया। वह अपने पीछे टूटता हुआ साम्राज्य, भ्रष्ट शासन, हताश सेना और बदनाम सरकार छोड गया, जिसकी आर्थिक स्थिति डावाडोल थी और जिसकी लोकप्रियता समाप्त हो चुकी थी। उसका असफल शासनकाल इस कथन की पुष्टि करता है[2] कि कोई भी सरकार, चाहे उसके अपरिमित साधन ही क्यो न हो, आम प्रजा के सहयोग व समर्थन के बिना अधिक समय तक नही चल सकती।

जयसिंह का आज़मशाह का पक्ष लेने का निर्णय

जयसिंह का ध्यान निकट भविष्य मे होने वाले उत्तराधिकार के युद्ध की ओर लगा था। उसके सामने तीन मार्ग थे। पहला यह कि वह मालवे मे ही अपनी जगह रहे और आजमशाह के आदेश की प्रतीक्षा करे। दूसरे, वह अपने देश चला जाए और युद्ध के बाद जो भी विजेता हो, उसके समक्ष उपस्थित होकर अपनी भक्ति प्रदर्शित करे। तीसरा यह कि वह तेजी से उत्तर की ओर बढकर मुअज्जम से जा मिले। उसने पहला मार्ग चुना। दूसरे मे कोई विशेष खतरा नही था परन्तु लाभ की संभावना भी नही थी। इस समय उसकी स्थिति इतनी महत्वपूर्ण नही

1. जगजीवनदास—जयसिंह, फा व रिपोर्ट, 27 फरवरी 1701।
2 टाड, 1, पृ. 315।

थी कि उसके तटस्थ रहने मात्र से ही विजेता उसकी कृतज्ञता मानता, जैसे पचास वर्ष पूर्व मिर्जा राजा जयसिंह की औरंगजेब ने मानी थी। उसके बीदारबख्त से अच्छे सम्बन्ध थे, और युद्ध मे आजम के सफल होने की अत्यधिक आशा थी, क्योंकि दक्षिण के अनुभवी अफसर व सैनिक उसके साथ थे। आजम की विजय होने पर जयसिंह की पदोन्नति निश्चित थी। तीसरा मार्ग सबसे कम आकर्षक था। अतएव आजमशाह का पक्ष लेने का निर्णय कर वह मालवे मे ही अपने स्थान पर रहा और आजम के आदेशो की प्रतीक्षा करने लगा।

०००

अध्याय ४

उत्तराधिकार के युद्ध में

जयसिंह का मालवा में बीदारबख्त से मिलना

जयसिंह ने अगले कुछ सप्ताह आजम के आदेश की प्रतीक्षा मे व्यतीत किए। कुछ समय बाद उसे आज्ञा मिली कि वह १००० सैनिको के साथ बीदारबख्त से मिले[1]। उसे आजम के राज्यारोहण (४ मार्च) व कुछ दिन बाद हिन्दुस्तान के लिए रवाना होने की सूचना मिल चुकी थी[2]।

इसी बीच बीदारबख्त आजमशाह की आज्ञा से अहमदाबाद से ग्वालियर के लिए रवाना हो चुका था। वह २६ मार्च को शाहजहानपुर पहुँचा। यहाँ तथा उज्जैन के निकट उसने अपने पिता की १ माह २० दिन तक प्रतीक्षा की। उज्जैन व शाहजहानपुर के बीच किसी स्थान पर जयसिंह बीदारबख्त से आकर मिल गया[3]।

आजम का आगरा की ओर प्रयाण
जयसिंह व अन्य राजपूतो को ऊँचे मनसब दिए जाना

मार्च के दूसरे सप्ताह मे आजम अहमदनगर से अपनी सेना के साथ रवाना हुआ। वह २४ मार्च को औरगाबाद पहुँचा। इससे एक दिन पूर्व जुल्फिकार खा, कोटा का राव रामसिंह हाडा, दतिया का राव दलपत बुंदेला व दक्षिण के युद्धो के अनेक ख्याति प्राप्त अफसर आजम की सेवा मे पहुँचे। उसी दिन (मार्च २३) दुर्गादास राठौड को जागीर व मनसब वहाल किए जाने के हुक्म जारी किए गए व उन्हे तुरन्त आने को लिखा गया। राव रामसिंह व राव दलपत को राजा के खिताब भी दिए गए। एक दिन विश्राम करने के बाद आजमशाह बुरहानपुर के लिए चल पडा। मार्ग मे १२ अप्रेल को जयसिंह के पद मे २५०० जात व ३००० सवार की वृद्धि व नगाडा दिए जाने की घोषणा की गई[4]।

---

1. फा० व० रिपोर्ट, फरवरी 1707, ज आ ।
2. जगजीवनदास—जयसिंह, फा व रिपोर्ट, 8 मार्च 1707, ज. आ ।
3. इरादत, पृ 13-18, कामराज, पृ 15 (बी), इरविन, 1, पृ 14-15 ।
4. फा व रिपोर्ट, 2 अप्रेल, ज अख 23 मार्च 1707, इरविन 1, पृ. 11; जयसिंह के लिए ज. अख 12 अप्रेल । जयसिंह का अब 5000-5000 का मनसब हो गया था ।

१४ अप्रेल को आजम बुरहानपुर पहुँचा और अगले दिन ही निकट के, परन्तु कष्टप्रद, ढुमरी दर्रे के मार्ग से वह आगे बढा। १७ अप्रेल को उसे महाराणा अमरसिंह का मुबारकबादी का पत्र व नजर प्राप्त हुए। २६ अप्रेल को जयसिंह को मिर्जा राजा व महाराजा की उपाधिया व ७०००/७००० के पद दिए जाने की घोषणा की गई। साथ ही अजीतसिंह को भी महाराजा की उपाधि व ७०००/७००० के पद प्रदान किए जाने की घोषणा की गई[1]। राजपूतो को जो ऊँचे पद व उपाधिया दी गई, उससे ज्ञात होता है कि आजम उत्तराधिकार के युद्ध मे उनके समर्थन को कितना अधिक महत्व दे रहा था। अजीतसिंह व दुर्गादास को जो पद दिए गए, वह औरंगजेब की उनके प्रति अबतक की नीति त्याग दिए जाने का सूचक थे। यह संभव था कि यदि उत्तराधिकार के युद्ध मे आजमशाह की विजय होती तो राजपूताने मे कुछ माह बाद ही मुगलो के विरुद्ध संघर्ष की ज्वाला न फैलती जिससे राजपूत-मुगल सम्बन्धो को बहुत हानि हुई।

ईरानी व तूरानी अफसरों का आज़म के प्रति संदिग्ध दृष्टिकोण

ऐसा प्रतीत होता है कि राजपूतो को जो सम्मानित पद आदि दिए गए उसका एक कारण आजम के वजीर असद खां, उसके पुत्र मीरबख्शी जुलफिकार खा व तूरानी अफसरो के साथ उसके सद्भावपूर्ण सम्बन्धो का अभाव था। ईरानी पार्टी के प्रमुख नेता असद खा व जुलफिकार खा आजम द्वारा उत्तराधिकार के युद्ध से सम्बन्धित लिए गए निर्णयो से असतुष्ठ थे और उन्होने आजम से निवेदन भी किया था कि उन्हे दक्षिण मे व्यवस्था बनाए रखने के लिए छोड दिया जाय। प्रमुख तूरानी अफसर गाजीउद्दीन खा, उसका पुत्र चिनकुलीच खा (निजाम-उल-मुल्क) दक्षिण मे उनकी उपस्थिति की आवश्यकता का बहाना बनाकर वही रह गए और मुहम्मद अमीन खां बुरहानपुर से कुछ दूर तक तो आजमशाह की सेना के साथ रहा और फिर बिना आज्ञा के सेना से अलग होकर वापस लौट गया[2]। इस प्रकार तूरानी पार्टी उत्तराधिकार के युद्ध से दूर ही रही।

आज़म का आगरा की ओर बढ़ना : मुअज्जम का आगरे पर अधिकार होना

मई के प्रारम्भ मे सिरोज पहुँचने पर आजम ने जुलफिकार खा, रामसिंह हाडा, राव दलपत आदि के साथ ४५०० सवार बीदारबख्त से मिल जाने के लिए रवाना कर दिए। बीदारबख्त ग्वालियर की ओर बढ रहा था। उसे आज्ञा मिली थी कि वह चबल के घाटो पर अधिकार कर ले। जब आजम ग्वालियर की ओर

1. ज. अख , 17, 26, 27 अप्रेल 1707।
2. इरविन, 1, पृ 8, 12।

बढ रहा था तो उसे उसके वडे भाई व प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी मुअज्जम के आगरा ले लेने का समाचार मिला। वह तेजी से चलकर अपने पुत्र बीदारबख्त से धौलपुर (आगरे के ३४ मील दक्षिण) जा मिला। मार्ग मे शिवपुरी के राजा अनूपसिंह का पुत्र गजसिंह, जो मुअज्जम के साथ था, आजम से मिल गया[1]।

मुअज़्ज़म

औरगजेब के ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम को उसके पिता की मृत्यु का समाचार २० दिन पश्चात् 12 मार्च को पेशावर के निकट मिला था। वह तुरन्त हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो गया और लाहौर के पास उसने अपना राज्याभिषेक कर बहादुर-शाह की उपाधि धारण की। वह २ जून को ७१५ मील का फासला तय करके आगरा पहुँच गया। इस समय वह चौसठ वर्ष का था। अपने पिता के समय मे उसने कोई विशेष योग्यता प्रदर्शित नही की थी। दो वार उस पर अपने पिता के विरुद्ध षडयन्त्र करने का सदेह किया गया था और लगभग सात वर्ष (१६८७-९४) वह नजरबन्द रखा गया था। अपने पिता के शासन के अन्तिम वर्षो मे उसने यह खबर फैलादी थी कि यदि आजम सिहासन का इच्छुक होगा तो वह उत्तराधिकार के युद्ध को टालने के लिए फारस चला जाएगा[2]। वह धार्मिक विचारो मे कट्टर था। परन्तु उसमे परिस्थितियो की आवश्यकतानुसार अपनी नीति व उद्देश्यो मे परिवर्तन कर लेने का गुण था। उसकी दयालु प्रकृति थी। वह शक्की स्वभाव का नही था और अपने विरुद्ध किए गए अपराधो को भुला सकता था।

बीदारबख्त का धौलपुर पहुंचना . उसकी सेना की व्यवस्था

जब आजम ने मुअज्जम के साम्राज्य-विभाजन के प्रस्ताव को ठुकरा दिया तो मुअज्जम आगरा से धौलपुर के लिए रवाना हुआ और चम्बल के घाटो को रोकने के लिए उसने ४०,००० घुडसवार अपने पुत्र आजिम के साथ रवाना कर दिए[3]।

जाजव का युद्ध

इसी वीच बीदारबख्त व आजम धौलपुर पहुँच चुके थे। सेना की गिनती करने पर ज्ञात हुआ कि कुल ६५,००० सवार व ४५,००० वदूकची है। ८ जून को

1 कामराज, 19 (ए), 20 (ए), इरविन 1, पृ 15, इरादत पृ 17–18, 26।

2 इरादत पृ 40–43, कामराज, 20 (बी), खफी खा, 2, पृ 577–78, इरविन, 1, पृ 18–21। उसकी साधारण योग्यता व उसकी अपने भावो को सफलतापूर्वक छिपाने के बारे मे देखिए इरविन, 1, प 3–4, सरकार, औरगजेब, 3, पृ 44–47, इरादत, पृ 28, 34, इरविन, 1, पृ 22–23।

3. कामराज, 24 (ए.), इरादत 29–30। मुअज्जम ने कहलाया था कि वे साम्राज्य आधा-आधा बाट लें और यद्यपि वह वडा है, आजम पहले अपनी पसन्द के सूबे ले ले।

आजम अपनी सेना के साथ सामूगढ की ओर रवाना हुआ। १६५८ मे यह स्थान उसके पिता के लिए शुभ सावित हुआ था और इसलिए वह भी मुअज्जम से यही युद्ध करना चाहता था। उसी दिन वह जाजव (आगरा से ७–८ कोस) के निकट पहुँच गया। उसे अपने प्रतिद्वन्द्वी की गतिविधियो के वारे मे कुछ पता नही था। उस दिन सेना का एक वडा भाग वीदारवख्त की देखरेख मे आगे चल रहा था। इसमे जयसिह वीदारवख्त के वाए हाथ की ओर था। जयसिह के बाई ओर जुलफिकार खा के नेतृत्व मे कई हजार सैनिक थे जिनका नेतृत्व रामसिह हाडा, दलपत बु देला आदि कर रहे थे। फिर अमानुल्ला खा का दस्ता था। बीदारवख्त के आगे एक दस्ता अजीज खा अफगान के नेतृत्व मे था और उसके आगे खान आलम दखिनी व उसका भाई मुनव्वर खा अपने सैनिको के साथ थे। बीदारबख्त के वाई तरफ उसका भाई वालाजाह था। लगभग तीन मील पीछे सेना का दूसरा बडा भाग आजमशाह के साथ आ रहा था। यह सूर्यास्त के तीन घटे पूर्व युद्ध मे शामिल हो सका[1]।

८ जून, १७०७ को जाजव से चार मील उत्तर पूर्व की ओर अकस्मात ही छिडे युद्ध मे वीदारवख्त को वहादुरशाह के पचास-पचास हजार की दो सेनाओ का, जो आजीम-उश-शान व मुनीम खा के नेतृत्व मे थी[2], मुकाबला करना पडा। जयसिह का छोटा भाई विजयसिह व बू दी का महाराव बुद्धसिह बहादुरशाह की ओर से लड रहे थे। वे मुअज्जम के पास काबुल मे थे और जब औरगजेब की मृत्यु का समाचार पहुँचा तो वे उसके साथ आगरा आ गए थे।

तोपो की भारी गोलावारी के वाद युद्ध प्रारम्भ हुआ। खानआलम अपनी टुकडी के साथ तेजी से दुश्मन की ओर बढा और अपना हाथी अजीम-उश-शान के हाथी के पास ले आया। उसने शाहजादे के हौदे मे कूदने का प्रयास किया परन्तु मारा गया। साथ के अनेक सिपाहियो के हताहत हो जाने पर मुनव्वर खां पीछे हट गया जिससे दुश्मन का वालाजाह पर आक्रमण करना सुगम हो गया। थोडी देर बाद वालाजाह को पीछे हटकर वीदारवख्त के सरक्षण मे आना पडा।

जुलफिकार खां का भागना

इस समय बाज खा अफगान, बुद्धसिह हाडा, राजा राजवहादुर (किशनगढ का), राजा विजयसिंह, मुहम्मद रफी (सरबुलन्द खा) ने जुलफिकार खा की सेना पर भयकर आक्रमण किया। यद्यपि उन्हे पीछे ढकेल दिया गया परन्तु आक्रमण मे रामसिंह हाडा व दलपत बु देला गोले लगने से मारे गए। जुलफिकार खा को इन

---

1 इरविन, 1, पृ 23–26, 28, इरादत, पृ. 30।
2 इरविन, 1, प. 25, नो 1, पृ 27–28, इरादत, पृ 31–36।

दोनो सेनानायको से, जो अत्यन्त वीरता से लड रहे थे, बडी आशा थी। इनकी मृत्यु होने पर हाडा व बुन्देले इनके मृत शरीरो को लेकर युद्धस्थल से बाहर आ गए। जुलफिकार खा कुछ समय तक सेना का सचालन करता रहा। उसने पीछे हटकर आजम को युद्ध स्थगित कर अगले दिन पुन' लडने की सलाह दी, परन्तु जब उसके सुझाव को, जो उस समय युद्ध की स्थिति को देखते हुए असभव था, आजम ने तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार कर दिया, तो वह युद्धस्थल से पीछे हटकर अपने पिता असदखा के पास ग्वालियर भाग गया[1]।

जयसिंह का अपना स्थान छोड़कर मुअज्ज़म की ओर जाना

इस समय मध्याह्न का समय बीत चुका था और युद्ध अत्यन्त नाजुक दौर से गुजर रहा था। दोनो ओर की सेनाए एक दूसरे पर हावी होने की भरसक कोशिश कर रही थी। उस दिन (८ जून) गर्मी बहुत अधिक थी। कुछ देर बाद ही भयकर आधी शुरु हो गई जिसका रुख बीदारबख्त की सेना के विरुद्ध था। आधी का वेग बढ जाने पर स्थिति यह हो गई कि बीदारबख्त के सैनिको के तीर कुछ ही दूर जाकर गिर पडते जब कि शत्रु के तीर दुगुने वेग से आकर उसके सैनिको को हताहत करते। थोडी देर मे अधेरा छा गया और अब केवल तीन चार हाथ दूर तक ही दिखाई पडता था। आधी की तेजी बर्दाश्त न कर सकने के कारण बीदार-बख्त के सैनिको को मुँह मोडकर खडे हो जाना पडता था। उधर बहादुरशाह की तोपे लगातार गोले बरसा रही थी। ऐसी स्थिति मे बीदारबख्त व आजमशाह के सैनिको मे घोर निराशा छा जाना स्वाभाविक था। ठीक इसी समय जयसिह ने अपना धनुष हौदे मे रखा और सिर दुशाले से ढक कर वह बीदारबख्त के बाई तरफ से अपने हाथी को बढाकर मुअज्जम की सेना मे चला गया। कछवाहो के जाने से जो स्थान रिक्त हुआ था वहाँ तुरन्त मुनीम खा, कोकलताश खा, खान जमा व शाहजादे रफी-उल-कद्र व खुजिस्ता अख्तर आदि आ पहुँचे जो अब बीदारबख्त पर निकट से व पीछे से आघात कर सकते थे[2]।

बीदारबख्त व आज़म की मृत्यु

इस निराशाजनक स्थिति मे भी बीदारबख्त व उसके अनेक अफसर व सैनिक अपनी जगहो पर डटे रहे। बहुत से अपने घोडो से उतर पडे और सैयद हसनअली, सैयद हुसैन अली आदि से, जो युद्ध के इस निर्णायक समय पर बारहा के सैयदो की

1 इरादत, पृ. 36-38, कामराज, 24 (बी)-29 (ए), खफी खा, 2, पृ 591, भीमसेन 165 (ए)-166 (बी), आजम-उल-हर्ब, 165 (बी)-161 (बी), 186-189 (ए), यह्या, 113, वंशभास्कर, 4, पृ 2983-84।

2. कामराज, 25 (बी)-26 (ए), 29, आजम-उल-हर्ब, 162-170, इरादत, पृ. 36, वशभास्कर, 4, पृ 3000।

परम्परानुकूल घोडो से उतर कर आगे बढ रहे थे, जूझने के लिए तत्पर हो गए। कुछ समय तक भीषण युद्ध चला जिसमे दोनो ओर के अनेक प्रमुख अफसर मारे गए या बुरी तरह घायल हो गए। लगभग चार बजे बीदारबख्त के गोला लगा जिससे उसकी तुरन्त ही मृत्यु हो गई। वालाजाह रक्तस्राव के कारण मूर्छित हो गया था। उनको पीछे की ओर ले जाया गया। इस समय, जबकि युद्ध के परिणाम मे कोई सदेह नही रहा था, आजमशाह ने शत्रु सेना से सघर्ष शुरु किया। वह बहादुरी से लडा, परन्तु सूर्यास्त होते-होते एक गोली ने उसकी यह लीला समाप्त करदी। लगभग १००००–१२००० सैनिक युद्ध मे मारे गए जिनमे आजम की ओर से लडने वाले वे सभी अफसर थे जिन्होने अपनी जगह नही छोडी थी[1]।

जयसिंह का अनिश्चित भविष्य

रात्रि युद्धक्षेत्र मे ही बिताकर अगले दिन बहादुरशाह आगरा की ओर लौटा और निकट के एक बाग मे उसने आम दरबार किया। उन अनेक लोगो मे जिन्हे विजय के उपलक्ष्य मे इनाम व पदोन्नति मिलने वाली थी, विजयसिंह व बुद्धसिंह भी थे। जयसिंह का भविष्य अनिश्चित था और इस पर निर्भर था कि बादशाह का उन अफसरो के प्रति क्या रुख होगा जिन्होने आजम का पक्ष लिया था। यह स्पष्ट था कि बादशाह की नीति इन अफसरो के प्रति एकसी नही होगी और उनके औरगजेब के समय मे मुअज्जम के साथ सबंधो, अफसर की व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, महत्व व प्रभाव तथा उसके किसी प्रभावशाली गुट के सदस्य होने अथवा न होने पर निर्भर करेगी। जयसिंह उस समय किसी प्रभावशाली दल का सदस्य नही था। पिछले सात वर्षो मे उसने केवल बीदारबख्त का सरक्षण व समर्थन पाया था। इसलिए उसकी स्थिति असद खा, जुलफिकार खा, चिनकुलीच खा आदि के मुकाबले मे कही अधिक सदिग्ध थी। वह केवल १९ वर्ष का था और छोटे पद पर लगभग नया अफसर ही था। उसे किसी प्रभावशाली हिन्दू राजा या शाही अफसर का समर्थन भी प्राप्त नही था। युद्ध के बीच बीदारबख्त का पक्ष छोडकर शत्रु की ओर चले जाने के कारण उसकी प्रतिष्ठा को बडा धक्का पहुँचा था। तत्कालीन इतिहासकारो ने[2] उसके इस कार्य की तीव्रतम शब्दो मे आलोचना की है। उसका आचरण रामसिंह हाडा, राव दलपत व खानआलम की अपेक्षा हीन था। उन लोगो ने जिसका पक्ष लिया, उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था।

जयसिह के आचरण की समीक्षा

परन्तु यह कहना उचित होगा कि जयसिह ने रणभूमि मे अपना स्थान तभी छोडा जब बीदारबख्त के अनेक प्रमुख अफसर मारे जा चुके थे, सपूर्ण वाम

---

1. कामराज, 31 (ए), इरादत, पृ. 38–39, खफीखा, 2, पृ. 597, आजम-उल-हर्ब, 196 व आगे के पृष्ठ, इरविन, 1, पृ. 34।
2. जैसे आजम-उल-हर्ब, 168 (बी)–170 (ए)।

पार्श्व टूट चुका था, शत्रु की तोपो ने व भयकर आधी ने वीदारवख्त के सैनिको की हिम्मत पस्त कर दी थी तथा लडाई का रुख स्पष्ट रूप से आजम के विरुद्ध जाता दिखाई दे रहा था। वास्तव मे यह निर्णय लेने का क्षण आ गया था कि क्या वह अपने स्थान पर लडते हुए अपनी जीवनाहुति ऐसे उद्देश्य के लिए देदे जिसकी असफलता निश्चित दिखाई दे रही थी, अथवा अपने राज्य व परिवार के हितो के लिए जीवित रहे। जयसिह कायर नही था, जैसाकि अप्रेल १७०२ मे उसके खेलना दुर्ग पर आक्रमण व उसके बाद के जीवन वृत्तान्त से स्पष्ट होता है। इस स्थिति मे उसने अपने देश के हितो को प्राथमिकता दी और राजपूतो से अपेक्षित वलिदान के आदर्श की अवहेलना की जिसका वास्तव मे औरगजेव की राजपूतो के प्रति नीति के कारण वहुत कम महत्व रह गया था। जैसा समय ने सिद्ध किया, जयसिह ने उस समय सही निर्णय लिया था। कुछ ही महीने बाद उसने आवेर को मुगल साम्राज्य मे विलीन होने से बचा लिया और धीरे-धीरे उसे गौरव के शिखर पर पहुँचा दिया। इस तरह यह अच्छा ही हुआ है कि जयसिह उस दिन युद्ध से जीवित निकल सका और उसे 36 वर्ष और प्रदान हुए, जिनमे उसने देश के राजनीतिक व सास्कृतिक क्षेत्रो मे अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लिया।

•••

अध्याय ५

राजपूत-मुगल संघर्ष (१७०७-१२)

बहादुरशाह की आज़म का पक्ष लेने वालो को क्षमा करने की घोषणा

बहादुरशाह की अपने शासन-काल के प्रारम्भ मे ही की गई घोषणा से जयसिंह को बडी राहत मिली होगी जिसमे उन सब पदाधिकारियो को, जिन्होने आजमशाह का पक्ष लिया था, किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचाने का आश्वासन दिया गया था। इस प्रकार की घोषणा मुगल परम्परा के अनुकूल थी और इससे उत्तराधिकार के युद्ध के पश्चात् सामान्य स्थिति पुन: स्थापित करने मे बडी सहायता मिलती थी। यह सर्व विदित था कि अधिकाश अफसर जिस किसी का पक्ष लेते थे, वह बहुधा अनेक परिस्थितियो के कारण होता था, जिनमे से प्रधान युद्ध के समय उनकी नियुक्ति होती थी। इस घोषणा के बाद असद खाँ, जुलफिकार खा, गाजीउद्दीन खा, चिनकुलीच खा आदि के पास पत्र भेजे गए जिनमे उन्हे निस्सकोच आने के लिए कहा गया[1]।

असद खां; जुलफ़िकार खां आदि के प्रति इस नीति का पालन; मुनीम खां की वज़ीर के पद पर नियुक्ति

जुलाई १७०७ के शुरू मे असद खा व जुलफिकार खा आगरा आए। यद्यपि असद खा ने वजीर बनाए जाने की माग की परन्तु यह पद काबुल के दीवान व पजाब के नायब सूबेदार मुनीम खा को मिला जिसने उत्तराधिकार के युद्ध मे मुअज्जम की अमूल्य सेवाए की थी। उसे ७०००/७००० का मनसब तथा खान-ए-खाना बहादुर जफ़रजग का खिताब भी दिए गए। असद खाँ को वकील-ए-मुतलक नियुक्त किया गया। यद्यपि यह पद वजीर के पद से ऊचा था परन्तु वास्तविक शक्ति वजीर के पास ही रही। असदखाँ को ८०००/८००० दो अस्पा व निजाम-उल-मुल्क आसफउद्दौला का खिताब भी दिया गया। उसके पुत्र जुलफिकार खा को उसके पहले के पद (बख्शी-उल-मुल्क) पर नियुक्त कर दिया गया। उसे ७०००/७००० का मनसब दिया गया और कुछ समय पश्चात् उसे दक्षिण के छ सूबो की सूबेदारी भी दे दी गई[2]। परन्तु आरम्भ से ही असद खा व मुनीम खाँ के

---

1. खफीखा, पृ 700, इरविन 1, पृ. 36-37, इरादत पृ. 47।
2. मा उ, (अनुवाद), 1, पृ 274, 2, पृ. 1037, कामराज, 34 (बी), 35 (ए., यहया, 113 (बी), इरविन 1, पृ. 37-39, पार्टीज पृ 43। मुनीम खा की विशिष्ठ सेवाओ के लिए इरादत पृ. 43।

सबध ठीक नही रहे[1]। मुनीम खा यद्यपि योग्य व मेहनती व्यक्ति था परन्तु वह केन्द्र मे किसी ऊचे पद पर नही रहा था और उसे वडी समस्याओ को, जिनका सारे साम्राज्य पर असर पडता हो, समझने का कोई अनुभव नही था।

राजपूतो के प्रति भिन्न नीति का पालन; आवेर खालसा मे लेने का निर्णय

यद्यपि बहादुरशाह ने आम तौर से उन अफसरो के प्रति क्षमा की नीति अपनाई जो युद्ध मे तटस्थ रहे थे या जिन्होने आजम का पक्ष लिया था, परन्तु आवेर, मारवाड, कोटा व नरवर के प्रति दूसरी ही नीति अपनाई गई। वैसे तो १५ जुलाई को असद खा ने जयसिह को आबेर, दौसा, चाटसू परगने (वार्षिक आय ३,३०००००० दाम) वापस दिए जाने के आदेश जारी कर दिए थे[2] परन्तु लगभग एक सप्ताह बाद, सभवत: मुनीम खा के कहने पर, ये आदेश रद्द कर दिए गए। लगभग २० जुलाई को जयसिह को ज्ञात हुआ कि आवेर खालसे मे लिया जा रहा है और इस बारे मे आवेर व अजमेर के सूबेदार के पास शाही अफसर आवश्यक कार्यवाही के लिए भेजे जा चुके है। उसे यह भी ज्ञात हुआ कि यह कदम उसके छोटे भाई विजयसिह की प्रार्थना पर उठाया गया है[3]। जैसा हम देख चुके है, विजयसिह मुअज्जम के साथ काबुल सूबे मे था और उसने जाजव के युद्ध मे उसी का (मुअज्जम का) पक्ष लिया था। कुछ महीनो पश्चात् (जनवरी १७०८) जब बादशाह आवेर पहुचा तो उसने विजयसिह व जयसिह मे राज्य के लिए झगडे को आबेर राज को खालसे मे लेने का कारण बताया।

बहादुरशाह की नीति के औचित्य की विवेचना

यहाँ हम बादशाह के आवेर खालसा करने के निर्णय की औचित्यता पर विचार करेगे। जयसिह १६९९ से आँबेर का शासक था और अगले ७ वर्षो मे विजयसिह ने कभी भी जयसिह के आबेर पर राज्य करने के अधिकार का विरोध नही किया था। इसलिए अब अचानक ही विजयसिह के आवेर पर अपने अधिकार के दावे के आधार पर मुगल सरकार को इतना गम्भीर कदम नही उठाना चाहिए था। यह स्पष्ट है कि विजयसिह के आवेर की गद्दी के लिए दावे का कोई वैधानिक आधार नही था और विजयसिह व जयसिह मे झगडे को राज्य खालसा करने का वहाना बनाया गया था। राजपूतो मे सबसे बडे पुत्र के उत्तराधिकारी होने की प्रतिष्ठित परम्परा रही है और जो कुछ उदाहरण इसके विपरीत मिलते है वे केवल अपवादमात्र

1. देखिए पार्टीज, पृ. 26-27।
2. निजाम-उल-मुल्क आसफउद्दौला असदखा व अमीर-उल-उमरा नासिरजग जुलफिकार खां का मुहर अकित परवाना फखरुद्दीन के नाम, 15 जुलाई 1707, ज. आ.।
3. जयसिह का परवाना दीवान रामचन्द्र व पुरोहित हरसराम को, 22 जुलाई 1707, ज. आ., जयसिह-महाराणा, पत्र, 22 जुलाई 1707, ज. आ, भीमसेन, 169 (बी)।

है। इस कारण मुगल सरकार का विजयसिह के दावे को स्वीकार करने का प्रश्न ही नही उठता था। यह भी स्पष्ट था कि आबेर को खालसा करने का मुगल सरकार द्वारा एक कारण बताया गया था, परन्तु वास्तविक कारण कुछ और ही थे, जो स्पष्ट नही थे। जयसिह ने २२ जुलाई, १७०७ के महाराणा को लिखे पत्र मे आवेर को खालसे करने का कारण बादशाह की उसके प्रति आजम का पक्ष लेने के कारण नाराजगी बताई। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि आजम का पक्ष लेने अथवा तटस्थ रहने के लिए ईरानी तथा तूरानी अफसरो को कुछ भी नही कहा गया था और राजपूत राजाओ के राज्य इसी आधार पर जब्त किए जा रहे थे। आवेर को खालसा करने का जो कारण दिया गया था, वह उतना ही कमजोर और अस्पष्ट था, जितना कि जोधपुर को १६७९ मे खालसा करते समय दिया गया था[1]। मुगल सरकार की इस मनमानी नीति के कारण यह प्रश्न उठता था कि क्या मुगल सरकार को कमजोर बहानो पर या अकारण ही, अर्ध-स्वतंत्र राज्यो को जब्त करने व उत्तराधिकार के मामले मे मनमाना हस्तक्षेप करने का अधिकार है अथवा नही। उत्तराधिकार का वंश परम्परानुगत अधिकार व आतरिक स्वतत्रता इन राज्यो के, उनके मुगल सरकार के साथ सबध स्थापित होने से ही, मुगल अधीनता स्वीकार करने व शाही सेवा करने के एवज मे, अलिखित परन्तु प्रतिष्ठित अधिकार रहे थे और राज्यो व मुगल सरकार के बीच सबधो का आधार थे। जब भी मुगल सरकार अथवा किसी राज्य ने इन अधिकारो अथवा कर्तव्यो की उपेक्षा करने का प्रयास किया तो उनके सबध बिगड गए अथवा खुला सघर्ष भडक उठा। जैसा हम देखेगे, अपने पत्रो मे जयसिह व महाराणा ने कई बार मुगल सरकार के राज्यो को इस प्रकार खालसा करने के अधिकार पर आपत्ति प्रकट की[2] और मुगल सरकार के इस अधिकार को अस्वीकार कर दिया। मेवाड ने जो जोधपुर व आवेर का पक्ष लिया और मुगल सरकार से दो बार सघर्ष किया उसका प्रमुख कारण राजपूत राज्यो के इस अधिकार की रक्षा करना था।

जोधपुर के प्रति भी बहादुरशाह ने अपने पिता की ही नीति को यथासभव बनाए रखने का प्रयास किया[3]। कोटा के सबध मे भी बादशाह की नीति कठोर व भेदभाव पूर्ण थी। कोटा का राज्य व गागरोन शाहबाद आदि बूदी के महाराव

1. औरंगजेब ने न तो जसवन्तसिह की रानियों के पुत्र होने के समाचार की ओर न ही जोधपुर के वकील व अन्य अफसरो के यह कहने की कि उत्तराधिकार के नियमों के अनुसार राज्य स्वत. ही महाराजा के पुत्र को मिलना चाहिए, तनिक भी परवाह की और बड़े ही आपत्तिजनक ढग से मारवाड को खालसा मे ले आया (देखिए वाका-ए-अजमेर, 245-46)।

2. देखिए, पृ ।

3. देखिए, पृ. ।

वुधसिंह को दे दिए गए थे[1]। इससे कोटा का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो जाना था। साथ ही जो प्रदेश वुधसिंह को दिए गए थे, उन्हे कभी भी पुन खालसा किया जा सकता था।

मुगल सरकार का उद्देश्य

मुगल सरकार की इस नीति का वास्तविक उद्देश्य क्या था, यह पता लगाना कठिन है। इसका एक कारण यह है कि इस नीति के असफल हो जाने से इसके परिणाम कभी सामने नही आए। परन्तु आवेर व जोधपुर के प्रति मुगल-नीति, मुगल सरकार का इन राज्यो के केन्द्रीय भाग को अपने पास रखने के हर संभव प्रयत्न, और राज्यो व मुगल सरकार के बीच इस बारे मे पत्र व्यवहार से मुगल सरकार के उद्देश्य स्पष्ट होने लगते है। इसमे कोई संशय नही कि यदि दो तीन प्राचीन व प्रतिष्ठित राज्यो का मुगल साम्राज्य मे विलय हो जाता तो एक ऐसा क्रम प्रारम्भ हो जाता जिसके परिणामस्वरूप मुगल सरकार को पर्याप्त पाईबाकी भूमि मिल जाती, जिसके घोर अभाव के परिणामस्वरूप मुगलो की सम्पूर्ण जागीर व्यवस्था व मनसवदारी व्यवस्था टूटने लगी थी[2]। भीमसेन के अनुसार पाईबाकी जमीन (जिनमे से मनसवदारो को तनख्वाह जागीर दी जाती थी) की भारी कमी के कारण मुनीमखा ने वादशाह को राजपूत राज्यो को खालसा करने की सलाह दी जिससे जागीर प्रथा की गिरती हुई स्थिति सुधारी जा सके और पाईबाकी की कमी से निपटने मे सहायता मिले[3]। पर इस नीति को न्यायोचित नीति नही कहा जा सकता। जोधपुर पिछले २७ वर्ष से खालसे मे ही था और विजयसिंह के आवेर की गद्दी पर दावे के वहाने से आवेर को भी खालसे मे ले लिया जाए यह अनुचित था।

वादशाह का जयसिंह से आंवेर खालसा करने व लंगरकोट भेजने के वारे में कहना

जुलाई के मध्य मे स्वय वादशाह ने जयसिंह से आवेर के खालसा किए जाने का उल्लेख किया और उसे लगरकोट (पेशावर के निकट) जाने को कहा। वादशाह ने जयसिंह की इस दलील पर कोई ध्यान नही दिया कि वरसो से आवेर कछवाहो के पास रहा है और पहिले कभी भी इस प्रकार की आज्ञा जारी नही की गई है[4]।

जयसिंह का मेवाड़ से सहायता मांगना

इस भारी संकट के समय जयसिंह ने मेवाड की सहायता मागी। अपने पतन के दिनो मे भी मेवाड ही एक ऐसा राज्य था जिसमे किसी हिन्दू अथवा राजपूत

---

1 वंशभास्कर, जि. 4, पृ. 2999, 3008-09, 3022-23।

2. इसके वारे मे देखिए, पार्टीज, पृ 43-47, इरफान, पृ 269-70, अथरअली पृ 92-94।

3. भीमसेन, 169 (वी)। भीमसेन रावदलपत की सेवा में था और कोटा के हाडा व अन्य राजपूतो के निकट सपर्क मे आया था। इसलिए राजपूत राज्यों के खालसा करने से मुगल-सरकार को कितनी भूमि प्राप्त हो सकेगी, इसके वारे में उसे अवश्य ज्ञात होगा।

4. जयसिंह-महाराणा, पत्र, 22 जुलाई 1707, उ. आ।

राज्य के प्रति किए गए अन्याय के विरोध में मुगल साम्राज्य से टक्कर लेने का साहस था और जो सगठित राजपूत सघर्ष का नेतृत्व कर सकता था। जयसिंह ने २२ जुलाई, १७०७ के पत्र मे महाराणा को बादशाह द्वारा आबेर खालसा करने का वृत्तान्त लिखा। जयसिंह ने लिखा कि इसका कारण बादशाह की उसके द्वारा आजम का पक्ष लेने के कारण नाराजगी है। उसने महाराणा से सलाह मागी और एक ऐसा ही पत्र अजीतसिंह के पास भी भेजा[1] जिसने कुछ माह पूर्व ही औरगजेब की मृत्यु का हाल सुनकर जोधपुर पर पुन अधिकार कर मुगलो को मारवाड से बाहर कर दिया था।

मेवाड़ से उत्तर न आने पर जयसिंह ने पुनः 25 अगस्त को बुधसिंह कुंभाणी के हाथ एक पत्र भेजा जिसमे लिखा था कि उने महाराणा के पत्र की अत्यधिक प्रतीक्षा रही। बाद के समाचार देते हुए उसने लिखा कि लगरकोट की नियुक्ति रद्द कर दी गई है, परन्तु आबेर को खालसा मे लेने के लिए भेजे गए सवार वहाँ पहुँच चुके है और सैयद हुसैन खा को वहा का कार्यभार लेने के लिए भेजा जा रहा है। यद्यपि उसने अनेक बार बादशाह से आबेर खालसा न करने का निवेदन किया और शाही अफसरो को भी हुक्म बदलवाने के उद्देश्य से सतुष्ट किया, परन्तु ये सब प्रयत्न विफल रहे। उसने लिखा कि बादशाह का अपना निर्णय बदलने का कोई विचार नही दिखाई देता और विजयसिंह राज्य को अपने नाम कराने के लिए प्रयत्न कर रहा है। एक ऐसा ही पत्र उसने महाराजा अजीतसिंह के पास भी भेजा[2]।

जयसिंह का आबेर खालसा करने के आदेश को स्थगित करवाने का प्रयत्न

इन पत्रो के उत्तर आने तक जयसिंह ने आबेर मे अपने दीवान रामचन्द्र शाह को लिखा कि वह अजमेर सूबे के दीवान से बादशाह के पास यह रिपोर्ट पहुँचाए कि आबेर को खालसा करने से इस मुल्क मे उपद्रव बढने की सभावना है क्योंकि यहाँ के लोग शताब्दियो से इसी इलाके मे रह रहे है। उसने रामचन्द्र को लिखा कि दीवान की रिपोर्ट ऐसी हो कि उनका काम भी निकल जाय और बादशाह के मन मे शक भी पैदा न हो[3]। जयसिंह ने बादशाह के समक्ष अनेक बार यही दलील दी, और अन्त मे कहा कि यदि आबेर कुछ समय के लिए खालसा किया भी जा रहा है तो उसे बहात्री, दौसा व चाटसू परगने दे दिए जाए[4]। परन्तु बादशाह ने उसे देवतीसचरी व चाटसू देना ही स्वीकार किया और अगस्त के आरम्भ मे इस बारे मे सनदे भी बन गई। परन्तु वे अक्टूबर के अन्त मे ही जयसिंह को मिली।

---

1. वही।
2. जयसिंह–महाराणा, 25 अगस्त 1707, उ आ।
3. जयसिंह–दीवान रामचन्द्र व पुरोहित हरसराम, 22 जुलाई 1707, ज आ।
4. वही।

इन दिनो जयसिंह के रामचन्द्र को भेजे गए परवानो से ज्ञात होता है कि उसे आवेर के लौटा दिए जाने की आशा थी और इसलिए वह कोई ऐसा कदम नही उठाना चाहता था जिससे मुगल सरकार को उस पर विद्रोह अथवा अनुशासन भग करने का आरोप लगाने का अवसर मिले। २८ अगस्त के पत्र मे उसने रामचन्द्र को लिखा कि वह आवेर हुसैन अली को निर्विरोध सौप दे और अजमेर के सूवेदार शुजात खा आदि की समुचित अगवानी करे। उसने आवेर को कुछ समय के लिए इजारे पर दिए जाने की प्रार्थना की। उसका उद्देश्य यह था कि यदि आवेर उसके पास इजारे पर भी रहे तो औरो को गडवड करने का अवसर नही मिलेगा[1]। उसे आशा थी कि सभवत वादशाह अपना निर्णय वदल देगा।

मेवाड़ का जयसिंह को समर्थन का आश्वासन

सितम्वर के शुरु मे जयसिंह को महाराणा का पत्र मिला। जयसिंह ने ११ सितम्वर के पत्र मे महाराणा के प्रति उनकी सलाह के लिए बडी कृतज्ञता प्रकट की[2]। वाद की घटनाओ के प्रकाश मे ऐसा लगता है कि मेवाड ने जयसिंह को सभवत यह सलाह दी कि वे उचित समय पर सम्मिलित रूप से राज्य प्राप्त करने के लिए वल प्रयोग करेगे परन्तु उसके पहले आवेर को खालसा करने के हुक्म को रद्द कराने के लिए हर सभव प्रयत्न किए जाए।

महाराणा व जयसिंह का गाजीउद्दीन खां के साथ पत्र व्यवहार

इसके साथ ही महाराणा व जयसिह ने तूरानी पार्टी के नेता गाजीउद्दीन खा फिरोजजग से पत्र व्यवहार शुरु कर दिया। सितम्वर के मध्य मे जयसिह को गाजीउद्दीन खा का पत्र मिला और इसी महीने मे महाराणा ने अपना वकील गाजीउद्दीन खाँ के पास भेजा[3]। इन पत्रो का महत्व इसलिए वढ जाता है कि गाजीउद्दीन खा, उसका पुत्र चिनकुलीच खा (निजाम-उल-मुल्क) व गाजीउद्दीन खा का भतीजे मुहम्मद अमीन खा के वादशाह व मुनीम खा से औरगजेव के समय से ही अच्छे सबध नही थे[4]। यद्यपि उत्तराधिकार के युद्ध के वाद वहादुरशाह ने क्षमा व कृपा का आश्वासन देते हुए इन्हे पत्र भेजे थे और गाजीउद्दीन खा को गुजरात का सूवेदार भी नियुक्त कर दिया था, परन्तु इससे इनके आपसी सम्वन्धो की कटुता मे कोई विशेष अन्तर नही

---

1. जयसिंह-दीवान रामचन्द्र, ड्राफ्ट परवाने, 28 अगस्त, 1 सितम्वर 1707, ज आ।
2 जयसिंह-महाराणा अमरसिह 11 सितम्वर 1707, उ आ।
3. मेहता जगन्नाथ (गाजीउद्दीन खा का मु शी)—जयसिह, 12 सितम्वर, 1707 ज आ.।
4 गाजीउद्दीन व मुअज्जम के और अमीन खा व मुनीम खा के खराव संवधो के वारे मे देखिए इर्विन, जि 1, पृ. 40-41 मा उ जि 2, 293। चिनकुलीच खा व मुहम्मद अमीन खा 26 अक्टूवर को दरवार मे आए। चिनकुलीच खा को अवध की सूवेदारी व गोरखपुर की फौजदारी दी गई और अमीन खा को मुरादावाद का फौजदार नियुक्त किया गया।

पड़ा था। कुछ माह बाद गाजीउद्दीन खां ने राजपूतों के साथ जो गुप्त समझौता किया उसके बारे मे हम आगे देखेगे।

बादशाह द्वारा आंबेर इजारे पर देना

इसी बीच जयसिंह के आवेर को खालसा करने के हुक्म को वापिस लेने के सभी प्रयत्न असफल रहे और आवेर उसे इजारे पर न देकर एक अन्य व्यक्ति (सुखी अजदारी) को दे दिया गया जिससे जयसिंह को बडी निराशा हुई[1]।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मारवाड व मेवाड़ में मुगल स्थिति

अब हम इन्ही महीनो मे मारवाड मे घटी घटनाओ का उल्लेख करेगे। जैसे ही अजीतसिंह को औरंगजेब की मृत्यु की सूचना मिली, उसने शाही सेनाओं को जोधपुर (१६ मार्च १७०७), मेडता, सोजन, पाली, आदि से निकाल बाहर किया। इन दिनो उसने मेवाड़ से बराबर सम्पर्क बनाए रक्खा व महाराणा की सलाह से काम किया। महाराणा ने भी बादशाह की मृत्यु के बाद उत्पन्न स्थिति का लाभ उठा कर पुर, माडल, वेदनोर व माँडलगढ परगने मुगलो से वापस ले लिये। कुछ महीने बाद बहादुरशाह ने अजीतसिंह को उत्तराधिकार के युद्ध मे उसका पक्ष लेने के लिये बुलवाया। अजीतसिंह इस समय मारवाड मे अपनी स्थिति दृढ करने मे व्यस्त था और इसलिये वह वही रहा[2]। यह उसने उचित ही किया क्योंकि उत्तराधिकार के युद्ध का निर्णय बड़ा अनिश्चित था। परन्तु बहादुरशाह की विजय के बाद भी न तो अजीतसिंह ने उसे कोई पत्र व नजर भेजे और न ही मुगल सरकार से किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित किया। वैसे यदि वह यह सब करता तो भी इसमे कोई संशय नही कि मुगल सरकार मारवाड पर अपना २७ वर्ष पूर्व स्थापित कब्जा बनाए रखने का हर सभव प्रयत्न करती। मुगल सरकार मारवाड को अपने हाथ से निकलने नही देना चाहती थी और अपनी सत्ता वहा पुनः स्थापित करने के लिये दृढ संकल्प थी। अजीतसिंह का बिना आज्ञा के मारवाड़ पर अधिकार कर लेना मुगल सरकार के लिये बडी चुनौती थी। इस कारण मारवाड को पुनः खालसा मे करना आवश्यक समझा गया। इस कार्य के लिये व आवेर को खालसा करने से उत्पन्न किसी भी स्थिति से निपटने के लिये बादशाह ने कामबख्श के विरुद्ध दक्षिण पहुंचने के पहले आवेर व जोधपुर जाने का निश्चय किया। जब जयसिंह को यह ज्ञात हुआ तो उसने रामचन्द्र को लिखा कि वह बडी संख्या मे राजावत, शेखावत, नरूका आदि को एकत्रित करे जिससे मुगल सरकार को उसके मुल्क की ताकत के बारे मे ज्ञात हो

---

1. जयसिंह—किशनसिंह शेखावत, फ प. 21 दिसम्बर, ज आ.।
2 ओझा, जोधपुर, जि 2, पृ 528-29, वीर विनोद जि. 2, पृ 767, टाड, जि. 2, पृ 69, भीमसेन 170 (बी), इरविन जि. 1, पृ. 45।

जाए[1]। यह केवल बादशाह पर प्रभाव डालने के लिए प्रदर्शन मात्र ही था क्योंकि इस समय जयसिंह का मुगल सरकार के विरूद्ध सघर्ष करने का कोई इरादा नहीं था। समय भी इसके लिये उपयुक्त नही था और जल्दबाजी मे की गई छोटी सी गलती से भारी हानि हो सकती थी।

जयसिंह का आंबेर खालसा करने का आदेश

बादशाह २ नवम्बर को अजमेर के लिये चल पडा। कुछ फासला तय करने पर जोधपुर के लिये नए नियुक्त किये गये फौजदार मेहराव खा को वहा जाने के लिये रवाना कर दिया गया, और जयसिंह को बादशाह के आंबेर पहुचने से पूर्व शहर खाली करवा देने का हुक्म दिया गया। ४ दिसम्बर को हुसैन अली की रिपोर्ट से आबेर के खाली कर दिये जाने की सूचना शाही दरबार मे पहुची[2]।

बादशाह का आंबेर आना, आंबेर का नाम मोमिनाबाद रखना

शाही सेना ने ७ जनवरी १७०८ को आबेर के निकट पड़ाव दिया। तीन दिन बाद बादशाह के पुत्र जहादारशाह, अजीम-उश-शान व जहानशाह ने आबेर आकर किला व इमारते देखी। मध्याह्न के समय बादशाह भी तख्त-ए-खाँ पर बैठ कर किले मे आया। उसने सर्व प्रथम वहा अकबर द्वारा निर्मित मस्जिद मे नमाज पढी और फिर शहर व राजप्रासादो को देखने के लिये रवाना हुआ। अनेक अफसरो के अलावा उसके साथ अजीम-उश-शान, रफी-उश-शान, अलीतबर एव बीदर दिल आदि भी थे। आबेर के कुछ साहूकार भी उसके साथ थे जिनसे उसने इमारतो के बारे मे पूछताछ की। आबेर के महलो व सुन्दर बगीचो को देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। सूर्यास्त से कुछ समय पूर्व बादशाह अपने शिविर को लौट पडा[3]। तत्कालीन अखबा-रात मे व अन्य पत्रो मे इस अवसर पर आबेर विजयसिह को दिये जाने का कही उल्लेख नही है। लगभग दो माह बाद बादशाह ने आबेर का नाम मोमिनाबाद रख दिया[4]। यदि बादशाह का उद्देश्य गद्दी के लिये झगडे को निपटाना ही था या वह जयसिंह के स्थान पर विजयसिंह को आबेर का राजा बनाना चाहता था, क्योंकि उसके शाही आज्ञाओ के अनुकूल बने रहने की अधिक सभावना थी, तो आबेर का सात सौ वर्ष पुराना नाम बदलने का क्या न्यायोचित कारण था? इससे राजपूतो के मन मे मुगल सरकार की नियत के बारे मे शक पैदा होना स्वाभाविक था।

जब बादशाह अजमेर के लिये रवाना हुआ तो जयसिह पहिले की भाति सेना के साथ-साथ ही रहा। उसके पास इस समय केवल दौसा था। उसे चाटसू व मौजा-

1. जयसिह—दीवान रामचन्द्र, 31 अक्टूबर 1707, ज आ।
2. ज. अख., 4 दिसम्बर 1707, इरविन, जि. 1 पृ. 46।
3 ज अख., 23 दिसम्बर 1707, 10 जनवरी 1708।
4. ज अख., 1 मार्च 1708।

वाद परगने, जो उसके वतन के महाल थे, देने की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई थी। प्रतिदिन सध्या के समय वह रावराजा बुधसिह, विजयसिह, शत्रुशाल राठौड के साथ अपने स्थान पर एक ओर खड़ा हो जाता जब तक कि सेना सुरक्षित रूप से दूसरे पडाव पर नही पहु च जाती[1]।

बादशाह का मेड़ता की ओर जाना, महाराणा व जयसिंह की सलाह पर अजीतसिंह का बादशाह से मिलना

बादशाह अजमेर से मेडता की ओर रवाना हुआ। सेना के आगमन से डर कर मार्ग के गावो के लोग भाग गए थे[2]। वहादुरशाह इस समय अविलम्ब दक्षिण पहु चना चाहता था। उसे सूचना मिली थी कि कामबख्श ने गुलबर्गा, इम्तियाजगढ, नूराबाद व दक्खिन खेरा किले ले लिये है और कर्नाटक पर भी अधिकार जमा लिया है[3]। इधर मथुरा के निकट के क्षेत्र मे जाटो ने फिर लूट मार शुरू कर दी थी और पिछले महीनो मे दो बार उनके विरुद्ध सैनिक दस्ते भेजने पडे थे[4]। इसलिये बादशाह यथासभव मारवाड़ मे उलझना नही चाहता था। २७ जनवरी को अजीतसिंह के पास नाहर खां की मार्फत एक फरमान भेजा गया था जिसमे उसे शाही कृपा का आश्वासन दिया गया था और दरबार से प्रस्तुत होने को कहा गया था[5]। २ फरवरी को दुर्गादास को भी प्रस्तुत होने के लिये हस्ब-उल-हुक्म भेजा गया। ५ फरवरी को अजीत का पत्र आया जिसमे उसने बादशाह के समक्ष प्रस्तुत होना स्वीकार किया। जैसा उल्लेख कर चुके है, जोधपुर, मेवाड व आबेर एक दूसरे के परामर्श से कार्य कर रहे थे, और अजीतसिंह ने महाराणा व जयसिंह की सलाह से ही दरबार मे आना स्वीकार किया था। अजीतसिंह को लाने के लिये बादशाह ने मुनीम खा वजीर के छोटे पुत्र खानजमा को एक छोटी सेना व कुछ तोपो के साथ मिलने भेजा। बादशाह ९ फरवरी को मेडता पहु च गया[6]।

१६ फरवरी को समाचार आया कि खानजमा व अजीतसिह की पीपलबढ के स्थान पर भेट हुई और खानजमा मेहराब खाँ को लेकर शीघ्र ही जोधपुर के शहर व किले पर शाही अमल स्थापित करने जायेगा। १४ फरवरी को खानजमा अजीतसिंह के साथ शाही शिविर मे आया और अगले दिन वे बादशाह के समक्ष उपस्थित हुए। अजीतसिंह के हाथ रूमाल से बधे थे जिसे बादशाह ने खोल देने को कहा।

---

1. ज. अख., 13–14 जनवरी, ज. आ.।
2 कामराज, 36 (बी)।
3. ज अख , 2 अक्टूबर 1707, 31 दिसम्बर 1707, 21 जनवरी 1708।
4. ज अख., 13 अगस्त 1707।
5. ज अख., 26 जनवरी 1708।
6. ज. अख , 2, 5, 10 फरवरी 1708, ओझा, जोधपुर, जि. 2, पृ. 533 नो. 2।

उसे ३५००/३५०० का मनसब (जिनमे १००० दो अस्पा थे) व महाराजा की उपाधि दी गई[1]। परन्तु उसे उसका राज्य नही लौटाया गया और कुछ दिन वाद (१८ फरवरी) जोधपुर का नाम मुहम्मदावाद रख दिया गया[2]। दुर्गादास १३ फरवरी को आ चुका था। अब अजीतसिंह व दुर्गादास जयसिह की ही भांति शाही सेना के साथ हो लिये।

महाराणा द्वारा बादशाह की अवहेलना

१४ मार्च को बादशाह अजमेर पहुंचा और कुछ ही दिन वहा ठहर कर दक्षिण के लिये चल पड़ा। शाहपुरा होते हुए वह चितौड पहुचा, जो वीरान पड़ा था। यद्यपि महाराणा से कहलाया गया था कि वह बादशाह के मेवाड मे से होकर जाने का लाभ उठाए, और स्वय प्रस्तुत होकर स्वागत करे, और ऐसा न करने पर दण्ड देने की भी धमकी दी गई थी, परन्तु शाही प्रस्ताव मेवाड़ के साथ १६१४ की संधि के विरुद्ध था, और महाराणा ने अपने पूर्वजो की भांति बादशाह के समक्ष उपस्थित होना स्वीकार नही किया और वह पहाड़ो की ओर चला गया। यद्यपि मेवाड के इस रूख से बादशाह को बहुत क्रोध आया, परन्तु उसका कामबख्श के विरुद्ध शीघ्र ही दक्षिण पहुंचना आवश्यक था और इस लिये महाराणा को सजा देने का विचार कुछ समय के लिये स्थगित कर दिया गया[3]।

मुगल सरकार की अस्पष्ट नीति के कारण राजपूतो में चिन्ता

वहादुरशाह मदसोर व नोलाई होता हुआ दक्षिण की ओर बढा। मार्ग मे जयसिह व अजीतसिह को विचार-बिमर्श करने का पर्याप्त अवसर मिला[4]। जैसे जैसे दिन वीतते, राजपूतो का मुगल सरकार के आश्वासनो के प्रति अविश्वास बढता जाता। जैसा मिर्जा मुहम्मद लिखता है, मुनीम खा ने बादशाह को यह राय दी थी कि राजपूतो को किसी न किसी बहाने से तब तक रोके रखा जाय जब तक कि कामबख्श का मामला तय न हो जाये। उसके बाद जो ठीक समझा जायगा वैसा ही किया जा सकता है। इस बीच मे राजपूतो की शक्ति काफी कम हो जायेगी और वे विरोध करने की स्थिति मे नही रहेगे[5]।

1 ज अख, 12, 14, 16 फरवरी 1708, रेउ, मारवाड, जि 1, . 294–95, इरविन जि. 1, . 43।

2. ज. अख, 18 फरवरी 1708।

3. इसके लिये देखिए भीमसेन 172, इरविन, जि. 1, पृ 49।

4. भीमसेन 172 (बी) पुस्तक प्रकाश री जूनी वही, पृ. 86, रा. आ वी।

5. पार्टीज, 34।

जयसिंह अजीतसिंह का बादशाही सेना से अलग होने का निर्णय

यह स्पष्ट था कि मुगल सरकार आंबेर व जोधपुर वापस करने के मूल प्रश्न को टाल रही है। पिछले दिनों से जोधपुर व आबेर के कई अफसर व राजपूत सरदार मुगल सरकार द्वारा राज्यो के वापस किये जाने पर जोर दे रहे थे। उनका कहना था कि मुगल सेना के नर्मदा पार कर लेने के बाद उनका वापस आना कठिन हो जावेगा। दुर्गादास, मुकुन्द दास व जगराम ने इस पर जोर दिया कि मुगलो से सबंध विच्छेद करने का उचित समय आ चुका है। मेवाड़ से बिहारीदास पचोली भी इसी आशय का पत्र लेकर जयसिंह व अजीतसिंह से मिला था। २० अप्रेल को भोर से पहले ही अजीतसिंह जयसिंह के खेमे मे आया और दोनो ने मुगल सेना से अलग हो जाने की तिथि तथा समय निश्चित कर लिया[1]। २० अप्रेल को जब बादशाह बडोद से अगली मजिल के लिए रवाना हुआ तो राजपूत थोडी देर तक तो पीछे चलते रहे और फिर मुडकर द्रुत गति से देवलिया की ओर बढ गये[2]।

बादशाही सेना से अलग होने के तुरन्त बाद जयसिंह ने इसकी सूचना महाराणा के पास भेजी। उसने लिखा कि (वैशाख सुदी) १३ को वे बादशाह से अलग हो गए थे, और शीघ्र ही महाराणा के पास पहुचेगे[3]। ३० अप्रेल को गडवा गांव मे पहुचकर महाराणा ने उनकी अगवानी की वहा से वे सब उदयपुर आए। मेवाड के इतिहास मे वह एक गौरवमय क्षण था जब महाराणा के दाएँ ओर महाराजा अजीतसिंह, बाएँ ओर जयसिंह और पीछे दुर्गादास राठौड अपने घोड़ो पर सवार होकर सम्मिलित राजपूत सेना के साथ उदयपुर मे प्रविष्ठ हुए। अगले दिन महा राणा ने दरबार किया जिसमे उन्होने अपने अतिथियो का यथोचित स्वागत किया[4]।

महाराणा द्वारा अपनी पुत्री के जयसिंह के साथ विवाह की शर्तें

कुछ दिन बाद महाराणा ने अपनी पुत्री का जयसिंह के साथ विवाह करने को प्रस्ताव रखा। मेवाड़ का प्रस्ताव सामाजिक व राजनैतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसका तात्पर्य यह था कि मेवाड पुन आबेर के कछवाहो को अपने सगो के रूप मे अगीकार करेगा। मुगलो की अधीनता स्वीकार करने व उनका निस्सकोच समर्थन करने के कारण आबेर व मेवाड के बीच जो मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया था, उस अप्रिय अध्याय को मेवाड अब समाप्त कर रहा था। अजीतसिंह का मेवाड़ की राजकुमारी के साथ पहले ही विवाह हो चुका था। अब जयसिंह के साथ

1. पुस्तक प्रकाश री जूनी बही, पृ 86, बिहारीदास के आने का उल्लेख जयसिह ने शाही सेना से अलग होने के तुरन्त बाद महाराणा को लिखे पत्र मे किया है।
2. जयसिंह-महाराणा, पत्र वीर-विनोद मे उद्धृत, 2, पृ 768, जोधपुर ख्यात; जि. 2, पृ. 82।
3. जयसिह महाराणा, पत्र, वीर-विनोद, 2, पृ. 768।
4. विस्तृत वृतान्त के लिए देखिए, वीर-विनोद, 2, पृ. 768–71।

भी वैवाहिक सबध हो जाने से राजपूताने के तीन सबसे शक्तिशाली राजघराने एकता के सूत्र मे बध रहे थे। विवाह का राजनीतिक महत्व यह था कि इससे मेवाड का जयसिंह को मुगल सरकार के विरूद्ध पूर्ण समर्थन देने का निश्चय स्पष्ट होता था। परन्तु विवाह से पहले जयसिंह ने एक इकारनामे[1] पर हस्ताक्षर किये जिसमे उदयपुर की राजकुमारी को पटरानी का स्तर, उससे उत्पन्न पुत्र के ही आंबेर की गद्दी पर बैठने का अधिकार व उसकी पुत्री को किसी मुसलमान से विवाह न करना स्वीकार किया गया था। राजमहल मे व बाहर पटरानी को जो विशिष्ट सम्मान मिलता था, उसका भी इस इकारनामे मे उल्लेख था। यद्यपि इनमें दूसरी शर्त के कारण भविष्य मे झगडा होने की सभावना थी, और ऐसा हुआ भी, परन्तु इस समय जयसिंह के कोई पुत्र नही था और यह सभव था कि राणी सीसोदणी के ही सर्वप्रथम पुत्र हो। इस कारण जयसिंह ने इन शर्तों को स्वीकार कर लिया। २५ मई को उदयपुर मे उसका विवाह चद्रकुवर बाई से सम्पन्न हुआ।

जयसिंह द्वारा आंबेर लौटाने के बारे में फरमान की अवहेलना करना

जिस दिन राजपूत बादशाही सेना से अलग हुए थे, उसी दिन जयसिंह के नाम एक फरमान भेजा गया था जिसमे उसे उसका राज्य वापस दिये जाने का उल्लेख था[2]। निस्सदेह इस फर्मान का उद्देश्य जयसिंह को अजीतसिंह से अलग कर राजपूत एकता को समाप्त करना था। यह भी सभव था कि यह फर्मान सिर्फ धोखा ही हो। इसलिए जयसिंह ने इस फर्मान पर कोई ध्यान नही दिया।

जहांदार शाह का पत्र व महाराणा का उत्तर

इन्ही दिनो महाराणा के पास शाहजादा जहादार शाह का निशान पहुचा जो राजपूतो के बडौद से लौटने के चार दिन बाद भेजा गया था। जहादार शाह ने लिखा कि जयसिंह व अजीतसिंह तनख्वाह व जागीर के मिलने मे विलम्ब होने के कारण भाग आए है। उसने लिखा कि महाराणा उनको शह न दे और उनकी मुआफी की अर्जियाँ भिजवाए जिन्हे वह स्वीकार करवा देगा[3]। परन्तु औपचारिक तौर पर अर्जिया भेजने के अलावा महाराणा ने जहादार शाह के पत्र पर कोई ध्यान नही दिया।

राजपूतो का जोधपुर व आंबेर पर पुनः अधिकार करना

मई-जून १७०८ मे राजपूत उनके राज्य लौटाए जाने के बारे मे मुगल सरकार से निश्चित आश्वासन पाने की प्रतीक्षा करते रहे। उनका उद्देश्य स्वतत्र होना नही था जो तत्कालीन राजनीतिक स्थिति मे सभव भी नही था। परन्तु वे मुगल

1. कपटद्वारा, पत्र न. 14960, 1 मई 1708।
2. फरमान की नकल, 20 अप्रेल, 1708, ज. आ.।
3. निशान, वीर विनोद (जि. 2, पृ 773-74) मे उद्धृत।

सरकार की मनमानी सहन करने को तैयार नही थे। वे इस वारे मे दृढ सकल्प थे कि उनके राज्य विना शर्त वापस किये जाएं। पर्याप्त प्रतीक्षा के बाद उन्होने अपने राज्यो को वलपूर्वक ले लेने का निर्णय किया। जून के अन्त मे राजपूतो की सम्मिलित सेना ने पाच दिन के घेरे वाद फौजदार मिहराव खा को जोधपुर खाली करने पर विवश कर दिया। उसे विना हानि पहुचाये अजमेर जाने दिया गया। ३ जुलाई को राजपूतो ने जोधपुर मे पुन: प्रवेश किया और अगले दिन अजीतसिंह का राज्याभिषेक हुआ। उस अवसर पर जयसिंह ने अपने हाथ से अजीतसिंह के टीका किया[1]। कुछ दिन वाद रामचन्द्र, सावलदास (मेवाड का) ने आवेर लेने का प्रयत्न किया। वे पहली वार तो असफल रहे परन्तु दूसरी बार उन्होने सैयद हुसैन खा बारहा को आवेर से खदेड कर वाहर किया। सैयद के लगभग ५०० सैनिक काम आए। राजपूतो के कुल १००० सैनिक हताहत हुए। हुसैन अली को कालाडेरा के पास दुर्गादास ने भी हराया। वह भागकर नारनौल चला गया जहाँ उसका भाई फौजदार था। राजपूतो की इस सफलता का समाचार वादशाह को ११ अगस्त १७०८ को मिला[2]।

जहाँदार शाह का विरोध-पत्र

आवेर पर पहले आक्रमण के वाद, जो असफल रहा था, जहादार शाह ने शिकायत भरा पत्र महाराणा को भेजा। उसने लिखा कि रामचन्द्र को तुरन्त निकाल दिया जाय और सूचित किया कि फिलहाल जयसिंह व अजीतसिंह की अर्जियो पर गौर करना मुल्तवी रखा जा रहा है[3]। इसके जवाब मे महाराणा ने घटना के लिए रामचन्द्र को दोपी ठहराया। परन्तु यह स्पष्ट कर दिया कि जयसिह व अजीतसिंह का आवेर व जोधपुर पर पूरा हक है और यदि उन्हे उनके वतन नही लौटाये गये तो हिन्दुस्तान मे बडे पैमाने पर उपद्रव होगा। इसी समय असद खा को भेजे गये पत्र मे महाराणा ने यह वात और भी स्पष्ट की और लिखा कि जब तक आवेर व जोधपुर जयसिंह व अजीतसिह को नही सौप दिये जाएगे, राजपूत चैन से नही बैठेंगे। इसलिए उनके वतन बहाल किये जाने के वारे मे सनदे तुरन्त भेजी जानी चाहिऐ[4]।

---

1. भीमसेन, 173 (ए), ओझा, जोधपुर जि. 2, पृ. 537, वीर विनोद, जि. 2, पृ. 774–75, रेऊ, मारवाड, जि. 1, पृ. 296, वाकीदास, नं. 391–92।
2. लालसही (?)—जयसिंह, फा प, 24 जुलाई 1708, ज. आ., इरविन, जि. 1, पृ. 67–69, 13 जुलाई को वादशाह ने सैयद हुसैनअली को राजपूतों के आक्रमण को विफल कर देने के उपलक्ष मे फतहजंग खा की उपाधि दी थी (ज. अख, 13 जुलाई 1708)।
3. निशान (अनुवाद), वीर विनोद, जि. 2, पृ. 777 पर.।
4. दोनों पत्रों के अनुवाद देखिए वीर विनोद मे (जि. 2, पृ. 777–78)।

जयसिंह की अजीतसिंह की पुत्री से सगाई होना

जयसिह १ अगस्त तक जोधपुर रहा। फिर वह मेडता आया। जोधपुर मे उसने महाराजा अजीतसिह द्वारा भेजा गया नारियल स्वीकार कर लिया[1]। परन्तु उसका अजीतसिह की पुत्री से विवाह कई वर्ष बाद (दिसम्बर १७१९) मे हुआ। लगभग इसी समय मेवाड ने पुर, मॉडल आदि परगनो पर पुनः अधिकार कर लिया।

जयसिंह का शाहू को एक महत्वपूर्ण पत्र

जोधपुर व आबेर अपने अधिकार मे ले लेने के बाद राजपूत शासको ने अपनी स्थिति दृढ करने का हर सभव प्रयत्न किया। उन्होने शाहू, छत्रसाल, बु देला आदि को भी पत्र लिखे जिनमे उनके प्रदेशो मे मुगलो के विरुद्ध सघर्ष तेज करने का आग्रह किया। राजपूतो ने उन्हे लिखा कि बादशाह ने उनके (राजपूतो) के साथ धोखा किया है और मुगल सरकार हिन्दुओ को किसी न किसी बहाने बर्बाद करने पर तुली हुई है। उन्होने कहा कि यदि मुगल सरकार अपनी नीतियो को सुधार ले तो उन्हे उसका विरोध करने का कोई कारण नही है। जयसिह ने शाहू को उन दोनो के पूर्वजो के बीच स्नेहपूर्ण सबधो का स्मरण कराया और लिखा कि सब हिन्दुओ की शर्म एक है। इसलिए मराठे शाह आलम को दक्षिण से सुरक्षित न लौटने दे और उसे वहा वैसे ही अटकादे 'जैसे उन्होने बादशाह आलमगीर को अटकाकर हिन्दुस्तान की शर्म रखी थी'। जयसिह ने लिखा कि पहले यह कार्य मराठा अफसरो ने ही कर दिया था, और जब शाहू स्वय वहा है तो यह कार्य और भी आसानी से हो जाना चाहिए। जयसिंह ने शाहू को कामबक्श से सलाह कर और उसके साथ मिलकर बादशाह का विरोध करने को लिखा।

समझौते के प्रयत्न

राजपूतो के बादशाही शिविर से भाग जाने (२० अप्रेल १७०७) के बाद से ही जहादार शाह व असद खा समझौते का प्रयास कर रहे थे। जून १७०८ के अन्त मे असद खाँ ने महाराणा को सूचित किया कि बादशाह ने जयसिह, अजीतसिंह व दुर्गादास की मसबे बहाल करने के हुक्म जारी कर दिये है और उन्हे क्रमश खदमनी (?) सोजत व जैतारन व दुर्गादास को सिवाना के परगने दिये जा रहे है। उसने आश्वासन दिया कि यदि राजपूतो ने जल्दबाजी मे कोई आपत्तिजनक कार्य नही किया तो वह सिफारिश कर उन्हे उनके राज्य वापस दिलवा सकेगा[2]। राजपूतो के जोधपुर व आंबेर ले लेने के बाद भी समझौते के प्रयत्न चलते रहे। सितम्बर मे हम

1 स्याह वकाया, 27 जुलाई, 1708, ज. आ.।

2. महाराणा-असद खा, पत्र, वीर विनोद, जि 2, पृ. 777–78, पत्र से ज्ञात होता है कि असद खा आरम्भ से ही राजपूतों को उनके राज्य लौटाने के पक्ष मे था, इसके विपरीत मुनीम खा इसमे हर तरह से रुकावट डाल रहा था।

देखते है कि एक ओर तो सैयद हुसैन खा को मदद भेजी जा रही थी और दूसरी ओर जयसिंह को २५००/२०००, अजीतसिंह को ४०००/३००० व दुर्गादास को ३०००/२००० के मसब दिये जा रहे थे[1]। दुर्गादास को राव का खिताब भी वापस दे दिया गया था। परन्तु कुछ दिन वाद ही साभर के निकट राजपूतो की सैयद हुसैन अली से जोरदार टक्कर हुई। इसके साथ ही कुछ समय के लिए समझौते के प्रयत्न दोनो ओर से स्थगित कर दिये गये।

राजपूतो द्वारा सांभर लेना; चूडामरण जाट का सैयद हुसैन अली से अलग होना व जयसिंह के प्रति भक्ति प्रदर्शित करना

अक्टूबर १७०८ मे जयसिंह, अजीतसिंह व दुर्गादास के पास मेडता खबर पहुची कि सैयद हुसैन खाँ एक वडी सेना के साथ, जिसमे चूडामरण जाट भी शामिल है, आँवेर पर आक्रमरण करने के लिए वढ रहा है[2]। सैयद हुसैन खॉ का स्थानान्तर करने के हुक्म जारी हो चुके थे परन्तु उसकी विनती पर उसे मोमिनाबाद (आँवेर) वापस लेने का अवसर देने को वादशाह तैयार हो गया था। यह समाचार मिलने पर राजपूतो की सम्मिलित सेना साँभर आ पहुची और शहर पर अपना अधिकार जमा लिया[3]। सभवत यह खवर मिलने पर सैयद हुसैन खा साभर की तरफ मुड गया। इसी बीच चूडामरण किसी वहाने से सैयदो की सेना से अलग हो गया था। कुछ महीने वाद आवेर के एक अफसर किशनसिंह द्वारा भेजी गई रिपोर्ट से प्रतीत होता है कि जयसिंह ने चूडामरण को सैयद से अलग हो जाने को लिखा था और इसके वदले मे कैथवाडा के स्वामी जैत्रसिह को, जो चूडामरण का विरोधी था, वहाँ से निकाल देने का आश्वासन दिया था। नवम्बर मे जयसिह ने अपना वचन पूरा कर दिया। वाद मे चूडामरण ने जयसिह को एक वडा विनम्र सदेश भेजा जिसमे उसने अपने आप को महाराजा का नौकर कहा। चूडामरण ने कहा कि वह महाराज से मिलने को वरावर इच्छुक रहा है परन्तु पिछले काफी समय से उसे मुगलो से वचने के लिए इधर-उधर वरावर भागना पडा था[4]।

सांभर के युद्ध में सैयदो की पराजय

३ अक्टूवर को साभर के निकट राजपूतो व सैयद हुसैन खा की सेना की जोरदार टक्कर हुई। जैसा जयसिह ने १६ अक्टूबर १७०८ के छत्रसाल बुंदेला के नाम पत्र मे लिखा, सैयद के तीन हजार सैनिक काम आए। मरने वालो मे हुसैन खॉ, मथुरा व नारनौल के फौजदार तथा अन्य प्रमुख अफसर थे। राजपूत पास

1. ज. अख, 26, 30 सितम्बर 1708।
2. जैत्रसिह (कैथवाडा का)–जयसिह, 27 सितम्बर, 1708 ज आ.।
3. ओझा, जोधपुर, जि. 2, पृ. 541 नो 2।
4. किशन सिह व जालिम सिह—जयसिह, फाल्गुन वदी 2 स. 1765 ज. आ.।

की एक तलाई की मुंडेर की आड मे थे और सैयदो के आने ही उन्होने अपनी बदूको से उन्हे भून डाला। बादशाह को इस घटना का समाचार १४ नवम्बर को मिला। उसे यह भी सूचना मिली कि राजपूतो ने रोहतक, दिल्ली व आगरा की तरफ सेनाए भेजी है और रेवाडी व नारनौल मे अपने थाने बैठा दिये है। उसे यह भी समाचार मिला कि राजपूतो ने सिखो से, जो इस समय पजाब मे मुगल सरकार के विरुद्ध सघर्ष कर रहे थे, सपर्क स्थापित किया है[1]।

जयसिंह द्वारा संघर्ष-क्षेत्र फैलाने का प्रयत्न, जयसिंह का छत्रसाल को पत्र

हम देख चुके है कि जयसिंह ने शाहू को दक्षिण मे मुगलो के विरुद्ध सघर्ष शुरू करने को लिखा था। राजपूतो का यह तर्क था कि मुगल सरकार हिन्दुओ की शक्ति को क्षीण करना चाहती है और उन्हे अपमानित अवस्था मे रखना चाहती है। औरगजेब की हिन्दू विरोधी नीति और उसके उत्तराधिकारी द्वारा जारी किये गये कई आदेशो से, जिनमे हिन्दुओ पर अपमानजनक प्रतिबध लगाये गये थे,[2] राजपूतो के इस तर्क का समर्थन होता था। जयसिंह ने १६ अक्टूबर १७०८ को छत्रसाल बुन्देला को एक पत्र मे लिखा कि बादशाह मसब देने को तैयार है लेकिन वतन नही, परन्तु यह तो महाराजाधिराज (छत्रसाल) को ज्ञात ही है कि बिना वतन के मसब का क्या मूल्य है। जयसिंह ने पत्र मे साभर की विजय व सैयद की हार का वृत्तान्त लिखा और आशा व्यक्त की कि भविष्य मे भी ऐसी विजय होती रहेगी। यदि राजा (छत्रसाल) जैसे सरदार कमरबन्दी करले तो सारे हिन्दुस्तान की शर्म रह जाएगी। राजपूताने के समस्त जमीदार, मसबदार तथा राजाओ ने बादशाही थाने अपने इलाको से उठा दिये है। राणा जी ने इस बारे मे लिखा होगा। जयसिंह ने लिखा कि अब यह एक की बात नही, सारे हिन्दुओ की बात है और छत्रसाल शीघ्र ही इस तरफ आऐगे। जयसिंह ने पूर्व की तरफ के बडे बडे जमीदारो के नाम भेजने को कहा जिससे वह तथा महाराणा विश्वासपात्र व्यक्तियो के हाथ उनके नाम पत्र भेज सके[3]।

उपर्युक्त पत्र से यह भी स्पष्ट होता है कि राजपूत अपने वतन लौटाए जाने पर इतना जोर क्यो दे रहे थे। बिना उनके राज्य लौटाए उनके मुगल सरकार

1. जयसिंह-छत्रसाल बुदेला, 16 अक्टूबर 1708, ज. आ., महासाहनी चतुरभुज-पंचोली बिहारीदास, कार्तिक सुदी 1, सं. 1765 (पत्र वीर विनोद मे जि. 2, पृ. 836-37); ज. अख, 14-20 नवम्बर, मा. उ, जि 1, पृ 640-41, इरविन, जि 1, पृ. 69-70।
2. जैसे 5 नवम्बर 1708 का अफसरो के व सरकारी महकमो मे हिन्दू अहलकारो को बरखास्त करने का (ज. अख, 3 रमजान 1120 हि), 7 दिसम्बर 1707 का जिसमे हिन्दुओ के अरब, इराकी घोडों पर अथवा पालकी मे बैठने पर तथा उनके दरबार मे कानों मे कुण्डल व सिर मुडाये आने पर प्रतिबंध लगाया गया था, सभी हिन्दू मसबदारो से जजिया लिये जाने का हुक्म (ज अख. 18 अक्टूबर, 1711)।
3. जयसिंह-छत्रसाल, 16 अक्टूबर, 1708 (ड्राफ्ट खरीता) ज. आ.।

के सवधो का आधार ही बदल जाता था। केवल तनख्वाह जागीर का उनकी निगाहो मे कोई मूल्य नही था।

जगजीवनदास की बादशाह से समझौते के बारे में वार्ता, मुनीम खां का प्रस्ताव राजपूतो द्वारा अस्वीकार किया जाना

जबसे राजपूत बादशाह से अलग होकर चले आये थे (अप्रैल १७०८), आबेर का वकील जगजीवनदास पचोली समझौते के लिए निरतर बातचीत कर रहा था। उसने अपने स्वामी के लिए आबेर राज्य, ५०००/५००० की मसब व मिर्जा राजा का खिताब (जो जयसिंह के चले आने के बाद विजयसिंह को देदिया गया था) मागे। परन्तु बादशाह आबेर व उसके आसपास का प्रदेश (वार्षिक आय २० लाख दाम) को छोडकर राज्य का बाकी का प्रदेश वापस करने व ३०००/३००० की मसब देने को ही तैयार था। इसी भाति वह अजीतसिंह को जोधपुर, मेडता व उनके आसपास का प्रदेश (कुल वार्षिक आय बीस लाख दाम) को छोडकर राज्य का बाकी भाग देने को तैयार था। परन्तु मुनीम खा को केवल २०,००००० दाम का क्षेत्र आबेर मे व ४०,००००० दाम का क्षेत्र जोधपुर मे खालसा रखना उचित नही लगा। उसकी इच्छा थी कि आबेर व जोधपुर दोनो मे एक करोड बीस लाख के दाम के क्षेत्र खालसा मे रखे जाए और इस आशय की उसने सनदे भी तैयार करवाली थी। जगजीवन ने तुरन्त जयसिंह को इस बात की सूचना दी और बादशाह के पुत्र अजीमुश्शान से इस बात की शिकायत की। यहा यह समझना आवश्यक है कि बादशाह की शर्तो मे प्रमुख आपत्तिजनक बात खालसा मे रखी जाने वाली भूमि की आमदनी नही थी, इससे कही अधिक महत्वपूर्ण मुगल सरकार द्वारा अविभाजित वतनो को जयसिह व अजीतसिंह को वापस लौटाना था। १८ जनवरी १७०८ को सरबुलन्द खा को लिखे पत्र मे जयसिंह ने 'अविभाजित वतन' लौटाए जाने के सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया। उसने कहा कि आबेर व उसके आसपास के प्रदेश को खालसा मे रखना इस सिद्धान्त के विरूद्ध है[1]। इस कारण राजपूतो ने बादशाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

अब्दुल्ला खां की अजमेर सूबे में नियुक्ति, उसकी ऊंची मांगों का स्वीकार किया जाना

साभर के पास सैयदो की हार का समाचार मिलने से पूर्व ही बादशाह ने शुजात खा को राजपूतो के विरूद्ध उसकी असफलता के लिए अजमेर के सूबे से हटा कर सैयद अब्दुल्ला खा को वहा का सूबेदार बनाने का निर्णय ले लिया था। ७ अक्टूबर को अब्दुल्ला खा को ४०००/२००० की मसब व इनाम दिये गये और

1. पचोली जगजीवन दास–जयसिह (दिसम्बर 1708), ज. आ, जयसिंह–सरबुलन्द खा (ड्राफ्ट), 18 जनवरी 1709 ज आ।

अजमेर के सूबे का भार सभालने के लिए उसकी लगभग सभी शर्ते स्वीकार करली गई। उसने रणथम्भोर की फौजदारी और जोधपुर, वैराठ व मेउता की किलेदारी मागी। उसकी, उन राजपूतो के बारे मे जिन्हे वह अपनी ओर मिलाने की आशा रखता था, सभी सिफारिशे स्वीकार करने का वचन भी दिया गया[1]। उससे ज्ञात होता है कि राजपूताने मे मुगल सरकार की स्थिति कितनी चिन्ताजनक हो गई थी।

जयसिंह का अब्दुल्ला खां पर मार्ग में आक्रमण का प्रस्ताव, महाराणा का एकता बनाये रखने पर बल देना

नवम्बर मे अब्दुल्ला खा व आवेर, जोधपुर तथा मेउता के नये नियुक्त किये गये किलेदार बुरहानपुर पहुचे। इसकी सूचना जयसिह को शीघ्र ही अपने हरकारे से मिल गई। जयसिह ने महाराणा को लिखा की अब्दुल्ला खा पर, अजमेर पहुचने से पहले ही, किसी स्थान पर आक्रमण करना चाहिए। महाराणा इस विचार से सहमत थे परन्तु उन्होने इस बात पर जोर दिया कि अजीतसिह भी इस आक्रमण मे साथ रहे[2]। पिछले कुछ दिनो से अजीतसिह के व्यवहार व आचरण से उसके सभी शुभचिन्तक चिंतित थे। हाल ही मे दुर्गादास राठौड को मारवाड़ छोड़कर मेवाड आना पडा था। परन्तु अब्दुल्ला खा को रोकने की आवश्यकता ही न पडी क्योकि बादशाह ने पुन शुजात खा को अजमेर मे नियुक्त कर दिया। १७१० मे सिख अभियान मे भाग लेने के बाद शाहजादा अजीमुश्शान ने अब्दुल्ला खा को इलाहाबाद के सूबे मे अपना नायब नियुक्त कर दिया।

जयसिह व अजीतसिह के संबंधो में अन्तर पड़ना; जयसिह का अजमेर के घेरे में भाग न लेना

इस समय के पत्रो से स्पष्ट है कि जयसिंह व अजीतसिंह के सबधो मे कुछ तनाव पैदा हो गया था। उन दोनो के बीच गलतफहमी फरवरी १७०९ मे और भी अधिक बढ गई जब जयसिंह ने अजमेर के घेरे मे कोई भाग नही लिया। फरवरी के दूसरे सप्ताह मे अजीतसिंह ने जयसिंह को लिखा था कि वह शीघ्र ही अजमेर पर आक्रमण करेगा, और जयसिह सूचना मिलते ही वहा पहुँच जाए। ८ फरवरी को जयसिह ने अपने ठाकुरो को पत्र लिख कर सचेत कर दिया कि उन्हे किसी भी दिन अजमेर पहुचने के हुक्म मिल सकते है। परन्तु अजीतसिह तीन दिन पूर्व अजमेर पहुच चुका था[3] और जयसिह के पास इसकी सूचना नही पहुँची थी।

---

1. ज. अख, 6 अक्टूबर 1708, शुजात खा को आसफउद्दोला के पास नियुक्त किया गया था, (ज अख, 15 अक्टूबर 1708)। उसकी सभी शर्तों मे केवल यह कि उसके भाई अब्दुल्ला खा को आवेर की किलेदारी दी जाय, अस्वीकार करी गई थी।
2. महाराणा-जयसिह, (दिसम्बर 1708) ज. आ.।
3 जयसिह-कुशल सिंह राजावत, परवाना, 8 फरवरी, 1709 ज. आ., ज. अख 27 मार्च, 1709, जिसमे घेरे के 5 फरवरी से शुरू होने का उल्लेख है।

कुछ समय पूर्व शुजात खाँ ने अजीतसिंह को लिखा था कि बादशाह सूबे मे राजपूतो की सफलता के कारण उससे नाराज है और उसे वहा से हटाया जा रहा है, अजीतसिंह चाहे तो आकर अजमेर लेले। ऐसा प्रतीत होता है कि यह निमन्त्रण पाकर अजीतसिंह बिना जयसिंह को सूचित किये अजमेर पहुंच गया। जोधपुर के राजाओ की अजमेर पर अधिकार करने की पुरानी आकाक्षा रही थी। अजमेर पहुंचने की जल्दी मे अजीतसिह अपने साथ तोपे व किले को लेने के लिए अन्य सामान भी नही ले गया। जब वह अजमेर के निकट पहुँचा तो उसे सही बात मालूम पडी और उसने तोपे आदि मगवाई और आने के १४ दिन बाद, १९ फरवरी से, विधिवत घेरा शुरू कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि जयसिंह अजमेर के घेरे के पक्ष मे नही था। अजमेर पर शुजात खा की मदद से, बिना युद्ध किये, अधिकार करना एक बात थी, और उसका घेरा डालकर जीतने का प्रयत्न दूसरी बात थी, शहर के हाथ मे आजाने के बाद भी बीटली किले को बिना लम्बे घेरे के लेना असभव था। इसी बीच मुगल सेनाओ के मदद के लिए आ जाने की पूर्ण सभावना थी। ऐसी स्थिति मे अजमेर शहर व किले पर अधिकार करना सदेहपूर्ण था। जयसिह के अजमेर न पहुचने से शुजात खा प्रसन्न हुआ। २५ फरवरी को उसने जयसिह को लिखा कि अजीतसिंह का साथ न देकर उसने उचित ही किया है और उसे (जयसिह) अजीत से घेरा उठवाने के लिए कहा[1]।

इस घटना से जयसिंह व अजीतसिह मे जो अनबन हुई वह बाद तक चली। जनवरी १७१० मे जब बादशाह दक्षिण से लौट रहा था और जयसिह ने केवल दिखावे के लिए ही अजमेर पर आक्रमण करने की सलाह दी तो अजीतसिह ने खुले रूप से जयसिह द्वारा अभियान मे अपना भाग अदा करने के बारे मे शका प्रकट की[2]। लगभग पन्द्रह दिन के घेरे के बाद अजीतसिह देवलिया चला गया जहा उसने राव पृथ्वीसिंह की पुत्री से विवाह किया (११ मार्च)। १९ मार्च, १७०९ को वह वापस जोधपुर आ गया[3]।

राजपूतो द्वारा पन्द्रह दिन तक अजमेर घेरने से मुगल प्रतिष्ठा को बडी हानि हुई। यह स्पष्ट हो गया कि अजमेर सूबे मे मुगल शासन नाममात्र का रह गया है। २७ मार्च को जब अजमेर के घेरे के बारे मे बादशाह के पास निश्चित समाचार पहुचा तो उसने खानजहाँ बहादुर व अन्य कई अफसरो को तुरन्त वहा पहुचने को कहा।

1. ओझा, जोधपुर, जि. 2, पृ. 546, शुजात खा–जयसिह, 23 फरवरी 1709 का फा पत्र ज. आ.।
2. दौलतसिह–जयसिह, 23 फरवरी 1709 ज. आ.।
3 ओझा, जोधपुर, जि. 2, पृ. 547, ज अख , 30 मार्च, 4 अप्रेल 1709. वकाया, 15 सफर, ज. आ.।

बादशाह द्वारा राजपूत समस्या को सुलझाने का कार्य असद खां व गाज़ीउद्दीन खां को देना

इस समय तक यह स्पष्ट हो गया था कि मुनीम खा की राजपूत नीति दोषपूर्ण है, और उसने राजपूतो की उनके राज्यो से प्रति भावना को गलत समझा है। यह इस समय के पत्रो से स्पष्ट हो जाता है कि राजपूत मुनीम खा पर विश्वास नही करते थे और उसके मार्फत मुगल सरकार से बातचीत नही करना चाहते थे। अधिकॉश राजपूत पत्रो मे उसका उल्लेख तक भी नही है। ऐसी स्थिति मे बादशाह को गाजीउद्दीन खा फिरोज जग व वकील-ए-मुतलक असद खा को राजपूत समस्या को सुलझाने का कार्य सोपना पडा। अप्रैल १७०९ मे गाजीउद्दीन खा को अजमेर का अनुपस्थित सूबेदार नियुक्त किया गया और असद खा को राजपूतो के साथ समझौते के बारे मे बातचीत करने के लिए विस्तृत अधिकार दे दिये गये।

असद खां का आंबेर व जोधपुर लौटाने का नया प्रस्ताव

पहले तो गाजीउद्दीन खा व असद खा ने बादशाह का आबेर, जोधपुर व मेडता को छोड बाकी क्षेत्र लौटाने का प्रस्ताव पुन. दोहराया परन्तु जब उन्होने देखा कि राजपूत अपने पुश्तैनी राज्य लौटाये जाने के बारे मे कोई समझौता करने को तैयार नही है तो असद खा ने अबतक रखी गई मुगल शर्तो को बिल्कुल बदल दिया और पहली बार बादशाह की ओर से आबेर व जोधपुर लौटाने का वादा किया, यदि जयसिह गुजरात व अजीतसिह काबुल जाना स्वीकार करे, और वे साँभर व डीडवाना से अपने थाने उठाले[1]। २७ जुलाई १७०९ के पत्र मे जयसिह ने महाराणा को लिखा कि उन्हे मुगल प्रस्ताव अस्वीकार कर देना चाहिए क्योकि प्रस्ताव का उद्देश्य उन लोगो को दूर फैंक कर राजपूत एकता को नष्ट कर देना है। जयसिह ने अजीतसिह को भी इस प्रस्ताव के बारे मे लिखा। अन्त मे अजीत ने लिखा कि उन दोनो के नाम दो फरमान असद खा के पास भेजे गये है और उनको पढकर ही बादशाह के सही इरादे ज्ञात होगे। यदि उन्हे उनके राज्य नही लौटाये जा रहे हो तो उन्हे मुगलो से संघर्ष जारी रखने के लिए तैयार हो जाना चाहिए[2]।

गाज़ीउद्दीन खा की अजमेर सूबे में नियुक्ति, उसके राजपूतों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध

२० मई १७०९ को गाजीउद्दीन खा को अजमेर जाने का हुक्म मिला। उसे पिछले माह ही वहा का सूबेदार बनाया गया था। हम यह देख चुके है कि बहादुर शाह के शासन-काल के प्रारम्भ से ही गाजीउद्दीन खा व राजपूतो मे पत्र

1. बसन्तराय (महाराव बुद्धसिंह का वकील)—जयसिह, 23 जुलाई 1709, ज. आ., असद खा–शुजात खा 11 अप्रेल 1709 (वीर विनोद, 2, पृ 840)।
2. जयसिह–महाराणा (ड्राफ्ट खरीता) 27 जुलाई 1709, अजीतसिह–जयसिह, 12 जुलाई 1709, ज आ.।

व्यवहार चल रहा था। नवम्बर-दिसम्बर १७०९ मे यह पत्र व्यवहार जोरो पर था। मेवाड के पचोली बिहारी दास व मुंशी सलामत राय की फिरोज जग से लम्बी बातचीत हुई। गाजीउद्दीन के दो विश्वासपात्र मुशी, नारायण दास व जगन्नाथ मेहता, के पत्रो से ज्ञात होता है कि वे राजपूतो के हितो के लिए प्रयत्नशील थे[1]।

गाज़ीउद्दीन खां का राजपूतों के साथ गुप्त समझौता

अब मई १७०९ मे जब गाजीउद्दीन के अजमेर पहुँचने की सभावना थी तो अजीतसिह को उसके अब तक दिये गये मैत्रीपूर्ण आश्वासनो पर सदेह हुआ। जयसिंह की सलाह पर उसने गाजीउद्दीन के पास अपने विश्वासपात्र अधिकारी, रघुनाथ को भेजा। ११ जुलाई के पत्र मे उसने जयसिह को लिखा कि रघुनाथ के साथ हुई बातचीत से लगता है कि गाजीउद्दीन उनके साथ है। परन्तु मुगलो का कुछ भरोसा नही। यदि वह उनके विरूद्ध आया तो उसकी भी वही गति होगी जो सैयदो की हुई थी। उसने लिखा कि यदि उनके नाम भेजे फरमानो मे वतन लोटाने का लिखा है तो ठीक है, यदि नही है तो वे बादशाह का स्वागत करने के लिए अपनी सेनाए तैयार करले। उसी पत्र मे उसने अपने हाथ से कुछ पक्तिया लिखी। उसने लिखा कि रघुनाथ के साथ गाजीउद्दीन ने कवल व रोटी भेजे है और यह वायदा किया है कि वह उनके विरूद्ध आने की जगह अपना मसब छोडना पसद करेगा। गाजीउद्दीन खाँ ने यह भी आश्वासन दिया कि वह बादशाह से राजपूतो को उनके राज्य वापस लौटाने का आग्रह करेगा[2]।

गाज़ीउद्दीन खां द्वारा अपना वचन पूरा करना

इन पत्रो से गाजीउद्दीन खा फिरोजजग के राजपूतो के साथ मैत्रीपूर्ण सबधो के बारे मे महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। गाजीउद्दीन खा ने अपना वचन पूरा किया। यद्यपि ३० अगस्त १७०९ को बादशाह के पास यह सूचना पहुँची कि दो सप्ताह पूर्व गाजीउद्दीन अजमेर के लिए रवाना हो गया है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ ही मजिल चलकर वह रूक गया और उसने पुन राजपूतो से समझौते के बारे मे पत्र व्यवहार शुरू कर दिया। राजपूत पत्रो मे उसके अजमेर सूबे मे आने का कही उल्लेख नही है। सितम्बर के अन्त मे उसने मेहता जगन्नाथ व राय भोलानाथ को उदयपुर भेजा। महाराणा ने उन दोनो से बातचीत के बाद उन्हे आमेर भेजा। महाराणा ने जयसिह को लिखा कि गाजीउद्दीन खा राजपूतो का शुभचिंतक है और वह उन्हे सही सलाह देगा, बादशाह का जो दृष्टिकोण है वह तो उन्हे अच्छी तरह

1. ज अख 20, 28 मई 1709, दुर्गादास-बिहारीदास, असेज वदि 2, सं. 1765 (1708), वीर विनोद, 2, पृ. 835 मे, मेहता जगन्नाथ (गाजीउद्दीन खा का मुशी)—जयसिंह, 11 दिसम्बर 1708 ज आ।
2 अजीतसिंह-जयसिंह, 11 जुलाई 1709 ज आ।

ज्ञात ही है[1]। जब राजपूतो के राज्य लौटा दिये गये और समझौता हो गया, उसके बाद (११ जुलाई १७१०) बादशाह के पास यह समाचार पहुंचा कि गाजीउद्दीन खां जालौर तक आया था परन्तु मामला तै हो जाने का सुनकर वह वापस अपने सूबे को लौट गया[2]।

बादशाह का उत्तर की ओर प्रस्थान

३ जनवरी १७०९ को कामबक्श हार गया और उसी रात उसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि दक्षिण को सुव्यवस्थित करने के लिए बहादुर शाह का वहा रुकना आवश्यक था परन्तु राजपूत व सिक्खो से निपटने के लिए उसने अविलब उत्तर की ओर रवाना होने का निर्णय लिया। वह ९ जून को औरंगाबाद पहुंच गया। यहा वह बरसात बिताने के लिए रुका। उधर राजपूताने मे अगस्त से अक्टूबर तक कोई विशेष सरगर्मी नही रही।

राजपूत सघर्ष में गति; जयसिंह का करौली के राव को महत्वपूर्ण संदेश

अक्टूबर से राजपूतो ने अपना सघर्ष पुन. तेज कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि मुगल सरकार आंबेर व जोधपुर लौटाने को तैयार थी परन्तु जयसिंह व अजीतसिंह नियुक्ति के प्रश्न पर झुकने को तैयार नही थे। नवबर-दिसम्बर १७०९ मे अजीतसिंह की शह पाकर कोलियो ने अहमदाबाद के पास का क्षेत्र लूट लिया। अजीत-सिंह ने रामपुरा लेने के लिए भी एक टुकडी भेजी परन्तु रतनसिंह (इस्लाम खा) ने उसको भगा दिया[3]। नवम्बर मे ही जयसिंह ने करौली के राव रतनपाल को एक महत्वपूर्ण पत्र भेजा। जयसिंह ने लिखा कि बादशाह हिन्दुओ के विरुद्ध है। वह (जयसिंह) तथा महाराजा अजीतसिंह शाही इलाको पर आक्रमण करने वाले हैं। राव रतनपाल हिन्डौन लेले और रणथम्भीर के फौजदार हिदायतुल्ला को वहा से निकाल दें। रतनपाल ने आंबेर के प्रतिनिधि से कहा कि हिन्डौन को लेना तो सरल है परन्तु बादशाह के आने के बाद उसे अपने हाथ मे रखना कठिन होगा। वह (राव) बाबू रामजाट को अधिक पैसे देने का लालच देकर अपनी ओर फोड़ सकता है। अभी हिदायतुल्ला उसे व उसके सैनिको को रोजाना पैसा देता है। राव रतनपाल ने कहा कि मुगलो के विरुद्ध लडाई जितनी अधिक फैले उतना ही अच्छा है। यदि महाराजा जयसिंह व अजीतसिंह निश्चित रूप से मुगल प्रदेश पर आक्रमण करें तो वह भी चम्बल के दोनो ओर के यादवो को लेकर उनका साथ देगा। आगरा उसके निकट ही है[4]। यद्यपि निश्चित रूप से हमे यह ज्ञात नही है कि अगले कुछ महिनो में राव रतनपाल

---

1. महाराणा-जयसिंह 10 अक्टूबर 1709 ज आ.।
2. ज. अख., 11 जुलाई 1710।
3 ज. अख., 28 नवम्बर, 5 दिसम्बर 1709।
4. फतहचंद-जयसिंह, 12 नवम्बर 1709, ज आ.।

ने मुगलो के विरूद्ध सघर्प मे किस सीमा तक भाग लिया परन्तु दिसम्बर १७०६ मे आबेर के दीवान रामचन्द्र की हिदायतुल्ला से रणथम्भौर के निकट जोरदार टक्कर हुई।

बादशाह के आगमन की निकटता को देखते हुए महाराणा ने यह उचित समझा कि जयसिह व अजीतसिंह, जिन्होने पिछले कई महीनो से आपस मे परामर्श नही किया था, किसी स्थान पर मिले और विचार-विमर्श करे। महाराणा ने ८ दिसम्बर १७०६ के पत्र मे जयसिह को लिखा कि वह स्वय तथा दुर्गादास किसी भी कार्य के लिए पूर्णतया तैयार है[1]।

बहादुर शाह की राजपूतो से सुलह करने की व्यग्रता

जब जनवरी १७१० मे बहादुर शाह मेवाड की सीमा के निकट आया तो उसे ज्ञात हुआ कि महाराणा अमरसिंह दुर्गादास को ७००० सैनिको के साथ उदयपुर मे छोड़ स्वय पहाडो मे चला गया है। उसने यह भी सुना कि अजमेर पर ७०,००० राजपूत सवारो के आक्रमण की आशंका है[2]। परन्तु इस खबर की पुष्टि राजपूत पत्रो से नही होती। अजीतसिह के एक पत्र मे हम उसे जयसिंह को डीडवाना आने के लिए लिखते हुए देखते है। ऐसा प्रतीत होता है कि अजीतसिंह मुगलो को थार के पश्चिमी भाग व मेवाड की पहाडी शृ खलाओ मे युद्ध करने के लिए खीच लाना चाहता था।

अब यह स्पष्ट हो गया था कि राजपूत अपने राज्यो की बिना शर्त वापसी के अलावा कोई समझौता स्वीकार नही करेगे। इस कारण तथा पजाब मे सिखो की उत्तरोत्तर बढती हुई सफलताओ को देखते हुए बहादुर शाह ने झुकना ठीक समझा। ११ जनवरी १७१० को गाजीउद्दीन की राय पर उसने एक घोडा व खिल्लत महाराणा के लिए भिजवाए[3]। महाराणा के वकील बाघमल ने जो पुरमाडल, बेदनोर, माडलगढ परगनो के मेवाड को विधिवत लौटाने के लिये प्रयत्न कर रहा था, यह निवेदन किया कि बादशाह चित्तौड होकर जाने की अपेक्षा दूसरे मार्ग से अजमेर जाए। बादशाह ने ये दोनो ही बाते मान ली और उसने मुकुंद दर्रा होकर जाने का निश्चय किया। मुनीम खॉ ने बाघमल से यह शिकायत अवश्य की कि बादशाह महाराणा की प्रत्येक बात मान रहा है तुरन्त महाराणा ने अपने पुत्र तक को भी शाही सेवा मे नही भेजा, विशेषकर जब कि बादशाह मेवाड के इतने निकट है[4]।

---

1 महाराणा–जयसिह, पत्र की प्रतिलिपि (8 दिसम्बर 1709), जयसिह ने मूल पत्र अजीत सिह के पास भेज दिया था।

2. ज अख., 7, 9, जनवरी 1710।

3 ज अख, 11 जनवरी, 1710।

4. वीर विनोद, 2 पृ. 781–83, मेवाड वकील–महाराणा, श्रावण सुदि 10, सं. 1767 (वीर विनोद 2, पृ. 782–85)।

१४ मार्च १७१० को जब बाघमल दरबार मे आया तो उसे महाराणा के नाम एक फरमान दिया गया। उससे यह भी कहा गया कि वह जयसिंह व अजीतसिंह से मिले। यद्यपि संधि की वार्ता काफी बढ चुकी थी फिर भी जयसिंह ने केसरीसिंह को भेजकर २४ मार्च को टोंक पर अधिकार कर लिया[1]। समझौते मे मुख्य रुकावट जयसिंह व अजीतसिंह की नियुक्ति का प्रश्न था। ७ अप्रेल को इन दोनो राजाओं के प्रतिनिधि दरबार मे आये। १० अप्रेल को बादशाह ने चंबल पार करली और देवी-गढ रुकता हुआ वह ११ मई को बनास तक पहुँच गया। बाद की घटनाओं से प्रतीत होता है कि बादशाह ने आंबेर व जोधपुर लौटाये जाने के बाद नियुक्ति के प्रश्न को यथासंभव राजपूतो की मर्जी के अनुसार तै करना स्वीकार कर लिया था।

१७ मई को बादशाह ने मुनीम खा के पुत्र महावत खा, छत्रसाल बुंदेला व महाराव बुद्धसिंह हाडा को जयसिंह व अजीतसिंह से मिलने व उन्हें बादशाह के पास लाने के लिए नियुक्त किया। छत्रसाल बुंदेला के पास महाराणा के पास पत्र आते रहते थे और उसके राजपूतो के साथ घनिष्ठ सम्बन्धो के बारे मे मुनीम खा को ज्ञात था। ३ जून को उन्हे दरबार से विदा दी गई। ७ जून को समाचार मिला कि राजपूत राजा १० जून को बादशाह से मिलेगे। परन्तु फिर बादशाह ने ११ जून को, उनकी इच्छानुसार, मार्ग मे ही मिलना स्वीकार किया[2]।

जयसिंह व अजीतसिंह की बादशाह से भेंट

११ जून को अपराह्न बादशाह दोराहा की ओर तख्त-ए-खाँ पर रवाना हुआ। कुछ दूर जाने के बाद उसने अपने पुत्र अजीमुश्शान को राजाओ को उसके समक्ष लाने के लिए भेजा। इस समय अजीमुश्शान पर उनके पिता की विशेष कृपा थी। वह राजपूत राजाओ से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहता था जिससे कि उत्तरा-धिकार के युद्ध मे वे उसका साथ दे। मुनीम खा का पुत्र महावत खा भी अजीम के बहुत निकट था। एक तो अजीम के बादशाह बनने की संभावना थी और दूसरे शाहजादे व जुलफिकार खा के खराब संबंध थे। यह हम पहले ही देख चुके है कि मुनीम खा व जुलफिकार खा आरंभ से ही एक दूसरे के विरोधी थे।

अजीमुश्शान घोडे पर सवार होकर राजपूतो के शिविर गया और जयसिंह व अजीतसिंह को साथ लेकर वापस लौटा। बादशाह ने अपनी सवारी मार्ग मे रोक दी। उसके साथ कुछ ही मंसबदार थे। अजीमुश्शान ने जयसिंह व अजीतसिंह को बादशाह के समक्ष पेश किया। उनके हाथ रूमाल से बंधे थे, जिन्हे बादशाह ने खोलने को कहा। उन्होने बादशाह को नजर पेश की। बादशाह ने कहा कि उन्हे क्षमा

1. केसरीसिंह नरूका–जयसिंह, 25 मार्च 1710 ज आ।
2. ज अख, 17 मई 1710; मेवाड वकील–महाराणा, श्रावण सुदी 10, सं. 1767 (वीर विनोद, 2, पृ. 783), ज. अख., 3, 6, 10 जून 1710।

किया जाता है। उन्हे दो माह की अपने वतन मे रहने की छुट्टी दी गई[1]। जब वे बादशाह से मिलने आये उस समय हजारों राजपूत ऊंटो पर बदूके व धनुप बाण लिए पास की पहाडियो पर डटे हुए थे[2]। उन्हे क्षमा करते समय जो औपचारिकता बरती गई, वह केवल बादशाह की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए थी। वास्तविकता यह थी कि मुगल सरकार ने राजपूतो की प्रत्येक माग बिना शर्त स्वीकार की थी।

बादशाह से मिलने के बाद जयसिंह व अजीतसिंह पुष्कर आये जहाँ वे एक माह तक साथ रहे। इसके बाद वे अपने अपने देश चले गये। इसी बीच १७ जून को बादशाह अजमेर पहुँचा। कुछ दिन वहा रुक कर वह साभर कालाडेरा, मनोहरपुर होता हुआ पजाब की ओर चला गया जहाँ सिख मुगल सरकार के विरूद्ध कडा मुकाबला कर रहे थे।

सघर्प का अंत

१७०८-१० का राजपूत सघर्प मुगल सरकार के विरूद्ध अर्ध-स्वतत्र राज्यो द्वारा लडे गये सभी सघर्पो मे सबसे अधिक सफल था। इसका उद्देश्य इस सिद्धान्त की पुष्टि करता था कि मुगल सरकार इन राज्यो को कमजोर कारणो पर व मनमाने ढंग से खालसा मे नही ले सकती। इसके परिणामस्वरूप मुगल सरकार को उसकी मारवाड के प्रति २७ वर्ष पुरानी नीति बदलनी पडी। मुगल-राजपूत सबधो पर भी इस सघर्ष का गहरा प्रभाव पडा। राजपूतों मे मुगलो के प्रति जो बची खुची भक्ति शेप थी वह भी अब समाप्त हो गई। भविष्य मे मुगल सरकार व राजपूतो के परस्पर सबंधो का आधार समान व्यवहार रहा।

नवम्बर के अन्तिम सप्ताह मे बहादुर शाह साढोरा पहुँचा। इस बीच मुनीम खा ने जयसिंह व अजीतसिंह को क्रमश. अहमदाबाद व काबुल जाने के लिए अनेक पत्र लिखे परन्तु उन्होने इन पत्रो पर कोई ध्यान नही दिया। इस बारे मे महाराणा ने जयसिंह को यह सलाह दी कि यदि नियुक्ति बदलवाने के प्रयत्न असफल रहे तो वे परिस्थिति देखकर उचित कदम उठाएगे[3]।

महाराणा की मृत्यु

कुछ ही महिने बाद १० दिसम्बर १७१० को महाराणा अमरसिंह का देहान्त हो गया। वे केवल ३८ वर्प के थे[4]। राजपूताने के लिए उनका असामयिक निधन बड़े दुर्भाग्य की बात थी। यदि अमरसिंह रहते तो निश्चय ही देश के इतिहास मे वे

1 ज अख, 11 जून 1710।
2 इरादत, पृ 60।
3. आंबेर वकील–जयसिंह, 6 अगस्त 1710, ज आ., महाराणा–जयसिह, सं. 1767 (1710 ई) ज आ।
4. वीर विनोद, 2, पृ. 789, ओझा, उदयपुर, 2, पृ. 609, टाड 1, पृ 321।

प्रमुख भाग लेते। संभवत. वे अजीतसिह व जयसिंह के बढते हुए मतभेद को तथा बुद्धसिंह का बूदी से हटाया जाना रोक पाते। मुगल साम्राज्य की गिरती हुई अवस्था से उत्पन्न स्थिति का लाभ उठाने के लिए राजपूत राज्यो को वे आवश्यक दिशा व नेतृत्व प्रदान करते। महाराणा अमरसिंह के जीवन के अन्तिम वर्ष, जिनमे उन्होने आबेर व जोधपुर को मुगल साम्राज्य मे विलीन होने से बचाया, सबसे अधिक महत्व-पूर्ण थे। महाराणा के पुत्र सग्रामसिंह ने अपने पिता की नीतियो का अनुसरण किया और उनकी मृत्यु तक (१७३४ ई०) राजपूताने के इतिहास मे महत्वपूर्ण भाग लिया। जयसिह व सग्रामसिंह के अत्यन्त घनिष्ठ व मैत्रीपूर्ण सबध रहे और देश की राज-नीतिक समस्याओ के प्रति दोनो ने समान नीति अपनाई। इसका वृत्तान्त हम आगे देगे।

बादशाह के पुनः राजपूताने में आने की संभावना; जयसिंह की मराठो को बुलवाने की योजना

दिसम्बर १७१० के अन्त मे जयसिंह के पास समाचार पहुँचा कि सिखो को दबा दिये जाने व महाराणा की मृत्यु का समाचार सुनकर बादशाह पुनः राजपूतो के विरूद्ध आने का विचार कर रहा है। १ दिसम्बर १७१० को लोहगढ़ जीत लिया गया था। बादशाह के अजमेर सूबे मे पुन. आने की सभावना को देखते हुए जयसिंह ने बिहारीदास पचोली व दुर्गादास को लिखा कि वे एक विश्वासपात्र व्यक्ति सतारा भेजे और एक बडी मराठा सेना को दक्षिणी मालवा मे बुलाने का प्रयास करे। महा-राजा अजीतसिह व वह स्वय अपनी सेनाओ के साथ उनसे मिल जायेगे। जयसिंह ने लिखा कि यदि मराठे गुजरात जाते है और मुगल सेना आबेर आती है तो वह उन्हे दूसरी ओर ले जायगा। और यदि बादशाह सीधे अजमेर से मेवाड की ओर बढता है तो वह उसको हर सभव तरीके से परेशान करेगा। जयसिह ने बिहारीदास को लिखा कि वह तथा दुर्गादास यह सब बाते महाराणा के सामने रखे और जो सलाह ठहरे वह सूचित करे। जयसिह ने आगे लिखा कि राजपूतो को वही करना चाहिए जो 'हिन्दुस्तान' के लिए गौरव की बात हो। जयसिह ने इस आशय का पत्र महाराणा को भी लिखा[1]। वह महाराणा सग्रामसिह के राज्याभिषेक के अवसर पर पहुँचना चाहता था परन्तु मुगल दरबार से उसे बुलाने के बराबर पत्र आ रहे थे और इसलिए उसने उदयपुर जाने का विचार छोड दिया।

जयसिंह व अजीतसिंह का दरबार में पहुँचने में विलम्ब करना, उनका बादशाही आदेशो की उपेक्षा करना

जनवरी १७११ मे वकील जगजीवनदास पचोली ने जयसिह को लिखा कि वजीर मुनीम खा महाराजा के आने पर बहुत जोर दे रहा है और उन्हे दरबार पहुंच जाना चाहिए। ४ फरवरी की रिपोर्ट मे दीवान भिखारीदास ने, जो इन दिनो शाही

---

1. जयसिंह-बिहारीदास पचोली, ड्राफ्ट परवाना, 9 जनवरी 1711, ज. आ.।

दरबार मे था, जयसिंह को लिखा कि वह नारनौल पहुँचकर दरबार मे लिख दे कि वह अजीतसिंह के आने की प्रतीक्षा मे नारनौल मे रूक गये है। कुछ दिन बाद भिखारीदास को एक मुचलके पर हस्ताक्षर करने पडे, जिसमे महाराजा का एक माह मे दरबार मे पहुँचने का वायदा किया गया था। परन्तु जयसिंह व अजीतसिंह २६ जून को ही नारनौल पहुँचे[1]। इस समय तक मुनीम खा की मृत्यु हो चुकी थी और बादशाह सतलज के उस पार जा चुका था (मई १७११)। राजपूतो की दरबार मे जाने की अनिच्छा के दो कारण थे। एक तो वे बादशाह व मुनीम खा पर विश्वास नही करते थे और दूसरे अपनी नियुक्ति के बारे मे वे असन्तुष्ट थे। ७ जून के पत्र मे जयसिंह ने बिहारीदास को लिखा कि वे बादशाह का रूख देखेगे और उसे सूचित करेंगे। कुछ दिन पूर्व ही कुछ सिख जासूस आगरा मे पकडे गये थे और उनके पास महाराणा के लिखे कुछ पत्र मिले थे। जयसिंह ने बिहारीदास को लिखा कि भविष्य मे उन्हे अधिक सावधानी बरतनी चाहिए[2]।

उपर्युक्त वृत्तान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुगल सरकार की नीतियो के कारण राजपूतो व मुगलो मे एक दूसरे के प्रति कितना अविश्वास पैदा हो गया था।

विजयसिंह का दरबार से भागना

अजमेर से रवाना होने के कुछ दिन बाद बादशाह ने टौक व भुसावर विजयसिंह को जागीर तनख्वाह मे दे दिये थे। विजयसिंह के सारे मसूबे असफल हो गये थे और पिछले दो वर्ष की घटनाओ ने उसे बहुत निराश कर दिया था। वह सतलज तक तो बादशाह के साथ रहा और फिर भाग कर हिण्डोन आ गया। इस पर टौक शुजात खा को दे दिया गया। परन्तु साथ ही विजयसिंह को वापस आने के पत्र लिखे गये। ६ दिसम्बर १७११ के फरमान मे उसे टौक परगाना लौटाने की सूचना भेजी गई[3]। परन्तु विजयसिंह वापस दरबार मे नही आना चाहता था। उसने जयसिंह को एक पत्र लिखा जिसमे उसने आबेर आने की इच्छा प्रकट की। जयसिंह ने २५ नवम्बर १७११ को अपने पत्र मे लिखा कि जो कुछ उसका है वह विजयसिंह का भी है, और उसको खरचे के लिए दस हजार रुपये भेजे। परन्तु जब विजयसिंह साँगानेर आया तो उसे बदी बना दिया गया और आँबेर मे नजरबद कर दिया गया। यह मई १७१३ की घटना है। २३ मई १७१३ को जयसिंह ने अजीतसिंह को

---

1. जगजीवनदास–जयसिंह (जनवरी 1711), दीवान भिखारीदास–जयसिंह, 4, 19, फरवरी 1711 ज. आ., नारनौल पहुँचने के बारे मे जयसिंह–भंडारी खीवसीं (जोधपुर का), 9 जुलाई 1711, जोधपुर आ.।
2. जयसिंह–बिहारीदास, ड्राफ्ट परवाना, 7 जून, 30 अप्रेल, 1711 ज आ.।
3 ज अख, 26 अप्रेल, 28, 30 नवम्बर, 18 दिसम्बर 1711।

लिखा कि जैसा महाराजा चाहते थे वैसा कर लिया गया है और उस कार्य मे श्याम-सिंह ने अच्छी सेवा की[1] । विजयसिंह का वाद का वृत्तान्त हम आगे लिखेंगे ।

अज़ीमुश्शान का राजपूत शासको के वकीलों से विरोध प्रकट करना व नियुक्ति के बारे मे चर्चा

नारनौल पहुँच कर भी (२६ जनवरी १७११) जयसिंह व अजीतसिंह ने सढोरा पहुँचने मे कोई तत्परता नही दिखाई । अगस्त के शुरू मे वे दिल्ली के निकट वदली पहुँचे जहाँ उन्होने शाही शिकारगाह के दरवाजे तोडकर कुछ हिरन आदि मारे । दिल्ली पहुँच कर राजपूतो ने एक कसाई व एक जिजिया वसूल करने वाले अधिकारी की हत्या करदी । जब यह समाचार वादशाह के पास पहुँचे तो उसे वडा क्रोध आया परन्तु वह बोला कुछ नही । राजपूतो के इस आपत्तिजनक व्यवहार से अजीमुश्शान वडा क्षुब्ध हुआ । उसने मेवाड के वकील को बुलाकर कहा कि वह मुगल सरकार व राजपूतो के वीच मे पडा, परन्तु अब वह किस मुह से उनकी सिफारिश करे । उसने कहा कि जयसिंह व अजीतसिंह के साढोरा पहुँचने पर वह उन्हे या तो शीघ्र ही दरवार भेज देगा या उनकी पूर्व अथवा दक्षिण मे नियुक्ति करवा देगा, और यदि वे इसके लिए तैयार नही हो तो वह उन्हे वापस उनके वतन जाने की छुट्टी दिलवा देगा । उसने कहा कि यदि उन्हे (जयसिंह,अजीतसिंह) इस प्रकार शाही आदेशो की अवहेलना करनी थी तो वे आते ही नही । यदि वे वापस जाना चाहे तो चले जावे, वादशाह उनसे निपट लेगे । अजीमुश्शान ने भडारी खीवसी (जोधपुर का) व दीवान भिखारीदास कायस्थ को क्रमश अजीतसिंह व जयसिंह के पास भेजना चाहा जिससे वे ये सभी वाते उनको समझा सके । परन्तु भडारी खीवसी, जो पिछले कई महीनो से जयसिंह व अजीतसिंह को मालवा व गुजरात की सूवेदारी दिलवाने की झूठी आशा दिला रहा था, यह नही चाहता था कि भिखारीदास भी उनके साथ जाए[2] । अगले अध्याय मे हम देखेंगे कि किस प्रकार भडारी खीवसी के झूठ-सच वोलने से महाराजा अजीतसिंह को भारी हानि उठानी पडी ।

जहांदार शाह की अज़ीमुश्शानके विरुद्ध शिकायत और राजपूतो के विरुद्ध जाने का प्रस्ताव

इस समय जयसिंह व अजीतसिंह के साथ २५,०००–३०,००० सवार थे । इसकी उन लोगो ने, जो अजीमुश्शान के खिलाफ थे, वादशाह से शिकायत की । जहांदार शाह ने वादशाह से कहा कि यह अजीमुश्शान की शह पर हो रहा है और इसमे धोखे

1. जयसिंह–विजयसिंह, 25 नवम्वर 1711, ज. आ.; जयसिंह–अजीतसिंह, 23 मार्च 1713, जोधपुर खरीता वही नं. 3 रा आ. ।
2. मेवाड वकील की रिपोर्ट (अगस्त 1711), वीर विनोद, 2, पृ. 947–53 पर देखिये ।

की संभावना है। उसने स्वयं राजपूतों के विरुद्ध जाने का प्रस्ताव रखा परन्तु बादशाह ने उसे स्वीकार नही किया। बादशाह ने अजीमुश्शान से यह अवश्य पूछा कि राजपूतो ने इतनी बडी सेना क्यो एकत्रित की है? और कहा कि उन्हे २०००–३००० सवारो के साथ आने के लिए लिख दिया जाय। इस पर राजपूतो के वकीलो को आवश्यक निर्देश भी दे दिये गये[1]।

अजीमुश्शान का मालवे व दक्षिण मे राजपूतो व मराठों द्वारा उपद्रव करवाने का विचार

यह बडे आश्चर्य की बात है कि इस समय अजीमुश्शान दक्षिण मे व मालवे मे मराठो द्वारा बडे पैमाने पर उपद्रव कराने की सोच रहा था और इसमे दुर्गादास राठौड़ को भी भाग लेने के लिए कहा था, जिससे कि उपद्रवो की गभीरता व प्रभाव बढे। उसका उद्देश्य दक्षिण के सूबो मे जुल्फिकार खा के सहायक दाउद खा की स्थिति को नितान्त अस्थिर बनाना व मालवे के सूबे मे उपद्रव करवा कर अपने भाई जहाँशाह को आर्थिक हानि पहुँचाना था। जहाँशाह के पास १७०७ से मालवा का सूबा था। इन बातो से मुगल साम्राज्य की आतरिक दुर्दशा का सही ज्ञान होता है[2]।

नियुक्ति का प्रश्न, जयसिंह द्वारा अहमदाबाद सोरा की नियुक्ति अस्वीकार करना

जयसिंह व अजीतसिंह ७ अक्टूबर १७११ को साढोरा पहुँचे[3]। १३ माह पूर्व उन्हे दो महीने की छुट्टी दी गई थी और इस प्रकार उन्होने आने मे बहुत विलम्ब किया था। भिखारीदास, मेवाड के कान्ह पचोली व किशोरदास, और जोधपुर का भडारी खीवसी बादशाह के दरबार मे दोनो महाराजाओ की नियुक्तियो के बारे मे बातचीत कर रहे थे। २७ अक्टूबर की रिपोर्ट मे भिखारीदास ने लिखा कि महावत खा ने महाराजा अजीतसिंह के ढाका व जयसिंह के दखिन जाने का प्रस्ताव रखा। इस पर भडारी ने स्पष्ट रूप से कहा कि महाराजा अजीतसिंह सोरठ मे नियुक्त स्वीकार कर सकते है। २६ अक्टूबर को भडारी ने यही बात शाह कुद्रतुल्लाह खा से कही। कुद्रतुल्लाह ने तब बादशाह से अजीतसिंह की सोरठ की नियुक्ति के लिए इस शर्त पर सिफारिश करना स्वीकार किया कि जयसिंह पूर्वी सूबो मे नियुक्ति स्वीकार करे। भिखारीदास ने कहा कि ढाका की नियुक्ति ठीक नही है। वह जगह बेकार है और देश से बहुत दूर है। वहाँ खर्चा भेजना सुविधाजनक नही होगा और

---

1. मेवाड वकील की रिपोर्ट (वीर विनोद, 2, पृ 950)।
2. मेवाड वकील की रिपोर्ट (वीर विनोद, 2, पृ. 944–45) व 4 अगस्त 1711 की रिपोर्ट (वीर विनोद, 2, पृ 950)।
3. ज अख., 9, 16 अक्टूबर 1711।

महाराजा के लम्बे अर्से तक दूर प्रदेशो मे रहने से जागीर के हासिल मे कमी हो जाएगी। अगर महाराजा को पूर्व की ओर ही नियुक्ति करना है तो उन्हे पटना या इलाहाबाद की नायब सूबेदारी दी जाय। कुद्रतुल्लाह ने कहा कि अभी तो बादशाह इसके लिए तैयार नही होगे परन्तु यदि महाराजा ने अभी सतोषजनक सेवा की तो वाद मे उन्हे उनकी इच्छानुकूल नियुक्ति दे दी जाएगी। भिखारीदास ने कहा कि इलाहाबाद मे सैयद अब्दुला खा है और महाराजा का उसके साथ रहकर कार्य करना कठिन है। इस पर कुद्रतुल्लाह ने कहा कि महाराजा के लिए इलाहाबाद सूबे मे अलग फौजदारी बनादी जाएगी जो सीधे शाहजादा अजीमुश्शान की देख-रेख मे रहेगी, और उस पर नायब सूबेदार का नियन्त्रण नही रखा जावेगा। तब भिखारीदास ने महाराजा की स्वीकृति आने की शर्त पर यह सुझाव मान लिया। परन्तु स्वीकृति आने से पहले ही भडारी खीवसी ने अजीतसिंह के सोरठ व जयसिंह के सरकार अहमदाबाद खोरा की फौजदारी स्वीकार किये जाने क मुचलके पर जोधपुर व आबेर की मुहरे लगादी। २४ अक्टूबर १७११ के पत्र मे भडारी ने जयसिंह को लिखा कि अहमदा-बाद खोरा की फौजदारी मे लाखो की आय है और फौजदारी के अन्तर्गत विभिन्न जमीदारो का वृत्तान्त लिखा[1]। परन्तु जयसिंह ने इस नियुक्ति को अस्वीकार कर दिया। जयसिंह ने लिखा कि उसे कम से कम ५००० सवार सदैव तैयार रखने पडेंगे। उसके पास कुल २००० सवार है। जब तक कि ३००० सवारो का खर्चा अजीमुश्शान अपने पास से न दे, वह आर्थिक सकट मे पड़ जाएगा[2]।

जयसिंह व अजीतसिंह का स्वदेश लौटना, बहादुरशाह की मृत्यु

इन नियुक्तियो से असन्तुष्ट होने के कारण जयसिंह व अजीतसिंह ने वापस लौट जाने का निश्चय किया। बादशाह का स्वास्थ्य भी गिर रहा था। पिछले उत्तरा-धिकार के युद्ध मे भाग लेने से जो सकट उत्पन्न हुआ था, वह जयसिंह के दिमाग मे ताज़ा था। जनवरी १७१२ मे जयसिंह ने अपने विवाह का कारण बताकर छुट्टी लेली। अजीतसिंह ने भी छुट्टी प्राप्त कर ली। फरवरी के शुरू मे वे स्वदेश की ओर चल पड़े[3]।

---

1. भिखारीदास–जयसिंह, 27 अक्टूबर 1711, ज. आ. इस समय राजपूतो के अजीमुश्शान से बहुत से अच्छे सबंध थे। बाद मे अजीमुश्शान के पुत्र फर्रूखसियर ने भी जयसिंह व महाराणा से मैत्रिपूर्ण संबंध रखे। नियुक्ति के संबध मे ही देखिये भंडारी खीवसी–जयसिंह 28 अक्टूबर 1711, ज आ।

2. जयसिंह–भडारी खींवसी (पत्र की प्रतिलिपि), 6 नवम्बर 1711, ज अ.।

3. राजा टोडरमल–जयसिंह, 8 जनवरी 1712, अब्दुल अजीज–जयसिंह, 3 फरवरी 1712, फा प ज आ।

कुछ दिन वाद (१७ फरवरी १७१२) वादशाह वहादुर शाह का लाहौर मे देहान्त हो गया। उसके साथ ही औरगजेब की वची खुची परम्परा भी समाप्त हो गई। राजपूताने के इतिहास मे उसका शासन-काल राजपूतो के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। उसकी राजपूत नीति के कारण राजपूतो के मुगल सरकार के प्रति दृष्टिकोण मे वडा अन्तर हुआ। राजपूतो ने मुगल सरकार के प्रति वफादारी की सीमाओ को अव अच्छी तरह समझ लिया। उनके सफल सघर्ष ने उनमे नई प्रेरणा व आत्म-विश्वास जागृत किये। जयसिंह के जीवन का एक अत्यन्त सघर्पमय अध्याय समाप्त हुआ। वह अव उज्वल भविष्य की कल्पना कर सकता था।

०●०

अध्याय ६

जयसिंह के प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार (१७१२-१९)

लाहौर में उत्तराधिकार का युद्ध

बहादुरशाह की मृत्यु के बाद लाहौर मे जब उत्तराधिकार का युद्ध भडक उठा तो उस समय जयसिह, अजीतसिह, महाराव बुद्धसिह, महाराजा सुजान सिह (बीकानेर) अपने-अपने राज्यो मे थे। ये सभी अवकाश लेकर अपने देश आए हुए थे। विशिष्ट राजपूतो मे केवल दो तीन ही इस समय लाहौर मे थे। इनमे राज-बहादुर (किशनगढ), महाराणा अमरसिह का भाई प्रतापसिह, व राव गोपाल सिंह चद्रावत का पुत्र इस्लाम खा थे[1]।

जयसिंह को युद्ध के विस्तृत समाचार मिलना

यद्यपि जयसिंह घटनास्थल से बहुत दूर था तथापि उसे लाहौर मे होने वाली प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना की और बदलते हुए राजनीतिक दृश्य के बारे मे पूरी जान-कारी मिल रही थी। सर्वप्रथम उसे नाहर खा के पत्र से बादशाह की बीमारी का समाचार मिला। उसके बाद पत्रो का ताता सा बंध गया, जिनमे बादशाह की मृत्यु, अजीमुश्शान की पराजय व मृत्यु (६ मार्च १७१२ ई०), जहांदारशाह की मृत्यु की अफवाह जिसे सुनकर कुछ समय के लिए असद खा के यहाँ नौबत नही बजाई गई, और फिर जहाशाह व रफीउश्शान की मृत्यु, तथा अत मे जहादार शाह की विजय व राज्यारोहण (२१ सफर, हि० स० ११२४) के बारे मे लिखा था[2]।

जुल्फिकार खां का उत्कर्ष, जगजीवनदास की जयसिंह को सलाह

लाहौर से जगजीवनदास ने बादशाह के पुत्र अजउद्दीन का आगरे भेजे जाने व यार मुहम्मद खा को आबेर, महाराणा व महाराजा अजीतसिंह के पास रवाना करने का समाचार भेजा। उसने अपने स्वामी जयसिंह को लिखा कि यदि वे आगरे आवे तो असद खा के मार्फत बादशाह से मिले। वकील-ए-मुतलक

1. विस्तृत वृत्तान्त के लिए देखिए इरादत खा, पृ. 64–79, इरविन, 1, पृ 158–85। 1 मार्च 1712 के पत्र मे कोटा के महाराव भीमसिह ने जयसिह को लिखा कि बादशाही लश्कर के साहुकारो के पत्रो से बादशाह की 20 फरवरी को मृत्यु होने का समाचार मिला है। भीमसिह ने पूछा कि वे (जयसिंह) अब क्या कदम उठाने का सोच रहे है। पत्र ज. आ.।

2 नाहर खा–जयसिंह, फा. प, 29 फरवरी, 1712; नसरतयार खा–जयसिंह, फा. प., 2 मार्च, ज आ., भिखारीदास–जयसिंह 11 मार्च 1712 ज आ.।

असद खां के पुत्र जुल्फिकार खा का उत्तराधिकार के युद्ध के पश्चात् असाधारण प्रभाव स्थापित हो गया था। उसी के समर्थन के कारण जहादार शाह को उत्तराधिकार के युद्ध मे सफलता प्राप्त हुई थी। युद्ध के बाद उसे वजीर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद मिल गया था। दक्षिण के ६ सूबो की सूबेदारी भी उसके पास ही रहने दी गई, और उसे १००००/१०००० का मनसब दिया गया। असद खाँ अपने पूर्व पद पर रहा। उसे १२०००/१२००० का मनसब व गुजरात की सूबेदारी मिली। उन्हे अपने सूबो मे उपस्थित रहने की आवश्यकता नही थी और वे अपने नायब द्वारा प्रशासन चला सकते थे[1]।

जिज़िया बंद करने के कारण

राज्यारोहण के कुछ दिन बाद ही जहादारशाह ने जिजिया माफ कर दिया। यह औरगजेब व बहादुर शाह की अब तक की नीति मे बडा परिवर्तन था। सभवतः इसका एक कारण दिन प्रति दिन स्पष्ट होता हुआ यह बोध था कि हिन्दुओ के प्रति आलमगीर की नीति से साम्राज्य को बडी हानि हुई है और उसकी नीति के कारण हिन्दुओ की मुगल साम्राज्य व मुगल सरकार के प्रति पहले जैसी निष्ठा व भक्ति लेश मात्र भी नही रही है। यह स्पष्ट था कि इस नीति से हिन्दुओ मे रोष व क्षोभ दोनो ही फैले थे। पिछले अध्याय मे दिये जयसिंह के छत्रपति शाहू, छत्रसाल बुदेला व करौली के रतनपाल को लिखे पत्रो से यह बात स्पष्ट हो जाती है। किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति को यह स्पष्ट था कि इस प्रकार की नीति को मुगल साम्राज्य की दिनो दिन गिरती हुई अवस्था के कारण कार्यान्वित करना असभव था। एक कारण यह भी था कि उत्तराधिकार का युद्ध अभी समाप्त नही हुआ था और राजपूतो व हिन्दू अफसरो का समर्थन प्राप्त करने के लिए उन्हे सतुष्ट करना आवश्यक था। हम यह देखते है कि इधर जहादार शाह ने और उधर बिहार मे उसके प्रतिद्वन्दी अजीमुश्शान के पुत्र फर्रुखसियर ने जिजिया माफ करने की घोषणा की थी[2]।

जयसिंह व अजीतसिंह को उच्च मनसब मिलना

जहाँदार शाह ने राजपूतो की इस शिकायत को कि उन्हे सतोषजनक पद व मनसब नही दिये जाते हैं, दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। अप्रेल १७१२ मे जयसिंह को मिर्जा राजा व अजीतसिंह को महाराजा का पद व उन दोनो को ७०००/७००० की मनसबे दिए जाने का हुक्म जारी हुआ[3]। अन्य हिन्दू अफसरो को भी उच्च मनसब आदि दिये गये। दक्षिण मे जुल्फिकार खा के डिप्टी दाउद खा

1 जगजीवनदास-जयसिंह, (अधूरी रिपोर्ट), ज. आ।

2 ज अख, 27 मार्च 1712, थोडे भिन्न मत के लिए देखिए पार्टीज, पृ. 85।

3. जगजीवनदास-जयसिंह, 2 अप्रेल 1712, ज. आ.।

ने मराठो को चौथ के एवज मे निश्चित धन राशि देने का समझौता पूर्ववत जारी रखा[1]।

जयसिंह का अजुद्दीन की मदद के लिए न जाना; छत्रसाल का पत्र

अप्रेल के अन्त मे दिल्ली की ओर आते हुए जहादार शाह ने फर्रुखसियर के पटना मे अपने आपको बादशाह घोषित करने का समाचार सुना। उसने तुरन्त अपने पुत्र अजउद्दीन को एक बडी सेना के साथ आगरे के लिए रवाना कर दिया और जयसिह (५ मई), अजीतसिह, बुद्धसिह, छत्रसाल बुंदेला आदि को अजउद्दीन से जाकर मिलने के हुक्म भेजे। परन्तु १७०७ के कटु अनुभव के बाद जयसिह व अजीतसिह ने उत्तराधिकार के झगडे मे पडना ठीक नही समझा। जुलाई मे जयसिह को उनके वकील ने भी उत्तराधिकार के युद्ध मे भाग न लेने की सलाह दी[2]। छत्रसाल बुंदेला का इरादा अजउद्दीन की मदद के लिए जाने का था और इस बारे मे उन्होने २७ अगस्त के पत्र मे जयसिह से सलाह भी मागी[3]।

फर्रुखसियर की प्रगति, जहांदार शाह का जयसिंह व अजीतसिंह को मालवा व गुजरात की सूबेदारी देना

अक्टूबर १७१२ मे फर्रुखसियर बनारस पहुँच गया था। फर्रुखसियर के पिता के इलाहाबाद व बिहार के सूबो मे नायब, सैयद अब्दुल्ला खां व हुसैन अली खा, तथा भोजपुर के सिद्धस्थ नारायण, उडीसा के नायब सूबेदार सफशिकन खा व कडा मनिकपुर के फौजदार छबीला राम नागर का समर्थन प्राप्त हो जाने से उसकी स्थिति काफी मजबूत हो गई थी[4]। जुल्फिकार खॉ के चिनकुलीच खा व मुहम्मद अमीन खा से ऊपरी तौर से ही ठीक सबध थे, परन्तु वह उन पर विश्वास नही कर सकता था। इस कारण उसने राजपूतो को उनके मनचाहे मनसब व प्रशासकीय पद दिलवाना आवश्यक समझा। अजउद्दीन की हार के चौदह दिन पूर्व (१० नवम्बर) जयसिह को मालवे का सूबा व ७०००/७००० की मनसब और उनके पुत्र चिमना जी को मदसौर की फौजदारी दिये जाने की घोषणा की गई। महाराजा अजीत सिंह को गुजरात की सूबेदारी, ९०००/९००० का मनसब, उसके पुत्र अभयसिह को पाटन की फौजदारी व २०००/१५०० का पद तथा दूसरे पुत्र बख्तसिंह को ईडर की फौजदारी देने की घोषणा की गई। अजीतसिंह को जयसिह से ऊँचा मनसब रघुनाथ भडारी की चाल से मिला था। उसने कहा कि महाराजा जयसिह अपने आपको

1. देखिये पार्टीज, पृ 48।
2. देखिये इरविन 1, पृ 190–91, ज अख., 5, 8 मई, 30 जुलाई 1712, बुलाकीचन्द–जयसिंह, फा प. 5 जुलाई 1712, ज. आ।
3. राजा छत्रसाल बुंदेला–जयसिह, 27 अगस्त 1712, ज आ।
4. विस्तृत वृत्तान्त के लिए देखिए इरविन, 1, पृ. 206, पार्टीज, पृ 89–95।

महाराजा अजीतसिंह के पुत्रो के समान ही मानते है और यदि उन्हे महाराजा से छोटी मनसब मिले तो उन्हे कोई आपत्ति नही होगी। आबेर के वकील जगजीवनदास ने इसका कडा विरोध किया। रघुनाथ भडारी ने जगजीवनदास के जयसिह के लिए मालपुरा, अमरसर, हिण्डौन, खोरी, कोटपुतली लेने के प्रयत्नो को भी कोई न कोई कारण बताकर सफल नही होने दिया। अमरसर के लिए उसने कहा कि महाराजा अजीतसिंह स्वय उसे लेना चाह रहे है। खोरी नूर खां की जागीर मे है और उससे झगडा करना ठीक नही है। ऐसे ही कारण उसने अन्य परगनो के लिए बताए। जयसिह के लिए वह केवल आठ परगनो के लिए प्रयत्न करने के पक्ष मे था जिनमे देवती सचरी, टोडा, बहात्री व गीजगढ थे। कुछ ही माह के बाद आबेर के वकील ने जोधपुर के भडारी अफसरो को चालाकी से मात दे दी और अजीतसिह को थट्टा की सूबेदारी दिलवादी जबकि उसे इससे अच्छी नियुक्ति मिल सकती थी। इसका वृत्तान्त हम आगे देगे[1]।

जगजीवनदास की रिपोर्टस में फर्रूखसियर की प्रगति व विजय का वृत्तान्त

११ नवम्बर की रिपोर्ट मे जगजीवनदास ने लिखा कि फर्रूखसियर ६००००-७०००० सवारो के साथ इलाहाबाद से आ रहा है। इसका यह अर्थ था कि जहाँदार शाह व फर्रूखसियर मे जोरदार टक्कर होगी। यद्यपि जुलाई मे भेजे गये पत्र मे जगजीवनदास ने जयसिह को उत्तराधिकार के युद्ध मे भाग न लेने की राय दी थी, परन्तु जब जुल्फिकार खा व राजा सभाचद ने उससे बारबार उसके स्वामी को बुलाने के लिए कहा और यह आश्वासन दिया कि आगरा आने पर उसकी सभी इच्छाएं पूरी कर दी जाएंगी तो जगजीवनदास ने २७ नवम्बर की रिपोर्ट मे लिखा कि यदि आबेर व जोधपुर से समय रहते सेनाएं आजाती है तो बादशाह उनकी इच्छानुसार नियुक्तियाँ व पद आदि देगा। उसने लिखा कि जुल्फिकार खा उनकी बडी प्रतीक्षा कर रहा है। उसने यह भी सूचित किया कि फर्रूखसियर आगरे की ओर बढ रहा है[2]।

२९ नवम्बर को बादशाह जहादार शाह दिल्ली से आगरे की ओर रवाना हुआ। तीन दिन बाद उसने जयसिह, अजीतसिंह, चूडामण जाट आदि के नाम अन्तिम पत्र भेजे, जिनमे उनसे आने का आग्रह किया गया था[3]।

२० दिसम्बर को जयसिह ने अजीतसिह को लिखा कि बादशाह मथुरा पहुँच चुका है। फर्रूखसियर आगरे से ३० कोस दूर है और शीघ्र ही उसके आगरा पहुँचने की सभावना है। इसलिए महाराजा भडारी को सेना के साथ बादशाह से मिलने को

1. ज अख, 14 नवम्बर 1712, जगजीवनदास–जयसिह, 11 नवम्बर 1712 ज आ।
2. जगजीवनदास–जयसिह, 27 नवम्बर 1712 ज आ।
3. ज अख, 29 नवम्बर, 2 दिसम्बर 1712, ज आ।

लिखे। उसने यह भी पूछा कि वह (अजीतसिंह) गुजरात के लिए कबतक रवाना हो रहा है[1]।

इसी बीच दिल्ली मे जगजीवनदास सैनिक भर्ती करने मे व्यस्त था। काफी प्रयत्न के बाद भी वह केवल ३००–४०० सवार भर्ती कर सका क्योंकि बादशाह की सेना मे उन्हे अधिक अगाउ वेतन मिल रहा था। ३१ दिसम्बर के पत्र मे उसने जयसिंह को सूचित किया कि फर्रुखसियर ने गउघाट पर जमुना पार करली है और इसलिए बादशाह ३० दिसम्बर को अपने शिविर से रवाना होकर सिकन्दरा दाई तरफ छोडकर पास के मैदान मे तोपो को पक्ति मे आगे जमा कर वहाँ रुक गया है। लगभग एक कोस दूर फर्रुखसियर की सेना हे परन्तु लगातार बारिश होने के कारण युद्ध नही छिड सका हे। ३१ दिसम्बर को तीसरे पहर बारिश रुकी, कोहरा कम हो गया और दोनो सेनाए एक दूसरे से भिड गई। परन्तु जुल्फिकार खा के अयोग्य सैन्य सचालन, चिनकुलिच खा (निजाम) व मुहम्मद अमीन खा के विश्वास-घात तथा स्वय की कमजोरी के कारण जहादार शाह हार गया। जगजीवनदास ने इन घटनाओ का विस्तृत वृत्तान्त १ जनवरी १७१३ के पत्र मे जयसिंह को भेजा। उसने लिखा कि फर्रुखसियर के बादशाह घोषित किये जाने के बाद चिनकुलिच खा व मुहम्मद अमीन खा बादशाह से मिले और उन्हे शाही कृपा का आश्वासन दिया गया। उसने लिखा कि अजउद्दीन, जुलफिकार खाँ आदि का कुछ पता नही है कि वे कहा है। उसने यह भी लिखा कि चूडामरण ने जहाँदार शाह का पक्ष लिया था परन्तु युद्ध छिडने के बाद वह बादशाह की खजानो की पेटियो को लूटकर वह भाग गया। जगजीवनदास के अनुसार युद्ध मे केवल २५० सैनिक काम आए[2]।

फर्रुखसियर द्वारा जिजिया माफ करना, जगजीवनदास की रिपोर्ट

८ जनवरी की रिपोर्ट मे उसने असद खा के उस पत्र के बारे मे लिखा जिसमे उसने जहादार शाह को सलीमगढ के किले मे व अपने पुत्र जुल्फिकार खा को दिल्ली के किले मे बद करने की सूचना बादशाह के पास भेजी थी और उन्हे प्रस्तुत करने की आज्ञा मागी थी। फर्रुखसियर ने तब जुल्फिकार की सुरक्षा का आश्वासन देते हुए उसे भिजवाने को लिखा। जगजीवन ने लिखा कि फर्रुखसियर जब बादशाह शाहजहा के मकबरे के दर्शन के लिए गया तो शहर के लोग बडी सख्या मे एकत्रित हो गए और उन्होने जिजिया माफ करने का आग्रह किया। मेहता छबीला राम ने, जो उस समय बादशाह के साथ था, इसका समर्थन किया और कहा कि बादशाह ने कुछ समय पूर्व जिजिया माफ करने का निर्णय लिया था और अब इसके बारे मे विधिवत आज्ञा जारी की जाय। बादशाह ने तब जिजिया बद करने की घोषणा

1 जयसिंह–अजीतसिंह, 2 दिसम्बर 1712, जोधपुर खरीता वही, 3, रा आ.।

2. जगजीवनदास–जयसिंह, रिपोर्ट, 29, 31 दिसम्बर 1713, 1 जनवरी 1714।

करदी। उसने यह भी सूचित किया कि १० जनवरी को बादशाह देहली के लिए रवाना हो जाएंगे[1]।

अजीतसिंह का गुजरात की ओर प्रस्थान; जयसिंह की अजीतसिंह को वापस लौटने की सलाह

इसी बीच अजीतसिंह जोधपुर से गुजरात के लिए रवाना हो चुका था। उसने जयसिंह को भी मालवा के सूबे में पहुँच कर वहा के प्रशासन का कार्यभार संभालने को कहा। जैसा हम उल्लेख कर चुके हैं, ये सूबे हाल ही मे जहादार शाह ने उन्हें दिये थे। परन्तु अब स्थिति बदल गई थी। १३ जनवरी १७१३ के पत्र मे जयसिह ने अजीतसिंह को लिखा कि ये सूबे उन्हे भूतपूर्व बादशाह से मिले थे। यदि वे सूबो मे गये और वहाँ के सूबेदारो ने उनसे सूबेदारी मिलने की सनदे मागी तो वे क्या जवाब देंगे? इसलिए उन्हे किसी स्थान पर मिलकर सब बाते निश्चित कर लेनी चाहिए और फिर मुगल सरकार के साथ बातचीत चलानी चाहिए[2]।

राजपूत राजाओं का फर्रुखसियर को नज़र आदि भेजना; ईरानी पार्टी का अन्त व उसके परिणाम

१८ जनवरी १७१३ को फर्रुखसियर ने जयसिंह, अजीतसिंह व कोटा के भीमसिंह द्वारा भेजे गये मुबारकबादी के पत्र व नजर स्वीकार किए[3]। महाराणा की ओर से ठाकुर कुशलसिंह आया था। दिल्ली मे अब स्थिति स्पष्ट हो चली थी। १ फरवरी को जुल्फिकार खा को मार दिया गया और उसके शव की बडी दुर्गति की गई। असद खा को बरखास्त कर दिया गया[4]। राजनीतिक मच से इन दोनो योग्य, अनुभवी व प्रभावशाली अफसरो के हट जाने से ईरानी पार्टी समाप्त हो गई और मुगल मनसबदारो के विभिन्न गुटो के बीच वह सतुलन बिगड गया जिसको अब-तक मुगल सम्राट अपने ही हित मे बनाये हुए थे। यह सभव है कि यदि ईरानी पार्टी का प्रभाव नही लुप्त हुआ होता तो सैयदो, व बाद मे तूरानी पार्टी के निजाम व मुहम्मद अमीन खा, की असीमित शक्ति का विकास रोक दिया जाता।

सैयद भाई उनका तूरानी व राजपूतो को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न

नई व्यवस्था मे सैयद अब्दुल्ला खा वजीर बना। उसे ७०००/७००० की मनसब, कुत्बुलमुल्क की उपाधि, व मुल्तान की सूबेदारी मिली। उसके छोटे भाई हुसैन अली को सरकार मे दूसरा सबसे महत्वपूर्ण पद (मीर बख्शी) मिला। उसे भी ७०००/७००० की मनसब व बिहार के सूबे मिले। सैयदो को ज्ञात था कि उनकी आकस्मिक

1. जगजीवनदास–जयसिंह, 8 जनवरी 1713, ज आ.।
2 जयसिंह–अजीतसिंह, 13 जनवरी 1713, (जोधपुर खरीता बही, नं 3, रा. आ)।
3. ज. अख., 18 जनवरी 1713, 19 मई, कुशलसिंह–लालसिंह, 1713।
4. इरविन, 1, पृ 248–53।

उन्नति पुराने प्रतिष्ठित अफसरो को बहुत खलेगी, इसलिए उन्होने उन्हे संतुष्ट करने का प्रयत्न किया। उन्होने चिनकुलिच खां को ७०००/७००० का मनसब, निज़ामुल्मुल्क का खिताब, व दक्षिण की सूबेदारी दिलवादी। मुहम्मद अमीन खा को द्वितीय बख्शी का पद, व उसके पुत्र कमरुद्दीन खा को अहदियो का दारोगा नियुक्त करवाया। इन लोगो को वैसे भी पुरस्कृत करना था क्योकि युद्ध से पहले इन्होने शरियतुल्ला (मीर जुमला) से, युद्ध आरम्भ होने पर, उसमे भाग न लेने का गुप्त समझौता कर लिया था [1]। राजपूतो से सबध दृढ करने के लिए हुसैन अली ने फर्रुखसियर की विजय के तुरन्त बाद जयसिह, अजीतसिह आदि को व्यक्तिगत पत्र लिखे थे और आंबेर के श्यामसिंह खगारोत को बुलाया था, जिससे उसके (हुसैन अली) पहले से ही अच्छे सबध थे[2]। पत्रो मे हुसैन अली ने राजपूतो से मैत्रीपूर्ण सबंध स्थापित करने की आशा व्यक्त की और यथा सभव उनकी सतोषजनक नियुक्ति आदि का अश्वासन दिया। जयसिह के विरोध करने पर उसने नसरत यार खा की अजमेर की सूबेदारी, सांभर व डीडवाना की फौजदारी तथा अमीनी, जिसके बारे मे हुक्म जारी होने वाले थे, रद्द करा दिये। जयसिह ने लिखा था कि नसरत यार खा की इन जगहो मे नियुक्ति के कारण राजपूतो के मन मे शका उत्पन्न होने की सभावना है और उसकी नियुक्ति रद्द करना नवाब की 'हिन्दुस्तान' (यह शब्द हिन्दू शक्तियो के लिए उनके पत्रो मे प्रयुक्त हुआ है) के साथ मैत्रीपूर्ण सबध स्थापित करने की इच्छा के अनुकूल होगा[3]।

जयसिह का छबीला राम को पत्र

जयसिह को आगरा के युद्ध (३१ दिसम्बर से) पहले ही छबीला राम का पत्र मिला था जिसमे उसने लिखा था कि फर्रुखसियर के शासन मे हिन्दुओ की स्थिति कही अच्छी होगी, और देश मे सबल सरकार की स्थापना होगी। इसलिए जयसिह शीघ्र ही एक सेना फर्रुखसियर की मदद के लिए भेजे। युद्ध के बाद १७ जनवरी को जयसिह ने छबीलाराम को लिखा कि उसने आंबेर से आनन्दराम के साथ एक सेना रवाना करदी थी, परन्तु युद्ध पहले ही छिड गया, और इसलिए सेना वापस बुलाली गई। उसने लिखा कि आनन्दराम शीघ्र ही उससे (छबीलाराम) से मिलेगा और राजपूतो की इच्छाए बताएगा[4]।

सैयद भाइयो का जयसिह व अजीतसिह को संतोषजनक नियुक्ति व पद दिलवाने का प्रयत्न

१९ जनवरी १७१३ के नाहर खां के व २३ जनवरी के जगजीवनदास के

1. सीआर, पृ 52, इरविन, 1, पृ. 232।
2. जयसिह-पंचोली जगजीवनदास, 17 जनवरी 1713, ज आ.।
3 वही।
4. जयसिह-छबीलाराम, ड्राफ्ट, 17 जनवरी 1713, ज आ.।

पत्रो से यह स्पष्ट हो जाता है कि सैयद चाहते थे कि जयसिंह व अजीतसिंह बादशाह से आकर मिले। सैयद अब्दुल्ला खा ने कहा कि अब महाराजा जयसिंह व अजीतसिंह के दरबार मे आने और शाही सेवा करने के आश्वासनो मे विश्वास उठ चुका है। इसलिए यह आवश्यक है कि वे दोनो दरबार मे आवे और वहा उसी भाँति रहे कार्य करे जैसे उनके पूर्वज (मिर्जा राजा जयसिंह व महाराजा जसवतसिंह) करते थे। जगजीवनदास ने उत्तर दिया कि वह नवाब की सलाह अपने स्वामी तक पहुँचा देगा और जो उत्तर आएगा वह नवाव को सूचित करेगा। वैसे इस समय राजपूतो के हुसैनअली, के साथ अधिक घनिष्ट सबध थे और हुसैन अली, नसरत यार खा के जगजीवनदास को कहेनुसार, इस बात के लिए इच्छुक था कि राजपूत अपने मामलो को उसकी मार्फत तय कराए। जगजीवनदास ने कहा कि यदि उन्हे सैयद अब्दुल्ला खा की मार्फत अपना काम करवाना होता तो वे नवाब हुसैन अली की मदद क्यो लेते? उसने कहा कि वे नवाव अब्दुल्ला खा के पास तब ही जाएंगे जब उन्हे हुसैनअली ऐसा करने की कहेगे। इससे दोनो सैयद भाइयो के बीच उस प्रतिस्पर्धा का प्रारम्भ विदित होता है जो बाद मे कुछ समय के लिए अधिक खुले रूप मे सामने आई। जब हुसैनअली से ज्ञात हुआ कि अजीतसिह गुजरात की तरफ रवाना हो चुका है तो उसने कहा कि बादशाह से सूबा बिना मिले ही महाराजा ने अपनी सेना वहाँ भेजदी है। यह महाराजा की बडी गलती है और उन्हे चाहिए कि सेना तुरन्त वापस बुलाले[1]।

२४ जनवरी को जयसिंह व अजीतसिंह को मिर्जाराजा व महाराजा की उपाधिया मिल चुकी थी। फरवरी के अन्त मे हुसैन अली ने बादशाह से उनकी मसबो के बारे मे बात की। बादशाह जयसिंह व अजीतसिंह को ५०००/५००० की मसबे देने को तैयार था। परन्तु जोधपुर के वकील ने श्यामसिह खगारोत से, जिसे जयसिंह ने मसब आदि की बातचीत के लिए दरबार मे भेजा था, आग्रह किया कि महाराजा अजीतसिंह व जयसिह के रिश्ते को देखते हुए यह उचित होगा कि जयसिह की मसब कुछ कम हो। श्यामसिह ने तब एकता व मैत्रीपूर्ण सबध बनाये रखने के लिए, जयसिंह के लिए ५०००/४५०० का मसब स्वीकार कर लिया। हुसैन अली ने दोनो महाराजा को १०००/१००० का इजाफा दिलवाने का वचन दिया। उसने अजमेर के सूबे से नजमुद्दीन अली खा के स्थान पर अपनी बहिन के पुत्र असदुल्ला खा को वहाँ का सूबेदार बनवा दिया। असदुल्ला खा बीदारबख्त का मीर बख्शी रह चुका था और उसके व जयसिंह के अच्छे सबध थे। इसी समय जगजीवनदास ने मलरना,

1. नाहर खा-जयसिंह, 22 जनवरी 1713, जगजीवनदास-जयसिंह, 24 जनवरी 1713, ज. आ.।

अमरसर व लालसोट परगने नसरतयार खा से इजारे पर ले लिये। कुछ दिन बाद मंसब व जागीरो की सनदे भी उसने जयसिह व अजीतसिह के पास भेज दी[1]।

जयसिंह को सवाई की पदवी मिलना

इस समय तक फर्रूखसियर को बादशाह बने तीन माह हो चुके थे परन्तु जयसिह व अजीतसिह की नियुक्ति के बारे मे कोई निर्णय नही लिया गया था। जगजीवनदास ने जयसिह के लिए मालवा व अजीतसिह के लिए गुजरात की सूबेदारी के लिए हुसैन अली से कहा था। ७ जुलाई की रिपोर्ट मे उसने जयसिह को सूचित किया कि उसके प्रस्ताव पर सैयद सोच विचार कर रहे है। जुलाई के शुरू मे जयसिंह को सवाई, की उपाधि, पालकी, खिल्लत खास आदि दिया जाना स्वीकृत हो गया[2]।

अजीतसिंह व फर्रुखसियर के संबंध बिगड़ना; सैयदो का अजीतसिंह के प्रति मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण

परन्तु महाराजा अजीतसिंह ने आरम्भ से ही अपने लिए कठिनाईया खड़ी करली। पहले तो उसने टोडा से महाराजा प्रतापसिह को हटा कर वहाँ अपना अधिकार जमा लिया। जब किशनगढ के राजा राजबहादुर ने यह समाचार फर्रूखसियर से कहा तो उसने मीर जुमला को बुलाकर हुसैन अली से यह कहलाया कि यद्यपि नवाब (हुसैनअली) की अजीतसिह से बडी मित्रता है, परन्तु वह कभी भी शाही सेवा नही करेगा और इसलिए वह (बादशाह) उसके विरुद्ध जाए गे। परन्तु अमीरूलउमरा ने कहा कि वह अजीतसिह को शाही सेवा करने के लिए तैयार कर लेगा और सवाई जयसिह की मार्फत अजीतसिह को टोडा से थाना उठाने के लिए कहेगा। हुसैन अली ने जगजीवनदास व शाह आनंदराम से अजीतसिह के व्यवहार की आलोचना की और कहा कि मीरजुमला, राजा जयसिंह व खान दौरा रोज बादशाह से अजीतसिह की शिकायत करते है और कहते है कि वह कभी भी शाही सेवा नही करेगा, और सैयदो के उसके बारे मे आश्वासनो मे कोई सार नही है। उसने कहा कि जयसिह अजीतसिह को साभर व टोडा से अपने थाने उठाने का आग्रह करे और शासन काल के प्रारम्भ मे ही बादशाह से सबध न बिगाडने की राय दे। इसी समय हुसैन अली ने जयसिह को मथुरा व हिंडौन की फौजदारी भी दिलवादी। उसने आबेर के वकील से कहा कि उसे सवाई जयसिह पर पूर्ण विश्वास है और वह निश्चय ही भलीभाँति शाही सेवा करेगा और महाराजा अजीतसिह को भी ऐसा ही करने के लिये प्रेरित कर सकेगा[3]।

---

1. जगजीवनदास–जयसिंह, 22 फरवरी 1713, ज आ.।
2 जगजीवनदास–जयसिह, 12 जुलाई 1713, ज. आ.।
3. जगजीवनदास–जयसिंह, श्रावण वदि 13, सं. 1770, (जुलाई 1713) ज. आ.।

राज बहादुर व राजा मोहकमसिंह का फर्रूखसियर को भड़काना
अजीतसिंह द्वारा मोहकमसिंह की हत्या करवाना

इसी बीच राजा राजबहादुर राठौड व मोहकमसिह फर्रूखसियर से जयसिंह व अजीतसिंह के विरुद्ध चलने का बराबर आग्रह कर रहे थे। राजबहादुर ने राठौडो के अनेक पत्र बादशाह को दिखाये जिनमे उन्होने अजीतसिंह के विरूद्ध बादशाह से शिकायत लिखी थी। राज बहादुर ने कहा कि वह तथा मोहकमसिह बादशाह की सेना के हरावल मे रहेगे और जिन राठोडो ने पत्र भेजे है, वे सब बादशाह की सेना मे सम्मिलित हो जाए गे। इन पत्रो के बारे मे जगजीवनदास ने लिखा कि "भगवान ही जानता है कि वे असली है या नकली"। इसके कुछ दिन बाद ही (१६ अगस्त) अजीतसिंह ने राव इन्द्रसिंह के पुत्र मुहकमसिंह की दिल्ली मे अपने आदमी भेजकर हत्या करवादी। मोहकमसिह, अब्दुल्ला खा की हवेली से लौट रहा था। चार दिन बाद अजीतसिंह का एक आदमी, जो अपने साथियो के तीन ऊँटो के साथ कुतबुद्दीन के मकबरे के पास छिपा था, पकडा गया। जोधपुर ख्यात मे अजीतसिंह द्वारा मोहकम को मारने के लिए दिल्ली भेजे गये २०–२५ नौकरो को उनकी सफलता के लिए इनाम देने का उल्लेख मिलता है। मुहकमसिंह की हत्या के बाद फर्रूखसियर ने इन्द्रसिंह व उसके पुत्र मोहनसिंह को बुलवाया। परन्तु अजीतसिंह ने मोहनसिंह की मार्ग मे ही हत्या करवादी[1]।

जयसिंह व अजीतसिंह को इलाहाबाद व बुरहानपुर की सूबेदारी दिये जाने का निर्णय,
असदुल्ला खां का अजीतसिंह को पट्टा व जयसिंह को मालवा दिये जाने का प्रस्ताव

यद्यपि इन हत्याओ के लिए अजीतसिंह पर पूरा सदेह था परन्तु बादशाह ने उसके विरुद्ध जल्दी मे कोई कदम नही उठाया। सितम्बर मे अजीतसिंह को बुरहानपुर व जयसिंह को इलाहाबाद के सूबो की सूबेदारी देने का निर्णय लिया गया। इसके बारे मे फर्मान भी तैयार हो गये। जयसिंह ने अब्दुल्ला खा के एक पत्र व फरमान के बारे मे अजीतसिंह के पास सूचना अपने राज्य के एक अफसर हेमराज के हाथ भेजी और कहलाया कि महाराजा तुरन्त अपने सूबे का चार्ज लेने के लिए रवाना हो जाए। परन्तु १६ अक्टूबर को असदुल्ला खा के दिल्ली आने पर स्थिति बदल गई। उसने अगले दिन दोनो सैयद भाईयो से भेट की और कहा कि उसकी जयसिंह से बात हो चुकी है और यदि जयसिंह को मालवा व

1. वही, ज अख., 16, 26 अगस्त 1713; जोधपुर ख्यात, 2, पृ 100-102 (ओझा, जोधपुर, 2, प 555 नोट 1), वीर विनोद, 2, प 841, 1706 मे जब मोहकम सिंह मेडता का फौजदार था तो उसने अजीतसिंह को गिरफ्तार करने के लिए जालौर पर आक्रमण किया था परन्तु अजीत बचकर भाग निकलने मे सफल हो गया।

अजीतसिंह को थट्टा दे दिये जाए तो राजपूत संतुष्ट हो जाएगे। सैयदो ने कहा कि अजीतसिंह थट्टा पसन्द नही करेगा, परन्तु अवदुल्ला ने कहा कि इस बारे मे वे निश्चिन्त रहे क्योकि दोनो राजा मालवा व थट्टा के लिए तैयार है। अवदुल्ला खा तव वादशाह से मिला और वादशाह ने मालवा व थट्टा की नियुक्ति की अवदुल्ला खा की सिफारिश तत्काल मानली और तुरन्त फर्मान आदि तैयार करवाकर सजावलो के हाथ रवाना कर दिये[1]। शीघ्र ही सैयदो ने अपनी भूल अनुभव की होगी क्योकि अब अजीतसिंह की थट्टा मे नियुक्ति की जिम्मेदारी वादशाह की नही वल्कि सैयदो की थी। यह स्पष्ट था कि अजीतसिंह थट्टा जाने को तैयार नही होगा और उसके व सैयदो के सबध बिगड जाएगे।

अजीतसिंह का थट्टा की सूवेदारी अस्वीकार करना

जव अजीतसिंह को थट्टा की नियुक्ति के बारे मे ज्ञात हुआ तो उसने नवम्वर १७१३ के शुरू मे सैयदो को लिखा कि वह वहां जाने को तैयार नही है। उसने लिखा कि उसकी नियुक्ति के बारे मे खान-ए-जहां फैसला करे, जो उससे (अजीतसिंह) व नवाव दोनो से ही वडे है। जो वह कहेगे वह उसे स्वीकार होगा[2]।

अजीतसिंह के विरूद्ध अभियान का निर्णय

अजीतसिह के थट्टा की नियुक्ति मना करने व दरवार मे न आने से मीर जुमला, राजवहादुर आदि को यह कहने का अवसर मिल गया कि सैयद भाई अजीत सिह का पक्ष ले रहे है और उसे हर तरह से वचाने की कोशिश कर रहे है। सैयदो के लिए अव अजीतसिंह के विरुद्ध अभियान रोकना कठिन हो गया। वादशाह ने यहाँ तक कहा कि वह स्वय मारवाड जाने को तैयार है। परन्तु हुसैन अली प्रथम वख्शी था और जव उसे अजीतसिंह के विरुद्ध भेजे जाने के बारे मे कहा गया तो उसके लिये मना करना सभव नही था।

संभावनाएं

हुसेन अली के अजीतसिंह के विरुद्ध जाने मे कई सभावनाए थी। यह सभव था कि अभियान मे हुसैनअली मारा जाय। यदि वह हार जाता है तो उसके अलोचको को उसे पद से हटाने मे कोई विशेष कठिनाई नही पडेगी। हुसैन अली की धाक व प्रतिष्ठा भी मिट्टी मे मिल जाएगी। और यदि हुसैन अली अजीतसिंह पर कोई कठोर सधि ला देगा तो उसमे उन दोनो के सवध और अधिक विगड जाएगे। परन्तु वादशाह व मीर जुमला आदि ने यह नही सोचा कि अजीतसिह की थट्टा की नियुक्ति किस प्रकार हुई थी, यह कई लोगो को ज्ञात था, और इसमे कोई सन्देह नही कि इसके बारे मे अजीतसिंह को भी ज्ञात हो गया होगा। इसलिए हुसैनअली

1. जगजीवनदास–जयसिंह, 10, 16, 17 अक्टूवर 1713, ज आ।
2. जगजीवनदास–जयसिह, 13 नवम्वर 1713, ज आ।

खां के अजीतसिह के विरुद्ध जाने और उस पर कडी सधि थोपने के बावजूद भी उनके संबध बिगडने के स्थान पर और घनिष्ठ हो गए।

सैयद हुसैनअली का मारवाड़ अभियान

जब हुसैन अली का अजीतसिह के विरूद्ध जाना निश्चिन हो गया तो उसने पूरी तैयारी करके जाना तय किया। उसे ७०,००० सवार ५०० मन बारूद व सीसा, ५ तोपे २०० वाण व २५,०००१० रुपये दिए गए। सेना के साथ नजमुद्दीन अली खा, असदुल्ला खां, राजा राजबहादुर, राजा गोपालसिह भदौरिया आदि भेजे गए। मीरजुमला का लडका भी साथ था। इनमे से कई अफसर सैयदो के विरुद्ध थे। सेना की तैयारी से ज्ञात होता है कि अजीतसिह को दबाने का काम काफी कठिन समझा गया था[1]। इससे हम अनुमान लगा सकते है कि कुछ वर्ष पूर्व जब मेवाड, आंबेर व जोधपुर ने सम्मिलित रूप से मुगल सरकार के विरुद्ध सघर्ष किया था तो मुगलो को कितनी कठिन परिस्थिति का सामना करना पडा होगा।

जब हुसैन अली अलीवर्दी की सराय पर ही था, तो रघुनाथ भडारी समझौते के लिए बातचीत करने आया। ऐसा प्रतीत होता है कि अजीतसिंह ने गुजरात मे नियुक्ति की माग की थी और वह अस्वीकार करदी गई। हुसैन अली अजमेर होता हुआ मेडता की तरफ बढा। जब वह ७ मील चल चुका था तो अजीतसिह की ओर से भडारी व तीन अन्य अफसर समझौते के लिए बातचीत करने के लिए आए। हुसैनअली ने उन्हे अपने पास ही रोक लिया और नजरबन्द कर दिया। इसकी सूचना दरबार मे २५ मार्च १७१४ को पहुँची[2]। कुछ दिन पूर्व जब हुसैन अली खा साभर के निकट आया था तो अजीतसिह वहाँ से मेडता की ओर पीछे हट गया था। जब इसका समाचार बादशाह को मिला तो मीरजुमला व खानदोरा ने हुसैन अली पर यह आरोप लगाया कि उसने जान बूझकर अजीतसिह को बचकर भाग जाने दिया है। इस पर अब्दुल्ला खा ने कडा विरोध प्रकट किया, परन्तु बादशाह ने कहा कि जिसने अब्दुला खा से यह सब कहा, वे उसके शत्रु है[3]।

संधि

हुसैन अली के मेडता पहुँचने पर सधि की वार्ता मे कुछ प्रगति हुई। मई के शुरू मे अजीतसिह ने नन्दराम को शर्तें तय करने के लिए भेजा। फर्रूखसियर इन दिनो अजीतसिंह को हटाकर राजा इन्द्रसिह को जोधपुर की गद्दी पर बैठाने की बात सोच रहा था। अजीतसिंह को यह भी ज्ञात था कि उसे अकेले ही अपनी बुलाई

1. ज अख., 22, 25 दिसम्बर 1713, इरविन, 1, पृ. 286–87।
2. ज अख, 10 जनवरी 1714, इरविन, 1, पृ. 287–88, जगजीवनदास–जयसिंह, 25 मार्च 1714, ज. आ.।
3. जगजीवनदास–जयसिंह, 25 मार्च 1714, ज. आ।

विपत्ति से निपटना होगा। यह भी डर था कि यदि विरोध जारी रखा गया तो कोई और नई समस्या खडी हो जाएगी। इसलिए उसने अपने वडे पुत्र अभयसिंह को दरबार मे भेजने, अपनी पुत्री का डोला दिल्ली भेजने, और दरवार मे प्रस्तुत होने की आज्ञा मिलने पर उसे पूरा करने का वचन दिया। उसने थट्टा जाना भी स्वीकार किया। इस प्रकार जिस उद्देश्य से अजीतसिंह ने विद्रोह किया था, वह इस समय तो कम से कम सफल नही हो सका। अजीतसिह यह कह कर कि वह थट्टा जाने की तैयारी मे व्यस्त है, हुसैनअली से मिलने नही आया[1]।

परिणाम

इन शर्तो के बावजूद भी अजीतसिह व सैयदो मे सवध नही विगडे क्योंकि उसे ज्ञात था कि सैयद आरम्भ से ही अभियान के पक्ष मे नही थे। अभियान के वाद भी सैयदो ने अजीतसिह के प्रति अपना मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण वनाए रखा और उसे अपनी ओर कर लिया। अजीतसिह ने अपनी पुत्री का फर्रुखसियर को डोला भेजने की शर्त का वहुत बुरा माना, परन्तु इसका लाभ उठाकर उसने गुजरात की सूबेदारी प्राप्त करली।

६ जुलाई १७१४ को हुसैन अली अभयसिह के साथ दिल्ली पहुँचा। दो दिन वाद हुसैन अली ने अभयसिंह को बादशाह के समक्ष प्रस्तुत किया। अभयसिह की मसब ३०००/२००० करदी गई। अगस्त १७१४ को सूचना मिली कि अजीतसिंह थट्टा की ओर जा रहा है[2]।

सैयदो व फर्रुखसियर के संबंध और बिगड़ना, मीर जुमला को लाहौर व हुसैन अली के दक्षिण जाने के आधार पर समझौता

अगले कुछ महीनो मे सैयद अब्दुल्ला खा व हुसैनअली के फर्रुखसियर के साथ सवध और विगड़ गये। फर्रुखसियर ने मीर जुमला व खानदौरा के मार्फत शासन का कार्य चलाने का प्रयत्न किया। उसका विचार था कि सैयद असतुष्ट कर त्यागपत्र दे देगे। नवम्वर-दिसम्बर मे यह स्थिति थी कि अब्दुल्ला खा नाम मात्र का वजीर रह गया था और वजीर के सभी कार्य मीर जुमला कर रहा था। सैयद कई दिन तक अपनी हवेली मे ही रहे और उन्होने दरवार मे आना भी वद कर दिया[3]। यदि इस समय फर्रुखसियर अपने निजी सैनिको के साथ सैयदो को घेर लेता अथवा मीर जुमला के स्थान पर किसी साहसी व अनुभवी अफसर की सलाह पर काम करता तो सैयदो को वह सहज ही दवा

---

1 ज. अम्न, 14 अप्रेल, 16 मई, 1714, कामराज, पत्र 6 (ए), इरविन 1, पृ. 290, ज अख., 30 मई, 1 जून, 1714।

2. ज अख, 2, 11 अगस्त, 1714।

3. इरविन, 1, पृ. 291–96।

सकता था । परन्तु फर्रूखसियर अवसर आने पर साहसिक कदम उठाने मे घबरा जाता था । क्योकि सैयद मीर जुमला को विपत्ति की जड मानते थे इसलिए उन्होने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि मीर जुमला को शाही दरबार से दूर किसी प्रान्त मे भेज दिया जाय और साथ ही सैयद भाईयो मे से कोई एक किसी प्रान्त मे चला जाए । जब यह प्रस्ताव बादशाह व सैयदो ने स्वीकार किया तो असदुल्ला खा भी वहाँ था । सितम्बर १७१४ मे फर्रूखसियर ने दक्षिण के सूबो से निजाम को हटाकर हुसैन अली को नियुक्त करना स्वीकार कर लिया । ऐसी आशा की जाती थी कि दक्षिण से हटाये जाने के कारण निजाम के सैयदो से सबध बिगड जाए गे । दिसम्बर मे मीर जुमला को लाहौर रवाना कर दिया गया और हुसैन अली को भी छुट्टी देदी गई । परन्तु वह अप्रेल १७१५ तक अपने सूबो का कार्य भार सभालने के लिए रवाना नही हुआ[1] ।

अजीतसिंह की पुत्री का दिल्ली जाना; अजीतसिंह का गुजरात की सूबेदारी प्राप्त करना

मई १७१५ मे फर्रूखसियर ने शायस्ता खा को अजीतसिह की पुत्री को जोधपुर से लाने के लिए भेजा । जोधपुर ख्यात के अनुसार महाराजा ने भेजने मे आनाकानी की और गुजरात की सूबेदारी व मारोठ, परवतसर, बवल व केकडी परगने-माँगे। फर्रूखसियर ने ये माँगे स्वीकार करना ही ठीक समझा । सैयद भाइयो के विरुद्ध प्रयत्नो मे मीर जुमला आदि की कमजोरी स्पष्ट हो गई थी । इस कारण फर्रूखसियर को राजपूतो के समर्थन की आवश्यकता थी । अजीतसिंह को गुजरात का सूबा देकर वह १७१४ की सधि की कटुता को कम कर सकता था और उसे अपनी ओर कर सकता था । उसका ध्यान इस समय दक्षिण मे दाउद खा व हुसैन अली के बीच होने वाले सघर्ष की तरफ लगा था, और वह मारवाड मे कोई नई समस्या नही खडी करना चाहता था । इस कारण २० अप्रेल को अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी देदी गई । २५ रमजान को शायस्ता खा जोधपुर की राजकुमारी को लेकर दिल्ली आगया । अगस्त के अन्त मे अजीतसिह ने सवाई जयसिंह को लिखा कि वह शीघ्र ही गुजरात के लिए रवाना होने वाला है[2] ।

जयसिंह की मालवा में प्रथम सूबेदारी

अक्टूबर १७१३ मे जयसिह मालवा के लिए रवाना हुआ । नवम्बर, मे जब वह मार्ग मे ही था, उसे सूचना मिली कि ३०,००० मराठा नर्मदा पार करने वाले है और इसलिए वह तुरन्त उज्जेन पहुँच कर सूबे की सुरक्षा के लिए अपेक्षित प्रबंध

1. देखिये, इरविन, 1, पृ. 300–03 ।
2 ओझा, जोधपुर, 2, पृ 560–61, इरविन, 1, पृ 303–04, ज. अख., 20 अप्रेल 1715, जयसिह–अजीतसिह, 2 सितम्बर 1715, ज. आ. ।

करे। छत्रसाल बुन्देला को भी तुरन्त सूबे में पहुँचने के लिए कहा गया[1]। उज्जैन पहुँचने पर जयसिंह ने मराठों का सूबे में प्रवेश रोकने के लिए तीव्र गति से कार्यवाही की। उसने सूबे में उपद्रव मचाने वाले विभिन्न गिरोहों को भी दबाया। इनमें प्रमुख दिलेर खां अफगान, बाबूराम जाट व इनायतुल्ला खां थे जिनके साथ १५००० से २०००० तक सवार थे। उसने अहीरों को भी दबाया जिन्होंने लूटमार करके शाह मार्ग को अरक्षित बना दिया था[2]। जयसिंह के प्रयत्न अत्यधिक सफल रहे। मई १७१४ में एक पत्र में छत्रसाल ने जयसिंह को लिखा कि उनकी तत्परता के कारण मराठों को नर्मदा के इस पार आने का इरादा छोड़ना पड़ा है और यदि वे इसी भाँति तैयार व सतर्क रहे तो मराठों के नर्मदा पार करने के किसी भी प्रयत्न को विफल कर दिया जाएगा। पूर्ण सावधानी बरतने की आवश्यकता पर बल देते हुए छत्रसाल ने लिखा कि मराठा चालाक और धोखेबाज हैं[3]।

अप्रेल १७१५ में जयसिंह, बुद्धसिंह हाडा, छत्रसाल बुन्देला व आजम कुली खां ने दिलेर खां को सिरोंज के पास एक जोरदार मुठभेड़ में हरा दिया। दिलेर खां के २००० सवार काम आए। जयसिंह के भी ५०० सैनिक खेत रहे। इसी माह में उसने बरवानी के मोहनसिंह को दबाया जिसे समाप्त करने के बीदारबख्त के प्रयत्न असफल रहे थे[4]।

जयसिंह की मराठों पर बड़ी विजय

कुछ सप्ताह बाद जयसिंह ने कान्होजी भोंसले व खंडेराय दाभाडे के नेतृत्व में मराठों की २५,०००–३०,००० सेना को महेश्वर के १९ मील पूर्व पिलसुद के स्थान पर बुरी तरह खदेड़ दिया (९ मई १७१५)। इस सेना की एक टुकड़ी उज्जैन तक पहुँच गई थी। एक अन्य मराठा सेना ने दीपालपुर के आसपास का प्रदेश लूट लिया था। लड़ाई अंधेरा होने के बाद तक चलती रही। मराठे पिलसुद से हटकर ६ मील दूर तक एक पहाड़ी की आड़ में रात बिताने को रुक गए, परन्तु सवेरा होने से पहले ही जयसिंह वहाँ जा पहुँचा। थोड़ी देर की लड़ाई के बाद मराठे अपनी लूट व घायल सैनिकों को छोड़ भाग खड़े हुए। जब बादशाह को इस विजय का समाचार मिला (६ जून) तो उसने आदेश दिया कि १७ मई के वाकये में इस विजय का विशिष्ट रूप से उल्लेख किया जाय[5]।

---

1. ज. अख., 22 नवम्बर, 1713, स. क. वा पृ 64।
2. अब्दुल्ला खां–जयसिंह, फा प., 8 फरवरी, 1 अप्रेल, 1714, मुहम्मद सईद खां–जयसिंह, फा. प, 5–6 मार्च 1714, ज आ।
3. स क वा., पृ. 64।
4. ज. अख., 8, 11, 21 अप्रेल, 1715, 28 अप्रेल, वकाया, 16 रबी–उस्सानी, स. क वा., पृ 64।
5 स. क. वा., पृ. 65–67, वकाया, 17 मई व 6 जून 1715, ज. आ.।

सितम्बर मे जयसिंह ने देवलिया के पृथ्वीसिंह को जो सरकार मदसौर मे उपद्रव कर रहा था, और जिसने अपने नाम के सिक्के भी ढाले थे, पराजित किया। परन्तु इसके बाद भी पृथ्वीसिंह मुगल सरकार की अवज्ञा करता रहा[1]।

जयसिंह व सैयदो के संबध बिगड़ना

यहाँ हम उन कारणो पर विचार करेंगे जिनकी वजह से जयसिंह व सैयदो के सबध टूट गये। यद्यपि सैयद भाईयो ने आरम्भ से ही जयसिंह से मैत्रीपूर्ण सबध बनाये रखने का प्रयास किया था और उसकी मागे स्वीकार करवाने मे बडी मदद की थी परन्तु कई कारणो से उनमे तीव्र कटुता आ गई। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ से ही सैयदो व फर्रुखसियर के बीच मतभेद को देखकर जयसिंह ने खानदौरा व असदुल्ला खा के द्वारा फर्रुखसियर से सीधा सपर्क स्थापित कर लिया था। जब असदुल्ला खा के सुझाव पर जयसिंह को मालवा दिया गया तो इसके लिए उसका फर्रुखसियर के प्रति कृतज्ञ होना स्वाभाविक था। यदि फर्रुखसियर चाहता तो जयसिंह को इलाहाबाद या बुरहानपुर का सूबा भी दे सकता था, जिनके दिये जाने के बारे मे स्वय सैयद भाईयो ने सिफारिश की थी[2]। तत्कालीन पत्रो से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय नियुक्तियो के बारे मे सैयदो की बहुत कम चल रही थी और उनकी स्थिति इतनी खराब थी कि वे दरबार छोडकर दूर सूबो मे अपनी नियुक्ति चाहने लगे थे। ऐसी स्थिति मे जयसिंह ने सैयदो का अनुगामी बनना स्वीकार नही किया। वैसे भी उस जैसे योग्य, प्रतिभाशाली व महत्वाकाक्षी व्यक्ति को किसी भी मुगल अफसर का अनुगामी बनना कभी उपयुक्त प्रतीत नही होता। जैसा मिर्जा मुहम्मद लिखता है, जयसिंह पुराने समय के अफसरो की परम्परा मे बडा हुआ था जो बादशाह के उनपर कृपालु होने पर किसी दूसरे की कामना ही नही करते थे[3]।

जयसिंह द्वारा हुसैन अली की अवहेलना व हुसैन अली का बादशाह से विरोध

लगभग १७१४ के मध्य से ही जयसिंह के सैयदो के साथ सम्बन्ध बिगडने लगे थे। १७१५ के आरम्भ तक उनमे एक दूसरे के प्रति कितनी कटुता पैदा हो गई थी यह जयसिंह के २६ जनवरी के पत्र से ज्ञात होता है। जयसिंह ने महाराणा साग्राम सिंह को लिखा कि हुसैन अली जानकर अजमेर होकर दक्कन जा रहा है। यदि उसकी शरारत करने की नीयत है तो उसे लज्जित करने के लिए उन्हे तैयारी कर लेनी चाहिए[4]। जब जुलाई १७१५ मे हुसैनअली उज्जैन से गुजरा तो जयसिंह

---

1. ज. अख, 13 जुलाई, 23 सितम्बर, 1715।
2. ऊपर देखिये, पृ. ।
3 इरविन, 1, पृ 327।
4. जयसिंह-महाराणा, ड्राफ्ट खरीता, 26 जनवरी 1715, ज आ।

उसके प्रति अवहेलना प्रदर्शित करने के लिए उससे मिलने के बजाय भीलसा के चौहान ठाकुर की पुत्री से विवाह के लिए वहाँ चला गया, जबकि विवाह की तिथि तय ही नही हुई थी। हुसैन अली ने जयसिंह के इस व्यवहार का बादशाह से कड़ा विरोध किया। उसने लिखा कि यदि जयसिंह ने बादशाही हुक्म के मुताबिक किया है तो अच्छा हो कि वह (हुसैनअली) यही से वापस दिल्ली के लिए लौट पड़े, वरना कल को दाउद खा भी उसके दक्षिण मे पहुँचने पर ऐसा ही करेगा। बादशाह ने उत्तर मे लिखा कि हुसैनअली को अपनी सेना से जयसिंह को बर्खास्त करने का पूर्ण अधिकार है और दाउद खा के ऐसा करने की कोई संभावना नही है[1]। फर्रुखसियर जानता था कि हुसैनअली जयसिंह के विरुद्ध ऐसा कोई कदम नही उठाएगा जिससे संघर्ष भड़क उठे।

फर्रुखसियर का जयसिंह को दिल्ली बुलाना

जून १७१५ मे निजाम के दक्षिण से आने के बाद फर्रुखसियर ने सैयदो के विरूद्ध अपनी गतिविधिया तेज कर दी। परन्तु निजाम की बादशाह के कृपापात्रो से नही बनी और शीघ्र ही उसने अपने आप को बादशाह के प्रयत्नो से अलग कर लिया। २८ सितम्बर को फर्रुखसियर को दाउद खा के हुसैनअली के विरुद्ध लड़ते हुए मारे जाने का समाचार मिला। इससे बादशाह को बड़ी निराशा हुई क्योकि उसका अनुमान था कि हुसैनअली शायद युद्ध मे मारा जाय। कुछ दिन पूर्व उसने जयसिंह को दरबार मे आने के लिए लिखा था। यद्यपि हुसैन अली ने मराठो के आक्रमण की आशका का कारण बताते हुए जयसिंह को मालवा मे ही रहने के लिए लिखा, परन्तु उसने इस पर कोई ध्यान नही दिया और आमेर होता हुआ वह मई के अन्त मे दिल्ली पहुँच गया[2]। जब वह दिल्ली से कुछ दूर था तो अब्दूल्ला खा का भाई नजमुद्दीन अली खा व राजा रतनचद मिलने आये। ईदगाह पहुँचने पर खानदौरा ने उसका स्वागत किया और फिर वे दोनो दरबार मे आए। १७१० के बाद जयसिंह पहली बार ही दरबार मे आया था। फर्रुखसियर उससे बहुत ही अनुकूल भाव से मिला और उसके पद मे १००० की वृद्धि की गई तथा हाथी, घोड़ा, खिल्लत आदि दिये गए। सितम्बर के महीने मे जयसिंह को चूड़ामण जाट के विरुद्ध अभियान की कमान देदी गई[3]।

जयसिंह का महाराव बुद्धसिंह को बूंदी वापस दिलवाना

जाटो के विरुद्ध जाने से पहले जयसिंह ने बूंदी का राज्य महाराव बुद्धसिंह

---

1. वंशभास्कर, 4 पृ. 3051–52, मा. उ (अनुवाद), 1, प. 632, ज अख, 19 जुलाई 1715।
2. इरविन, 1, पृ 303, स क. वा, पृ 68, ज अख., 16 मार्च 1716।
3. खानदौरा–जयसिंह, फा प (1716), जयसिंह–महाराणा, ड्राफ्ट खरीता, 28 मई 1716, ज. आ.।

को वापस दिलवा दिया। जाजव के युद्ध के वाद कोटा का राज्य भी बुद्धसिह को दे दिया गया था परन्तु उसके कोटा लेने के दो प्रयत्न असफल होने के वाद वहादुर शाह ने कोटा रामसिह हाडा के पुत्र भीमसिंह को लौटा दिया था। इसके कुछ समय वाद ही बुद्धसिह छुट्टी लेकर बू दी आगया। लगभग इसी समय उसने कौलमत स्वीकार कर लिया था और अव वह रात दिन इस मत की उपासना-विधियो मे लिप्त रहने लगा था। फर्रु खसियर के गद्दी पर बैठने के कई महिने वाद तक भी (मई १७१३) न तो वह स्वय दरबार मे आया और न ही उसने नजर व मुवारकवादी के पत्र आदि भेजे[1]। परन्तु कोटा का भीमसिह २८ अगस्त १७१३ को दरवार मे प्रस्तुत हुआ और अगले माह मे उसे महाराव का पद मिल गया। उसे मउमदाना भी वापस लौटा दिया गया जो अवतक बू दी के पास था[2]। इस पर बुद्धसिह ने कोटा पर आक्रमण कर दिया। जब उसने आक्रमण रोकने के शाही आदेश की अवहेलना की तो फर्रु खसियर ने उसकी मनव रद्ध करदी (१२ दिसम्वर) और भीमसिह को वू दी जीत लेने की अनुमति देदी[3]।

अपना राज्य खोने के वाद बुद्धसिह ने जयसिह के साथ मालवा मे दिलेर खां (अप्रेल १७१५) व मराठो के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही मे भाग लिया। जयसिह ने बुद्धसिह को उसका राज्य लौटाने के लिए पहले तो महाराणा द्वारा महाराव भीमसिह पर दवाव डलवाया, परन्तु जव भीमसिह का वू दी वापस करने का कोई इरादा दिखाई नही दिया तो जयसिंह ने वादशाह फर्रु खसियर से सीधे वातचीत की। जयसिह ने आश्वासन दिया कि भविष्य मे महाराव बुद्धसिह से शाही सेवा करने मे कोई त्रुटि नही होगी[4]। इस समय फर्रु खसियर को सैयदो के विरुद्ध हर सभव सहायता की आवश्यकता थी। जयसिह व बुद्धसिह के घनिष्ट सवध थे। इस कारण जयसिंह के कहने पर वू दी पुन. बुद्धसिह को देना वादशाह ने अपने ही हित मे समझा। बुद्धसिह को वू दी लौटाए जाने पर महाराणा ने वहुत सतोप व्यक्त किया और जयसिह को लिखे पत्र मे उसकी प्रशसा की। सितम्वर १७१६ मे बुद्ध-सिंह को जयसिह के साथ जाटो के विरुद्ध जाने का आदेश मिला[5]।

---

1. वंशभास्कर, 4, पृ 2998–3022, 3026 आदि, ज. अख., 5 जमादि अव्वल।
2. ज. अख, 12 सितम्वर 1713, कोटा कागजात, 1713, रा. आ।
3 ज. अख., 12 दिसम्वर, 1713, वशभास्कर, 4, पृ 3040–43।
4 वशभास्कर, 4, पृ 3042–43, 3047–48, 3052–53, 3054–59, शर्मा, कोटा, 1, पृ 264–66।
5 जयसिह-महाराणा, ड्राफ्ट खरीता, 19 दिसम्वर 1715, अजीतसिह को 1 जुलाई 1716 के पत्र मे जयसिंह ने महाराव बुद्धसिंह को वू दी दिलवाने का उल्लेख किया। ज अख., 13 अगस्त 1707 भी देखिये।

जयसिंह का प्रथम जाट अभियान

चूड़ामण जाट, उसके विरुद्ध अभियान के कारण

चम्बल तक फैले दिल्ली और आगरा के बीच जमुना के दक्षिण के प्रदेश के जाटो को १६६६–१७०७ के बीच मुगल सरकार द्वारा दबाने के अनेक प्रयत्न असफल रहे थे। औरगजेब की मृत्यु के बाद उनकी शक्ति और अधिक बढ गई थी। सिनसिनी के भज्जा जाट के पुत्र चूडामण के योग्य नेतृत्व मे जाटो का राजनीतिक शक्ति के रूप मे विकास आरम्भ हुआ था। जाजव के युद्ध मे अत्यधिक लूट हाथ मे आने से उसकी शक्ति पहले की अपेक्षा बहुत बढ गई। यद्यपि अगस्त १७०७ में उसके विरुद्ध सेना भेजनी पडी, परन्तु १५ सितम्बर को चूडामण स्वय बादशाह के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने नजर व पेशकश भेट की। बादशाह ने उसे १५००–५०० का मंसब दिया। नवम्बर १७०८ मे वह रिजाबहादुर के साथ कामा के जमीदार अजीतसिह के विरुद्ध गया। इस अवसर पर उसकी सेवा के उपलक्ष मे उसे इनाम दिये गये व उसकी मसब मे भी वृद्धि की गई[1]।

जैसा हम देख चुके है, राजपूतो के मुगल सरकार के विरुद्ध सघर्ष मे चूडामण ने राजपूतो के विरुद्ध किसी अभियान मे हिस्सा नही लिया था यद्यपि कुछ समय के लिए वह सैयद हुसैन खॉ के साथ हो गया था जब वह आंबेर की तरफ बढ रहा था। जुलाई १७११ मे उसे एक इकारनामे पर हस्ताक्षर करने पडे जिसमे उसने अपने भाई रतिराम द्वारा थूण मे बनाए जा रहे किले को गिरवा देने का वचन दिया था[2]। लाहौर मे लडे गये उत्तराधिकार के युद्ध के बाद वह सिनसिनी आ गया। कुछ महीने बाद वह जहादारशाह के बुलाने पर दरबार पहुँचा। परन्तु युद्ध मे जहादारशाह की मदद करने के बजाय उसने बादशाह के शिविर पर आक्रमण कर दिया और सेना मे अव्यवस्था फैला दी[3]। सितम्बर १७१३ मे वह २००० सवारो के साथ फर्रुखसियर के समक्ष उपस्थित हुआ (२४ सितम्बर)। अगले माह मे उसे राव की उपाधि प्रदान की गई और उसका मसब भी बढा दिया गया[4]। उसे चम्बल व देहली के बीच मार्ग की सुरक्षा का काम दिया गया। परन्तु शीघ्र ही राहगीरो व उस प्रदेश के जागीरदारो के साथ उसकी सख्ती की शिकायते दरबार मे पहुँचने लगी। अक्टूबर–नवम्बर मे उसने दुल्हारा आदि गाँवो को लूट लिया और साहर परगने के जमीदारो को शाही मसबदारो को लगान न देने के लिए उकसाया। उसके बारे मे यह भी खबर पहुँची कि वह थूण परगने के सभी मसबदारो

1. इरविन, 1, पृ. 322–23।
2. ज अख, 24 जुलाई 1711।
3 ज. अख., 2 दिसम्बर, 1712, इरविन, 1, पृ. 234।
4 ज अख., 20, 24 सितम्बर, 20 अक्टूबर 1713।

व जमीदारो से दो रुपये नजराने के वसूल कर रहा है। मार्च १७१८ मे उसने मेवात के फौजदार का, जो वहाँ व्यवस्था स्थापित करने जा रहा था, विरोध किया। कुछ दिन बाद उसने मौजा दुल्हारा लूट लिया। इस बात की भी आशका थी कि वह फतहपुर सीकरी पर न टूट पडे[1]।

इन सब कारणो से चूडामण के विरुद्ध कार्यवाही करना आवश्यक हो गया। कछवाहो के लिये यह स्वाभाविक था कि वे अपने निकट पूर्व मे जाटो की इस बढती हुई उपद्रवकारी शक्ति को रोकना चाहते। फिर केवल इसी दिशा मे कछवाहा अपने राज्य-विस्तार की सोच सकते थे और इस प्रदेश के कई परगनो को व अपने राज्य मे मिलाना भी चाहते थे। हम यह देख चुके है कि जयसिह के पिता बिशन सिह ने जाटो के विरुद्ध उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की थी और उनके अनेक किलो को जीता था। हाल ही मे जयसिह ने मालवा मे पठानो, मराठो व अन्य उपद्रवी तत्वो के विरुद्ध बडी तत्परता दिखाई थी। जाटो के विरुद्ध अभियान का सचालन करने के लिए जयसिह की नियुक्ति के यही सब कारण थे।

जयसिह के जाट अभियान का वृत्तान्त

अभियान की तैयारी करने के बाद १५ सितम्बर, १७१६ को जयसिह मथुरा के लिए रवाना हुआ। अभियान के खर्चे के लिए उसे चालीस लाख रुपये दिये गये थे। जो मसबदार उसकी सेना मे नियुक्त किये गये थे उनमे महाराव बुद्धसिह, कोटा का महाराव भीमसिह, नरवर का राजा गजसिह, राव इन्द्रसिह, बायाजिद खा मेवाती व दुर्गादास राठौड भी थे। अक्टूबर के आखरी सप्ताह मे वह डीग के २० मील की दूरी पर आ पहुँचा। क्योकि महाराव बुद्धसिह व दुर्गादास अभी नही आए थे, इसलिए उनको तुरन्त आने के लिए पत्र भेजे गये[2]। यद्यपि बुद्धसिह तो कुछ सप्ताह बाद आ गया परन्तु दुर्गादास, सभवत बीमारी की वजह से नही आ सका और उसने अपने लडके को भेज दिया, जिसका ४ जून १७१७ के अखबारात मे उल्लेख है[3]।

जब जयसिह रावाकुड के निकट आया तो चूडामण के भतीजे बदनसिह ने कामा (डीग के १४ मील उत्तर) से २००० सवारो के साथ निकल कर उसकी सेना

1 कानूनगो, पृ 51, ज अख., 16 अक्टूबर, 2 नवम्बर 1715, 16, 19 मार्च व 4 अक्टूबर 1716।

2 शिवदास 11 (बी)-12 (ए), ज अख. 20, 27 सितम्बर, 1 नवम्बर, 18 अक्टूबर 1716, दरबिन, 1, पृ. 324, कार्तिक वदि [?], स 1773 के पत्र मे जयसिह ने अजीतसिह को लिखा कि बादशाही हुक्म के अनुसार वह मथुरा के लिए रवाना हो रहा है जहा से वह जाटो के विरुद्ध जाएगा।

3. ज अख., 4 जून, 1717, वश भास्कर, 4, पृ 3060।

के अग्रिम भाग पर, जो बायाजिद खा के नेतृत्व मे था, आक्रमण किया। परन्तु मुख्य सेना के आने पर उसे पीछे हटना पडा और जयसिह ने कामा पर अधिकार कर लिया (१४ अक्टूबर)। यहाँ से थूण १२ कोस पर था[1]। अगले २ सप्ताह थूण को घेरने के लिए आवश्यक तैयारी करने से व्यतीत हुए। नवम्बर के शुरू मे जब जयसिह की सेना थूण के निकट आई तो चूडामण के भतीजे रूपा मे २००० सवारो के साथ आक्रमण किया। इस आक्रमण मे रूपा घायल हो गया और उसका भाई अनीराम मारा गया[2]।

थूण

९ नवम्बर से थूण का घेरा आरम्भ हुआ, खाईया खोदी जाने लगी, और सलामत कच्चे व साबाते बनाई जाने लगी। तोपो को ऊँचाई पर लगाया गया। परन्तु जाटों के अचानक आक्रमणो के कारण इस काम मे बडी रुकावट पडी। चूडामण को आसपास के जमीदारो से पूरी सहायता मिल रही थी। चारो ओर के घने जगलो का लाभ उठाकर जाट रसद के काफिलो को लूट लेते और घास-चारा लाने वालो को मार देते। चूडामण ने काफी सख्या मे मेवातियो तथा शाहजहापुर व बरेली के अफगानो को भी भर्ती कर लिया था जिन्हे वह प्रति दिन तीन रुपये प्रति सैनिक देता था। जाट अपने किलो व गाढियो की रक्षा के लिए उसी योग्यता व दिलेरी से लडे जिसने होलकर को १७५४ व लार्डलेक को १८०४ मे आश्चर्यचकित किया था। इन कारणो से पूर्ण घेरे के बावजूद भी सफलता दूर ही प्रतीत होती थी। मार्च १७१७ के फर्मान मे बादशाह ने इस धीमी प्रगति पर चिन्ता प्रकट की। वर्षा शुरू होने के पहले जयसिह ने दिल्ली से और तोपे व गोला बारूद मगवाया।[3] परन्तु उस साल वर्षा न होने से भारी अकाल पडा और चारा नाम को भी नही हुआ। जयसिह को अपनी बडी सेना की आवश्यकता के लिए पश्चिमी क्षेत्रो से भारी कीमत देकर अनाज व चारा मगाना पडा[4]।

जयसिंह को मालवा की सूबेदारी से मुक्त कर मुहम्मद अमीन खां को नियुक्त करना

इसी बीच मालवे मे, जयसिह की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर मराठो ने बडे पैमाने पर धावे किए और दीपालपुर, धर्मपुरी आदि अनेक कस्बो को लूट लिया। एक मराठा सेना उज्जेन के निकट तक आ पहुँची। परन्तु जयसिह के नायब रूप-

1 ज अख., 16–18 अक्टूबर, 20–27 अक्टूबर, 1716।
2. ज. अख , 19 अक्टूबर, 9 नवम्बर, 21 नवम्बर, 1716।
3 वकाया 19, 28, जून 1717, शिवदास, 13 (बी), पार्टीज, 124, मई–जून 1717 के अखबारात, इरविन, 1, पृ 325, कानूनगो, पृ. 52, ज अख., 9–10, 13 दिसम्बर 1717, वकाया, 8 मई, 9 जून, 1717।
4. शिवदास, 13 (बी), इरविन प 326, फरमान, अक्टूबर 1717, राजा कुवरपाल (करौली) जयसिह, 11 नवम्बर, 1717, ज, आ.।

राम धाभाई को तैयार पाकर वापस लौट गई (मार्च-अप्रेल १७१६) दशहरे के बाद ४०, ००० मराठो की सेना के आक्रमण की आशका के कारण, जयसिह महाराणा व छत्रसाल का रूपराम को सहायता भेजने के लिए कहा गया। अप्रेल १७१७ मे एक बडी मराठा सेना ने रूपराम को हरा दिया और सूबे की सेना को नष्ट कर दिया[1]। मराठे रूपराम को पकड कर ले गये और बाद मे रुपया मिलने पर उसे छोडा। उधर थूण के घेरे की समाप्ति के कोई स्पष्ट आसार नही दीख रहे थे। ऐसी परिस्थिति मे फर्रूखसियर ने मुहम्मद अमीन खा को मालवे का सूबेदार नियुक्त कर दिया (नवम्बर १७१७)। मुहम्मद अमीन खा को वहाँ नियुक्त करने का एक कारण फर्रूखसियर का यह विश्वास था कि यदि सैयद हुसैन अली ने दक्षिण से आने का प्रयास किया तो अमीन खा उसे रोक सकेगा। यह ठीक है कि जयसिह के जाटो के विरुद्ध व्यस्त रहने के कारण मालवे मे मराठो का दबाव बढ गया था परन्तु जयसिह को मालवे से हटाकर मुहम्मद अमीन खा को नियुक्त करना हानिकारक सिद्ध हुआ। एक तो मालवा का सूबा जयसिह से लेलेने से उसके साधनो पर ऐसे समय असर पडा जबकि वह थूण को लेने के प्रयत्न मे भारी मात्रा मे धन, अनाज आदि अपने पास से खर्च कर रहा था। दूसरे, जब हुसैन अली बिना बादशाह की आज्ञा के दक्षिण से दिल्ली की ओर बढा तो मुहम्मद अमीन खा ने उसे रोकने का कोई प्रयत्न नही किया। वह बिना आज्ञा के दिल्ली भाग आया। फर्रूखसियर ने उसके मसब व जागीर भी छीन लिए, जो अब्दुल्ला खा ने कुछ समय बाद उसे वापस दिलवा दिये।[2]

जयसिंह की बादशाह से सैयदो के विरुद्ध शिकायत, अब्दुल्ला खां का जाट अभियान समाप्त करने पर ज़ोर

जनवरी १७१८ मे जयसिह ने बादशाह के पास यह शिकायत भेजी कि यद्यपि चूडामण को अच्छी तरह दबा रखा है तथापि दरबार के कुछ प्रमुख अफसरो का उसे समर्थन मिलने के कारण वह हार नही मान रहा है। यह आरोप सही था क्योकि चूडामण ने २० लाख रुपये सैयद अब्दुल्ला खा को भेट देने व सरकार को ३० लाख रुपये पेशकश देने का प्रस्ताव अब्दुल्ला खा के पास भेजा था। उसने दरबार मे प्रस्तुत होने का वादा भी किया। अब्दुल्ला खा ने तब बादशाह से घेरा उठवाने पर जोर दिया। उसने कहा कि घेरा २० महीने चल चुका है और लाखो रुपये खर्च किये जा चुके है। जब चूडामण अपने लडको व भतीजो के साथ शाही दरबार मे आने को तैयार है तो युद्ध जारी रखने से क्या लाभ है[3]। सधि की शर्तो मे जब

1. रूपराम-जयसिह, 8 मार्च ज. आ., स क. वा, पृ., 69-71।
2 स क. वा, पृ. 69-71, इरविन, 1, पृ. 366-67।
3. शिवदास, 14 (बी) खफीखा, 2, पृ 777, इरविन, 1, 326-27।

यह भी शामिल किया गया कि थूण व डीग की किलेबंदी तोड़ दी जाएगी, और भविष्य मे उनकी मरम्मत नही कराई जाएगी, तथा चूड़ामण अपने पुत्रो व भतीजो के साथ आगरा सूबे मे शाही नौकरी करेगा, तो बादशाह ने इन शर्तों पर चूड़ामण को क्षमा करना ही उचित समझा। उसके सैयदो के साथ सबंधो मे कोई सुधार नही हुआ था और जयसिंह को एक बड़ी सेना के साथ जाटो के विरुद्ध और अधिक अटकाए रखना ठीक नही था। इसलिए फर्रुखसियर ने जयसिंह को इन शर्तों के बारे मे सूचित कर लौट आने के लिये लिख दिया। बादशाह ने लिखा कि जब चूड़ामण महाराजा के पास आए तो वह उसे एक खिल्लत प्रदान करे। यद्यपि जयसिंह घेरा नही उठाना चाहता था और उसे आशा थी कि किला कुछ दिनो मे अवश्य ले लिया जाएगा परन्तु बादशाह का फर्मान मिलने पर उसने लड़ाई बन्द करदी, और घेरा उठा लिया[1]।

फर्रुखसियर की चूड़ामण से अप्रसन्नता

३१ मार्च १७१८ को खानजहा चूड़ामण व रूपा के साथ दिल्ली पहुँचा। परन्तु वह सीधा अब्दुल्ला खा से जाकर मिला। यह बात फर्रुखसियर को बहुत बुरी लगी। नौ दिन बाद जब वह अब्दुल्ला खा के साथ दरबार मे आया तो फर्रुखसियर उससे बड़ी रुखाई से मिला और उसने दुबारा उससे मिलने से इन्कार कर दिया[2]।

जयसिंह का स्वागत

जयसिंह १६ मई को देहली पहुँचा। फर्रुखसियर उससे बहुत स्नेहपूर्वक मिला। पाँच दिन बाद उसे शाहीमरातिब दिया गया। २३ जून को वह बादशाह से एकान्त मे मिला। उसी दिन अब्दुल्ला खा उससे मिलने आया और उसे एक करार भेट की। परन्तु इन सब दिखावे की बातो से उनकी एक दूसरे के प्रति दुर्भावना मे कोई कमी नही हुई[3]।

सरबुलन्द खां व निजाम का सैयदो की ओर चले जाना

जुलाई १७१८ मे जब सरबुलन्द खा देहली आया तो बादशाह ने उसे सैयदो को हटाने हेतु किये जा रहे प्रयत्नो का नेतृत्व करने को कहा। परन्तु जब सरबुलन्द खा को यह ज्ञात हुआ कि अब्दुल्ला खा के पतन के बाद बादशाह का कृपापात्र मुहम्मद मुराद वजीर बनेगा तो उसने अपने प्रयत्नो मे ढील डालदी। वह अब्दुल्ला खा की इस धमकी से भी डर गया कि वे सघर्ष मे पीछे नही हटेगे और

---

1 फर्मान, मार्च 1718 व फर्मान कपटद्वारा न. 185, ज आ, शिवदास, 15 (ए), इरविन, 1, पृ 326।

2. इरविन, 1, पृ. 327।

3. द कौ., न 18, महाराणा–जयसिंह, 27 जून 1718, ज. आ.।

इसका अन्तिम फैसला करके रहेंगे।[1] इसके बाद फर्रूखसियर ने निजाम को बुलाया जो सैयदो से घृणा करता था और जो दक्षिण से हटाये जाने के कारण उनसे क्रुद्ध था जैसा हम देख चुके है, उसकी बादशाह व उसके कृपापात्रो से नही बनी। अन्त मे बादशाह ने उसकी कोरी बातो से तंग आकर उससे मुरादाबाद लेकर मुहम्मद मुराद को दे दिया अब्दुल्ला खा ने सरबुलन्द खा व निजाम को क्रमशः काबुल और मालवे के सूबे दिलवाने के आश्वासन देकर अपनी ओर कर लिया[2]। कुछ दिन बाद जब मुहम्मद अमीन खा को बिना आज्ञा के मालवा से दिल्ली चले आने पर जनवरी १७१९ मे बर्खास्त कर दिया गया तो अब्दुल्ला खा ने उसकी भी सिफारिश करके उसके मसब व पद पुन' बहाल करवा दिये। अगले माह मे जब सैयदो व फर्रूखसियर मे तनाव पराकाष्ठा पर पहुँच गया तो मुहम्मद अमीन खा ने सैयदो से फर्रूखसियर को तुरन्त हटा देने का आग्रह किया।

जिज़िया पुन' लगाया जाना; फर्रूख़सियर का महाराणा को इस बारे मे पत्र

इसके पूर्व अप्रेल १७१७ मे फर्रूखसियर ने इनायतुल्ला खा के कहने पर, जो जनवरी मे मक्का से लौटकर आया था, और खालसा व तन का दीवान नियुक्त किया गया था, जिजिया पुनः लगा दिया। यह घृणित कर जनवरी १७१३ मे बद किया गया था। फर्रूखसियर ने सभवत यह कदम कट्टर मुसलमान वर्ग विशेष कर उलेमा वर्ग, को संतुष्ट करने के लिए उठाया था जिससे सैयदो की हिन्दुओ के प्रति उदारता व मैत्रीपूर्ण नीति मुसलमानो की निगाह मे बुरी समझी जाय और वे बादशाह का समर्थन करे। परन्तु फर्रूखसियर इस कर को लगाने के राजनीतिक परिणामो से परिचित था। उसने महाराणा व जयसिंह को विशेष पत्र लिख कर इस कर को लगाने की उसकी कानूनी लाचारी पर बल दिया और आशा व्यक्त की कि इससे उनके घनिष्ठ व सद्भावनापूर्ण सबधो पर कोई असर नही पडेगा[3]। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कर केवल नाम मात्र के ही लिए लगा रहा क्योकि वसूली की प्रक्रिया का तत्कालीन पत्रो मे कही उल्लेख नही मिलता है।

अजीतसिंह का गुजरात के सूबे से हटाया जाना

आगे का वृत्तान्त देने से पूर्व अजीतसिह के मई-जून १७१७ मे गुजरात के सूबे से हटाये जाने का उल्लेख कर देना उचित होगा। वैसे तो अजीतसिह को वहाँ

1. इरविन, 1, पृ 345–47।
2. इरविन, 1, पृ. 351–52, पार्टीज, पृ. 134–37।
3 इरविन, 1, पृ 259, 233–34, फर्रूखसियर का फर्मान महाराणा के नाम, देखिये वीर विनोद, 2, पृ. 954–55।

से हटाने का कारण उसका सूबे मे खराब एव आतंकपूर्ण शासन बताया गया[1] परन्तु एक दूसरा कारण संभवतः यह भी था कि अजीतसिह सैयदो के पक्ष का था और उसे हटाकर किसी ऐसे व्यक्ति की गुजरात मे नियुक्ति करने की आवश्यकता थी जो सैयद हुसैन अली के दक्षिण से आने का मार्ग बन्द करदे। इसलिए खान-दौरा को वहाँ सूबेदार नियुक्त किया गया। हम यह देख चुके है कि मुहम्मद अमीन खा के भी मालवा मे नियुक्त किये जाने का यह एक प्रमुख कारण था। जब अजीत-सिंह १७१८ मे दिल्ली आया तो फर्रूखसियर ने उसे अपनी ओर करने के लिए हर सभव प्रयत्न किया। उसे माहीमरातिब, राजराजेश्वर का खिताब, व दिवान-ए-खास मे बैठने की अनुमति दी गई। यहाँ तक कि गुजरात का सूबा भी, जिसके लिए जाने से वह बहुत नाराज था, उसको वापस लौटा दिया गया[2]। परन्तु अजीतसिह सैयदो की तरफ ही रहा और इसे उसने छिपाने का प्रयास भी नही किया। अजीतसिह को परख लेने के बाद ही फर्रूखसियर ने निजाम को बुलवाया, जिसके बारे मे हम पहले लिख चुके है।

मीर जुमला का दिल्ली आना; अब्दुल्ला खां द्वारा हुसैन अली को दक्षिण से बुलाना

इसी बीच अपने आश्वासनो के विरुद्ध, फर्रूखसियर ने लाहौर से मीर जुमला को दिल्ली आने को लिखा। जब अब्दुल्ला खां ने इसका विरोध किया तो बादशाह ने मीर जुमला को मार्ग से ही लौट जाने को लिखा। परन्तु मीर जुमला इस आज्ञा की अवहेलना कर १९ सितम्बर को दिल्ली आ पहुँचा। उसी दिन अब्दुल्ला खा ने हुसैन अली को दक्षिण से तुरन्त चले आने को लिखा। अपने पत्र मे उसने बादशाह पर लगातार षडयत्र करने का आरोप लगाया। उसने जयसिह के जाट अभियान रुकवाने, से तनाव बढने व उसकी (अब्दुल्ला खा) हत्या के प्रयत्नो का भी उल्लेख किया[3]।

हुसैन अली का मराठों के साथ दिल्ली पहुँचना

अपने भाई का पत्र मिलने पर हुसैन अली अपने ८,०००–९,००० सवारो व बालाजी विश्वनाथ पेशवा के नेतृत्व मे ११,०००–१२,००० मराठो के साथ अक्टूबर, १७१८ के शुरू मे औरगाबाद से चल पडा। उसने अपने आने के दो कारण लिखे। एक तो उसकी मराठो के साथ की गई हाल की सधि की स्वीकृति बादशाह से

1. जयसिंह के नाम फर्मान, 5 मई 1717, ज आ।
2. महाराणा–अजीतसिंह, 21 नवम्बर 1718, जो आ., ईश्वरसिंह तेजसिह (जैसलमेर से)–अजीतसिह, 27 फरवरी 1719, जो. आ., तत्कालीन पत्रों मे अजीतसिह को बीकानेर दिये जाने का कही उल्लेख नही है परन्तु इरविन ने (1, पृ 351) उल्लेख किया है।
3 इरविन, 1, पृ. 352–53।

प्राप्त करना, और दूसरे शाहजादा अकबर के पुत्र को बादशाह को सौपना। उसने लिखा कि इस काम के लिए वह किसी दूसरे पर भरोसा नही कर सकता और इसलिए वह स्वयं शहजादे को लेकर आ रहा है। हुसैन अली ने मराठो से जो सधि की थी, उसके अनुसार उन्हे दक्षिण के सूबो से चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने तथा स्वराज्य व खानदेश, बरार, गौड्वाना, हैदराबाद व कर्नाटक मे नव विजित प्रदेशो पर मुगल सरकार द्वारा उनका अधिकार स्वीकार किये जाने की व्यवस्था थी। मराठे इसके बदले मे १५,००० सैनिक दक्षिण के सूबेदार के पास रखने व सरदेशमुखी वसूल करने के अधिकार के एवज मे दक्षिण के सूबो मे शान्ति व व्यवस्था बनाये रखने के लिए तैयार हो गए थे। इनके अलावा राजा शाहू ने मुगल सरकार को दस लाख रुपया वार्षिक पेशकश देना स्वीकार किया। यह भी तय हुआ था कि राजा शाहू की मा, पत्नी और भाई जो मुगलो के पास १६८९ से नजरबन्द थे, रिहा कर दिये जाएंगे[1]।

फर्रूखसियर हुसैन अली के दक्षिण से दिल्ली के लिए रवाना होने का समाचार सुनकर बडा चिन्तित हुआ। यह स्पष्ट था कि हुसैन अली ३५,००० सवार व तोपो के साथ बादशाह व सैयदो के अन्य विरोधियो से निपटने के लिए आ रहा है। यद्यपि बादशाह ने इखलास खा को भेजकर हुसैन अली को वापस दक्षिण लौटने के लिए कहलाया परन्तु इसकी उसने तनिक भी परवाह नही की और वह दिल्ली की ओर बढता गया[2]।

बादशाह का सैयदों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न

इस स्थिति मे फर्रूखसियर ने सैयदो को संतुष्ट करने का प्रयत्न किया। दिसम्बर १७१८ मे वह स्वय अब्दुल्ला खा के यहाँ गया और कई नियुक्तियो के लिए अब्दुल्ला खा की इच्छानुसार स्वीकृति देदी[3]। बादशाह के आग्रह पर जयसिह भी अब्दुल्ला खा से मिलने गया (३० दिसम्बर)। अब्दुल्ला खा उससे आदरपूर्वक मिला और उसे कई भेट दी। ४ जनवरी १७१९ को अब्दुल्ला खा जयसिह से मिलने आया। एक सप्ताह बाद वह राजा रतनचद के साथ जयसिंह से दुबारा मिलने आया। परन्तु इन सबसे उनके आपस के सबध केवल ऊपरी तौर से ही सुधरे[4]।

---

1. वही, पृ 357–59, डफ, 1, पृ. 368–69, संधि की शर्तों के लिए देखिये इरविन, 1, पृ. 357–60, ए जी. पंवार का लेखे सम ओरीजिनल डाकूमेन्ट्स आफ मुगल–मराठा रिलेशन्स, आई. एच. आर. सी. पी 1940, पृ. 204–12; डफ 1, पृ. 368–69, खफीखा, 784–85, सरदेसाई, 2, पृ. 41, संधि की तीव्र .आलोचना के लिए मा उ. (अनुवाद), 1, पृ 633।
2. इरविन, 1, पृ 360–61।
3. इरविन, 1, पृ 362–64।
4. इरविन, 1, पृ 365, द. कौ, 19, पृ. 427।

सैयदों का जयसिंह को दिल्ली से बाहर भिजवाना

६ फरवरी को हुसैनअली दिल्ली के पास तक आ पहुँचा। सवाई जयसिंह के इलाके से जब उसकी सेना निकली तो उसके सैनिको ने खेतो व गावो को नष्ट कर दिया। यहाँ तक कि मार्ग के गांवो के स्त्री बच्चो तक को नही छोड़ा[1]। हुसैन-अली के दिल्ली के निकट पहुँचने के कुछ दिन बाद अब्दुल्ला खां ने फर्रुखसियर से यह अनुरोध किया कि वह जयसिंह को अपने वतन जाने के लिए कहदे। इस समय जयसिंह के पास २०,००० सैनिक थे। अब्दुल्ला खा ने कहा कि जयसिंह के सैनिकों व अब्दुल्ला खा के सिपाहियो व मराठों मे झड़प हो जाने का डर है। हुसैनअली ने बालाजी को जयसिंह के पास भेजा और उसे आंबेर चले जाने को कहा। जयसिंह ने बालाजी को गोलमाल सा आश्वासन देकर हुसैन अली के सदेश का सारांश फर्रु-खसियर तक पहुँचा दिया। परन्तु फर्रुखसियर हुसैन अली के ३५,००० सैनिको के दिल्ली के निकट व अब्दुल्ला खां के २०,००० सैनिको के दिल्ली मे तैयार रहने की स्थिति मे झगड़ा बढाना नहीं चाहता था। इसलिए उसने जयसिंह के पास खास अपने दस्तखतो का पत्र भेजा जिसमे उसे छुट्टी की प्रतिज्ञा किये बिना तुरन्त आंबेर चले जाने को लिखा था[2]।

जयसिंह का बादशाह से अनुरोध

पत्र मिलने पर जयसिंह ने बादशाह से दिल्ली से जाने के हुक्म को वापस लेने का अनुरोध किया। उसने लिखा कि यह सैयदो की चाल है। वे चाहते है कि वह (जयसिंह) बादशाह से अलग हो जाए। उसने लिखा कि उसके २०,००० सैनिको पर उसे पूरा भरोसा है और वे अन्त तक बादशाह के लिए लड़ेंगे। उसने फर्रुखसियर से अपने निजी सैनिको के साथ किले से बाहर निकल कर सैयदो पर टूट पड़ने की राय दी। उसको विश्वास था कि जैसे ही लोग बादशाह को खुलकर व दिलेरी से दुश्मन के विरुद्ध कार्यवाही करते देखेंगे तो उनके बहुत से समर्थक उनका साथ छोड़ कर बादशाह के झण्डे के नीचे आ जाएँगे और सैयदो की ताकत, जो अभी बहुत दिखाई देती है, पल भर मे धूल मे मिली, दिखाई देगी। उसने अपनी ओर से अन्तिम सांस तक लड़ने का आश्वासन दिया। परन्तु हमेशा की तरह फर्रु-खसियर कोई साहसिक कदम नहीं उठा सका[3]।

---

1 इर्विन, 1, पृ 373, 369, सीयर, 1, पृ 116-27।

2 शिवदास, 23, सीयर (अनुवाद), 1, पृ 138 बालाजी के भेजने के बारे मे देखिये जय- [illegible] पत्र ([illegible] 9-10, नं. 1775), डफ, 1, 323 नोट, [illegible] (1, पृ 393, ... इर्विन मे लिए थे।

3 शिवदास, 23 ..., सीयर, 1, पृ 126, इर्विन, 2, पृ. 805।

जयसिंह का दिल्ली से बाहर सराय अल्लाहवर्दी पहुंचना; बुद्धसिंह का जयसिंह से आकर मिलना

१३ फरवरी को जयसिंह फर्रुखसियर के आदेशानुसार दिल्ली से बाहर आ गया। परन्तु राजधानी में होने वाली घटनाओं पर नजर रखने के लिए वह दिल्ली से १६ मील दक्षिण-पश्चिम स्थित अल्लाहवर्दी की सराय पर रुक गया। उसने महाराव बुद्धसिंह से भी साथ आने को कहा परन्तु महाराव अब्दुल्ला खा के पास चला गया जहाँ उसे कुछ घोडे आदि दिये गये और महाराजा अजीतसिंह के निकट ठहरा दिया गया। कुछ ही घडी बाद कोटा के सिपाही उस पर टूट पडे। जयसिंह ने कुछ सैनिक उसकी सहायता के लिए भेजे और वह जैसे तैसे दिल्ली की सडको पर लड़ता-लडता जयसिंह के पास पहुँच सका[1]।

हुसैनअली की फर्रुखसियर से भेंट

अगले दिन (४ फरवरी) हुसैन अली बादशाह से मिलने आया। सवेरे अब्दुल्ला खा अजीतसिंह आदि ने बादशाही पहरेदारो को हटाकर अपने आदमी नियुक्त कर दिये थे। सूर्योदय के तीन घंटे पीछे हुसैन अली अपने शिविर से दरबार मे आने के लिए रवाना हुआ। आगे-आगे हजारो मराठा चल रहे थे जिनके भाले सरकडो अथवा मुश्कबेत से ढकी विस्तृत पट्टी की भाँति दिखाई पडते थे। हुसैन अली लगभग ३ बजे बादशाह से एकान्त मे मिला। उसने बादशाह को दाऊद खा के नाम का फर्मान बताया जिसमे उसका (हुसैन अली का) विरोध करने का आदेश था। दाऊद खा की मृत्यु के बाद यह पत्र उसके सम्मान मे हुसैनअली को मिला था। बादशाह ने कहा कि फर्मान फर्जी है। हुसैन अली ने इतिकाद खा व बादशाह के अन्य कृपा पात्रो को दरबार से निकाल दिये जाने के लिए कहा। उसने उनके पद अपने विश्वास पात्र व्यक्तियो को दिये जाने की भी माग की। बादशाह ने यह माग स्वीकार करली। जब १० बजे हुसैनअली विदा हुआ तो ऐसा प्रतीत हुआ कि झगडा समाप्त हो गया है[2]।

हुसैनअली का सेना के साथ दिल्ली मे प्रवेश

१७ फरवरी को अब्दुल्ला खा ने हुसैनअली द्वारा अकबर के पुत्र को सौपने के लिए दरबार मे आने का तय किया। सवेरे ही अब्दुल्ला खा, अजीतसिंह, राजा गजसिंह, महाराव भीमसिंह आदि ने दीवान-ए-आम व खानसामा विभाग के कमरो मे अपने आदमी तैनात कर दिये और दीवान-ए-खास व अन्य कमरो की चाबियाँ मंगवाई। लगभग १२ बजे हुसैनअली ३०,०००–४०,००० सवारो व तोपो के साथ शहर मे दाखिल हुआ। मराठे किले के दरवाजे व आसपास की सडको व गलियो

---

1. जयसिंह–बिहारीदास पंचोली, 17–18 फरवरी 1719, (देखिये टाड, 1, पृ 323)।
2. इरविन, 1, पृ. 376-77।

मे डट गये। परन्तु तीसरे पहर जब अब्दुल्ला खा बादशाह से मिला तो बातचीत मे दोनो ही आपे से बाहर हो गए और दोनो ने ही अत्यन्त अपमानजनक व अश्लील शब्द एक दूसरे के लिए कहे। अब्दुल्ला खा बादशाह को भला बुरा कहता महल से बाहर चला आया। बादशाह महल मे अपने परिवार के लोगो के पास चला गया[1]।

फर्रुखसियर के शासनकाल की यह आखिरी रात थी। महल से भाग जाने के विचार से उसने एक रुक्का लिखकर बडी मुश्किल से अजीतसिंह तक पहुँचाया। उसने लिखा कि यदि महाराजा अपने कुछ आदमी जमुना की तरफ तैनात करदे तो वह नावो मे बैठकर बच निकलेगा। ऐसा कहा जाता है कि अजीतसिंह ने यह रुक्का सैयदो के पास भिजवा दिया और उन्होने चूडामण को उस तरफ नियुक्त कर दिया[2]।

१८ फरवरी, मराठो को क्षति, फर्रुखसियर को पद से हटाना

१८ फरवरी को सवेरे मामूली सी घटना से झगडा छिड गया जिसमे लगभग १०००-१५०० मराठे मारे गये। दिल्ली मे वे नये थे और झगडे की आकस्मिकता के कारण वे अपनी स्वाभाविक सूझबूझ खो बैठे। सैयदो ने मराठो के विरुद्ध जनता की नाराजगी के इस प्रदर्शन को अपने विरुद्ध बढते हुए जन भावना के ज्वार का आगमन समझा और फर्रुखसियर को तुरन्त तख्त से हटाने का निर्णय लिया। निर्णायक कदम अब्दुल्ला खा ने हुसैनअली, अजीतसिंह व मुहम्मद अमीन खा के आग्रह पर लिया। उसने बहादुरशाह के पौत्र, रफीउश्शान के पुत्र को जेल से निकाल कर सिंहासन पर बैठा दिया[3]। इसके बाद कुछ लोग जनानखाने मे पहुँच गये और फर्रुखसियर के बालो को पकडकर उसे घसीटते, लाते मारते व गालियाँ देते हुए दीवानेखास मे ले आये और अब्दुल्ला खा के सामने लाकर पटक दिया। अब्दुल्ला खा उनमे से एक को अपने सुरमे की सलाई दी जिससे बादशाह को अधा कर दिया गया। अपने जीवन के अन्तिम कुछ दिन फर्रुखसियर ने त्रिपोलिया के ऊपर बनी एक छोटी सी कोठरी मे बिताए जिसमे पानी के लिए एक मिट्टी का बर्तन पडा था और जहाँ उसको दो समय रोटिया फेकदी जाती थी। वही १७-१८ अप्रेल को गला घोटकर उसकी हत्या करदी गई[4]।

सैयदों के आचरण की प्रतिक्रिया

चाहे फर्रुखसियर का कुछ भी दोष रहा हो, उसके अतिम दिनो मे सैयदो व उनके अन्य सहयोगियो का उसके साथ अत्यन्त क्षुब्ध व्यवहार था। इससे उनकी

1. इरविन, 1, पृ 378-81।
2. शिवदास, 25।
3. शिवदास, 27 (ए), यह्या, 25 (बी), इरविन, 1, पृ 389-90।
4. सीआर, पृ 135, खफीखा, पृ. 814-16, इरविन, 1, पृ 389-92, महाराजा अजीतसिंह-दयालदास, परवाना, 4 मई 1719, (रेऊ, ग्लोरीज आफ मारवाड, 116)।

वहुत वदनामी हुई और लोग उनसे घृणा करने लगे। इसके विपरीत फर्रूखसियर के प्रति लोगो के मन मे अपार सहानुभूति भर गई[1] । इन सब घटनाओ मे जयसिह को छोडकर अधिकाश मसवदारो का वहुत ही अवसरवादी आचरण रहा था। जयसिह को मुहम्मदशाह के समय मे असाधारण सम्मान प्राप्त होने का एक कारण फर्रूखसियर के समय मे उसका सही आचरण था।

परन्तु फिलहाल जयसिह की स्थिति वडी सकटमयी थी। उसे सैयदो व उनके सहयोगियो से, जिन्होने पिछले दिनो अपनी निर्मम प्रवृत्तियो का पर्याप्त परिचय दिया था, क्षमा अथवा मैत्री की कोई आशा नही थी। उसके लिए केवल यही मार्ग था कि वह मेवाड व बुन्देलो की सहायता से सैयदो के सभी विरोधी तत्वो को सगठित कर अपने शत्रुओ की चुनौती स्वीकार करे।

●●●

2. खफीखा, पृ. 820, वंश भास्कर, 4, पृ. 3064–65, 3082, इरविन, 1, पृ. 394–95।

अध्याय ७

जयसिंह-सैयद संघर्ष (१७१६-२०)

जयसिह का सैयदों के विरुद्ध संगठित विरोध का प्रयत्न

नेकुसियर का आगरा में बादशाह घोषित किया जाना

जब फर्रुखसियर का पतन हो गया और उसकी स्थिति के बारे मे कोई सदेह नही रहा तो जयसिह ग्राबेर आगया और उसने सैयदो के विरुद्ध सघर्ष की तैयारी आरम्भ करदी। उसने इलाहबाद के सूबेदार छबीलाराम, महाराजा छत्रसाल बुन्देला, निजाम, छत्रपति शाहू, महाराव बुद्धसिंह आदि को सैयदो के विरुद्ध सघर्ष मे सहायता देने के लिए पत्र लिखे[1]। उसने आगरा के किले मे मित्रसेन ब्राह्मण के शाहजादा नेकुसियर (अकबर का बडा पुत्र) को बादशाह घोषित करने के षडयन्त्र का समर्थन किया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कुछ दिन पहले मित्रसेन गुप्त रूप से जयसिह से मिला था। जयसिह ने उसे छबीला राम के नाम पत्र दिया था और उससे विद्रोह का समय आदि निश्चित कर लिया था। मित्रसेन ने अपना भाग योग्यतापूर्वक व पूर्वनिश्चित समय पर पूरा किया और ८ मई १७१६ को नेकुसियर को आगरा मे सम्राट घोपित कर दिया[2]।

जसे ही यह समाचार देहली पहुँचा, सैयदो ने हैदरकुली खा, महाराव भीमसिंह, चूडामण जाट आदि के साथ एक सेना आगरा के लिए रवाना करदी। हुसैनअली खा अब्दुल्ला खा के इस विचार से कि नेकुसियर को वे भी बादशाह स्वीकार करले, सहमत नही हुआ। उसने कहा कि इसे उनके दुश्मन उनकी कमजोरी समझेंगे। १४ जून को वह २५,००० सैनिको के साथ आगरा के लिए चल पडा। इस समय तक जयसिह आगरा की ओर एक मजिल तै करके छबीलाराम से समाचार मिलने तक रुक गया था। यह भी खबर थी कि निजाम आगरा की ओर बढ रहा है।[3]

---

1. यह जयसिह के 5 जून, 1719 (ज. आ) के पत्र से ज्ञात होता है। इस पत्र के लिए पृ. देखिये।
2. इरविन, 1, पृ. 410–12, गैरत खा-सैयद अब्दुल्ला खा (वालमुकुन्दनामा, परिशिष्ट)
3. कासिम, पत्र 85–87, खफीखा, 2, पृ. 832, इरविन 1, पृ 413–16, जयसिह-विहारीदास पचोली, भाद्रपद [?] 4 स. 1776 (जुलाई 24 अथवा 8 अगस्त, 1719), इस पत्र के लिए देखिए टाट, 1, पृ. 324, नोट, 1।

यद्यपि सैयदों को शत्रुओ के कई ओर से बढने की सभावना थी, परन्तु उन्होंने (सैयदो ने) इस स्थिति का योग्यतापूर्वक सामना किया। उन्होने जयसिह व छबीलाराम को मथुरा मे न मिलने देने का निश्चय किया। मथुरा से उनकी सम्मिलित सेनाएँ दिल्ली के लिए बडा खतरा बन सकती थी और यहाँ से वे आगरे की ओर बढने वाली सैयदो की सेनाओ को रोक सकते थे। जयसिह मथुरा अथवा आगरा की ओर न बढे इसके लिए उन्होने आवेर के उत्तर व पश्चिम की ओर से दवाव बनाये रखने का प्रयास किया। उन्होने नसरतयार खा को पर्याप्त सख्या मे सवारो के साथ कालाडेरा मे नियुक्त कर दिया। उन्होने नसरतयार खा को यह भी आज्ञा दी कि वह आसपास के इलाके के उन जमींदारो के इलाको को लूट ले जो जयसिंह के विरुद्ध उसका साथ देने मे आनाकानी करे। सैयदो ने फतहपुर के जमींदार कयूम खा को मारोठ की तरफ से आने वाली महाराजा अजीतसिह की सेना की सहायता से जयसिंह के महलो मे रहने वाले जागीरदारो को अपनी ओर मिला लेने के लिए कहा। कुछ दिन बाद उन्होंने दिलावर अली खा व जफार खा को एक सेना के साथ फतहपुर मे नियुक्त कर दिया। इन नियुक्तियो का यह उद्देश्य था कि जयसिंह को आबेर की ओर से बरावर चिन्ता बनी रहे और वह मथुरा अथवा आगरा की ओर बढने से रुक जावे[1]।

सैयदों का अजीतसिह द्वारा जयसिंह के साथ समझौते का प्रयत्न

अजीतसिंह व जयसिंह का पत्र–व्यवहार

जयसिंह द्वारा सैयदो के आरोपो का कड़ा उत्तर

यद्यपि सैयद जयसिह के विरुद्ध आवश्यक कार्यवाही कर रहे थे, व यथासभव उससे युद्ध छेडना नही चाहते थे। एक तो आगरे मे विद्रोह चल रहा था, दूसरे उन्हे छबीलाराम व निजाम से भी खतरा बना हुआ था। यदि जयसिंह से भी युद्ध छेड दिया तो मेवाड व अन्य राजपूत राज्यो, विशेषकर बूंदी, करोली व बीकानेर आदि, के मिलकर सैयदो की आक्रामन्य कार्यवाही का उत्तर देने की सभावना थी। ऐसी स्थिति मे राजपूत विरोध को दबाना सैयदो के हाथ के बाहर की बात थी। इसलिए फर्रुखसियर को हटाने के तुरन्त बाद ही सैयदो ने जयसिह को लिखा था कि उसका राज्य मसब यथावत रहेगे और उसकी बीदर नियुक्ति की जा रही है[2]। सैयदो की ओर से महाराजा अजीतसिह जयसिह से पत्र व्यवहार कर रहा था। जयसिह ने १९ मई १७१९ तक बीदर की नियुक्ति के बारे मे उसके असतोष के बहाने से पत्र व्यवहार जारी रखा परन्तु जब मित्रसेन ने आगरा पर नेकुसियर का ध्वज फहरा दिया और छबीलाराम के मथुरा की ओर बढने का समाचार आया तो उसने कड़ा रूख

---

1 बालमुकुन्दनामा, 24, कासिम पत्र 88।

2 अजीतसिह–दयालदास, परवाना, 4 मई 1719 (रेड, ग्लोरीज, पृ. 118) देखिए। परन्तु सितम्बर 1719 तक उसे जागीर की बहाली की सनदें नही मिली थी।

अपना लिया और सैयदो के उसके विरुद्ध आरोपो का स्पष्ट जवाब दिया। ५ जून के पत्र मे उसने अजीतसिह को लिखा कि उसके महाराव बुद्धसिह को आवेर बुलाने व छत्रसाल बुन्देला व मेहता छबीलाराम के साथ पत्र व्यवहार करने पर किसी प्रकार की आपत्ति करने की कोई गु जाइश नही है। महाराज छत्रसाल व छबीलाराम से उसका पहले का पत्र व्यवहार है। महाराव बुद्धसिह को उसने इसलिए बुलाया था कि यदि वह भी उसके साथ वादशाह से मिलने चले तो वो दोनो ही साथ आ सकते है। उसने जो वडी सेना एकत्र की हे, इसमे भी आपत्ति करना अनुचित है। जयसिह ने लिखा कि जव वह पहली वार नये वादशाह के पास आ रहा है तो उसने उन्हे प्रसन्न करने के लिए वडी सेना के साथ प्रस्तुत होना उचित समझा। रही नसरतयार खा के बारे मे, जवतक वह १०,००० सैनिको के साथ अमरसर जमा हुआ है तो जयसिह कैसे इस बारे मे निश्चिन्त रहे उसे (जयसिह) सेना भग करने को कहा गया है। परन्तु वह तवतक ऐसा नही करेगा जबतक नसरतयार खा, कासिम खां वगैरह को उनकी फौजो के साथ वापस नही बुलवा लिया जाता। उसने लिखा कि जहाँ कही उपद्रव होता है, उसके लिए अब्दुल्ला खा उसी को दोपी ठहराता है। यह कुतवुलमुल्क के लिए बडी खराब बात है, क्योकि इसका यह अर्थ है कि वह उस पर विश्वास नही करता। अन्त मे जयसिह ने अजीतसिह को लिखा कि वह सैयदो से वही कहे जो उसने लिखा है यदि कोई बात स्पष्ट नही हो तो वह स्पष्ट की जा सकती है। उसने यह भी लिखा कि बीदर वहुत दूर हे और वहाँ की नियुक्ति स्वीकार करने से पहले वह महाराजा से मिलना चाहेगा[1]।

जयसिह का टोडा पहुंचना, छबीलाराम व निज़ाम का न आना

ऐसा प्रतीत होता है कि इस पत्र के साथ ही समझौते की वातचीत समाप्त हो गई और जयसिह अपनी सेना के साथ टोडा (आगरा के ७९ मील दक्षिण पश्चिम मे) पहुँच गया और छवीलाराम व निजाम की प्रतीक्षा करने लगा। परन्तु न निजाम आया और न ही छबीलाराम। वाद मे यह स्पष्ट हुआ कि निजाम ने जानकर सघर्ष मे भाग नही लिया और उसने अधिक सुरक्षित मार्ग अपनाया। छबीलाराम कालपी के जसनसिह के विद्रोह के कारण मथुरा नही पहुँच सका। यह विद्रोह मुहम्मद खा वगश ने सैयदो के कहने से करवाया था[2]।

सैयदो का छबीलाराम को जयसिह से अलग करने का प्रयत्न

सैयदो को यह अच्छी तरह ज्ञात था कि यदि जयसिह व छबीलाराम की सेनाए मिल गई तो उनके लिए कितना वडा खतरा पैदा हो जाएगा। इसलिए उन्होने छबीलाराम को अपनी ओर करने का पूरा प्रयत्न किया। अव्दुल्ला खा ने छबीलाराम

1. जयसिंह-अजीतसिह, 7 मई, 15 मई व 5 जून 1719 के पत्र, जो. आ।
2. कामराज, पत्र 70 (ए); कासिम, पत्र, 91, इरविन, 2, पृ. 3, 6-7।

को लिखा कि वह उनके (सैयदो) के बारे मे किसी प्रकार की शका न करे। वह उसे (छबीलाराम को) अपनी बाजुओ की ताकत व विश्वासपात्र सहायक मानता है। उसने लिखा कि इलाहबाद सूबे मे उसके (छबीलाराम) अच्छे प्रशासन के बारे मे बादशाह को विदित है और अब सप्ताह या दस दिन बाद जब आगरे के किले पर पुन. अधिकार हो जाएगा तो बादशाह उसके जात पद मे उचित वृद्धि कर देगे। उसने छबीलाराम को उसके भतीजे गिरधर बहादुर को दरबार मे भेजने को लिखा, जिसमे वह स्वय देखले कि उनकी (सैयदो की) उसके प्रति कितनी सद्‌भावना है। अब्दुल्ला खा ने गिरधर बहादुर के जात पद मे ५०० की वृद्धि की सूचना भी दी[1]।

महाराणा का छबीलाराम को जयसिंह का साथ देने के लिए लिखना

इधर महाराणा ने भी छबीलाराम को अनेक पत्र भेजे। महाराणा ने लिखा कि कुछ विशेष मामलो के कई पत्र विश्वासपात्र हरकारो के द्वारा उसके पास भेजे जा चुके है जिससे कि वह वास्तविक स्थिति से परिचित हो जावे। दूसरी तरफ (सैयदो) के अनेक लोगो ने निराशा व हताश होकर राजा जयसिंह को वफादारी जाहिर करते हुए पत्र भेजे है और उनमे से एक शीघ्र ही जयसिंह से आकर मिलेगा। इसलिए छबीलाराम को तुरन्त रवाना होकर राजा जयसिह से मिलना चाहिए। उससे स्वयं बडी सेना व तोपे बिहारीदास के साथ मालवे से "उस तरफ" भेज दी है। यह सेना निजाम की सलाह से आगे बढेगी। निजाम स्वय एक सुसज्जित सेना के साथ आ रहा है। महाराणा ने यह भी लिखा कि मराठो को भी आने के लिए पत्र भेजे है और वे शीघ्र ही आ पहुचेंगे। जब इस पत्र का उत्तर नही आया तो महाराणा ने छबीलाराम को पूर्व निश्चित स्थान पर (मथुरा) पहुँचने को लिखा[2]। परन्तु छबीलाराम महता नही आ सका और इससे सैयदो के विरुद्ध जयसिंह के सघर्ष को बडा धक्का पहुँचा।

निजाम व छबीलाराम के न आने से संगठित विरोध की योजना का स्थगित किया जाना

निजाम के भी न आने से जयसिह को सैयदो के विरुद्ध सगठित रूप से सघर्ष करने की योजना को त्यागना पडा। इसमे कोई सशय नही कि निजाम ने सघर्ष मे भाग लेने का आश्वासन दिया था। यह न केवल महाराणा के छबीलाराम को लिखे पत्रो से बल्कि जयसिंह के बिहारीदास को २४ जुलाई अथवा ८ अगस्त १७१९ के पत्र से भी स्पष्ट हो जाता है। जयसिंह ने लिखा था कि निजाम तेजी से उज्जैन की तरफ बढ रहा है और अबतक जो समाचार उसे (जगसिंह) मिले है उनके अनुसार मेहता छबीलाराम ने कालपी के स्थान पर जमुना पार करली है।

1. सैयद अब्दुल्ला खा–छबीलाराम, बालमुकुन्दनामा न 3।
2. अजाइब, पत्र सं 131, 132 (प्रो ई हि काग्रेस 23वा अधिवेशन 1960, पृ 226–30)।

सैयद अब्दुल्ला खां का महाराणा को महत्वपूर्ण पत्र; जयसिंह के साथ समझौते की इच्छा

सैयदो को महाराणा की गतिविधियो के बारे मे ज्ञात था और इसलिए उन्होने उनके (महाराणा) मार्फत जयसिह से समझौता करने का प्रयास किया। अब्दुल्ला खा ने महाराणा को लिखा कि राजाधिराज व मालवा के प्रमुख जागीरदारो के कारण कुछ अशोभनीय घटनाए घटी है। उसने आशा व्यक्त की कि महाराणा इन सब बातो से दूर रहेगे। अब्दुल्ला खा ने लिखा कि उसने राजाधिराज (जयसिंह) की मागो को पूरा करने का यथासभव प्रयत्न किया। उसकी इच्छा है कि राजाधिराज उसके अन्य सहयोगियो की भाति बराबर का दर्जा प्राप्त करे। परन्तु राजाधिराज के बादशाही फौज के विरुद्ध बढने के कारण उसके मुल्क को बर्वाद करना आवश्यक हो गया है। २९ जून को शाही सेना का लावलश्कर रवाना कर दिया गया है और एक सप्ताह मे बादशाह उसके विरूद्ध रवाना हो जाएगा। उसने लिखा कि वह नहीं चाहता कि आवेर का प्राचीन राजघराना नष्ट हो जाए। इसलिए महाराणा उसे आगे बढने से रोके और उसकी मागो के बारे मे लिखे जिससे उन पर अच्छी तरह विचार किया जा सके। महाराणा इस पत्र से प्रभावित नही हुआ और वह जयसिंह का पहले की ही भॉति समर्थन करता रहा[1]।

जयसिंह के विरुद्ध अभियान स्थगित करना, सैयद भाइयो मे विरोध

इसी बीच ५ जुलाई को अब्दुल्ला खा बादशाह रफीउद्दौला के साथ जयसिंह का सामना करने के लिए दिल्ली से रवाना हुआ। परन्तु जब सेना कोसी (मथुरा के ३० मील उत्तर पश्चिम मे) पहुँची तो सीधे आवेर जाने के बजाय बाये चलकर फतहपुर सीकरी पहुँचना तय हुआ[2]। सच यह था कि अब्दुल्ला खा आगरे के किले के लिए जाने के समय वही रहना चाहता था जिससे कि किले की सम्पत्ति हुसैन अली अकेला ही न हडपले। इसलिए वह करावली की ओर मुड गया जो आगरा के १५–१६ मील पश्चिम मे है। वही उसे २ अगस्त को आगरे के किले के पतन का समाचार मिला। अब्दुल्ला के सीधे आबेर की ओर न जाने का एक कारण यह भी था कि जब हुसैन अली को इस अभियान के बारे मे पता चला तो उसने अपने भाई को लिखा कि उसका बख्शी दिलावर खा व मीरमुशरिफ फतहपुर मे है, और इसलिए उसे (अब्दुल्ला खा) आगे बढने की आवश्यकता नही है[3]।

---

1. सैयद अब्दुल्ला खा–महाराणा, बालमुकुन्दनामा, स. 1।
2. खफीखा, 833, इरविन, 1, पृ 428।
3. कासिम, पत्र 88 (ए), 91 (ए) रेऊ, मारवाड, 1, पृ 316, नो. 7, इरविन, 1, पृ 429–30।

आगरे के किले का पतन जयसिंह के लिए एक और धक्का था। जबतक आगरे मे नेकुसियर का झडा फहरा रहा था, सैयदो की सेना का एक बडा भाग वही उलझा हुआ था, और आगरा सैयद विरोधी तत्वो के लिए केन्द्र-बिन्दु बना हुआ था। सामरिक दृष्टिकोण से भी किले का बडा महत्व था।

रफीउद्दौला की १८ सितम्बर को मृत्यु हो जाने व शाहजादा रोशन अख्तर के (मुहम्मदशाह) राज्यारोहण के कारण जयसिह के विरुद्ध अभियान मे कुछ विलम्ब हुआ। १७१९ मे इस प्रकार चार बादशाह बनाए अथवा हटाये गये। राज्यारोहण के बाद यह घोषणा की गई कि नये बादशाह अजमेर मे ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के दर्शन के लिए जाए गे, परन्तु वास्तविक उद्देश्य जयसिंह को समझौता करने का अवसर देना था। यह तय हुआ कि यदि वह अपनी जिद पर अडा रहा तो उसके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की जावेगी[1]।

दोनों पक्षों की समझौते की इच्छा

परन्तु इस अभियान की आवश्यकता नही पडी। जब सेना फतहपुर सीकरी पहुँची तो अजीतसिंह ने जोधपुर जाते हुए जयसिंह से समझौते की बातचीत के लिए मिलने का प्रस्ताव रखा जो सैयदो ने तुरन्त स्वीकार कर लिया[2]। हम यह देख चुके है कि सैयद बात बढाना नही चाहते थे[3]। अभी इलाहाबाद मे विद्रोह चल रहा था। महाराणा पूरी तरह से जयसिंह के साथ था। सैयदो के कई समर्थको को भक्ति सदिग्ध थी। जयसिंह भी युद्ध छेडने के पक्ष मे नही था। आगरा का पतन हो चुका था। निजाम व छबीलाराम उसका साथ देने मे असमर्थ रहे थे। छबीलाराम की मृत्यु के बाद राजा गिरधर बहादुर इलाहाबाद मे घिरा हुआ था। ऐसी स्थिति मे दोनो ही पक्ष यह चाहते थे कि समझौता हो जाय, या कम से कम कुछ समय के लिए युद्ध टल जाये। इससे महाराजा अजीतसिह को उसके सधि के लिए प्रयत्नो मे बडी सह-यता मिली।

अजीतसिंह की जयसिंह से भेंट, समझौते की शर्ते

अजीतसिंह मनोहरपुर होता हुआ कालाडेरा पहुँचा जहाँ ५ नवम्बर को उसकी जयसिंह से बातचीत होना निश्चित हुआ था। अब्दुल्ला खा ने अजीतसिंह को लिखे पत्र मे आशा व्यक्त की कि बातचीत के बाद जयसिह अजीतसिंह के साथ अजमेर चला जाएगा। अजीतसिंह व जयसिह के बीच यह तय हुआ कि जयसिह का

1. कासिम पत्र 92, शिवदास, पत्र 31 (बी), इरविन, 1, पृ. 431 व भाग 2, पृ 1।
2 शिवदास, पत्र 32 (ए), कामराज पत्र, 70 (ए)।
3. यह न केवल अब्दुल्ला खा के महाराणा को भेजे गये पत्र से स्पष्ट हो जाता है (बालमुकुन्द-नामा, न 1) परन्तु उसके अजीतसिंह व जयसिंह के बीच समझौते की शर्तो को तुरन्त स्वीकार करने से भी ज्ञात होता है।

राज्य, मसब व जागीरें यथावत रहेंगे और वह सरकार सोरठ का कार्य लेगा। निजी स्तर पर यह भी तय हुआ कि जयसिंह जोधपुर जाकर अजीतसिंह की पुत्री से (जिसके साथ उसकी २६ जुलाई १७०८ को सगाई हुई थी) विवाह करेगा। अब्दुल्ला खां ने समझौते की उन शर्तों पर बड़ा सन्तोष प्रकट किया[1]।

इन शर्तों के अलावा सम्भवतः एक शर्त और भी जिसे गुप्त रखा गया, परन्तु जिसका मुहम्मद कासिम ने उल्लेख किया है। वह लिखता है कि जयसिंह ने कहा कि टोडा की ओर रवाना होने के समय उसने आमेर ब्राह्मणों को संकल्प में दे दिया था। उनसे अब आमेर वापस खरीदने के लिए सैयदों ने उन्हें बीस लाख रुपये दिये, परन्तु इस रकम को जयसिंह के विवाह के उपलक्ष में बादशाह की ओर से भेंट कहा गया[2]।

जिस स्थिति में जयसिंह उस समय था उसको देखते हुए सन्धि की शर्तें ठीक थी। जयसिंह को केवल सोरठ की नियुक्ति ही अखरी होगी। यद्यपि सोरठ की फौजदारी केवल ऊँचे मसबदारों को ही दी जाती थी परन्तु जयसिंह सूबेदार नियुक्त किये जाने के लिए इच्छुक था। सरकार सोरठ सूबा अहमदाबाद के मातहत थी। अहमदाबाद व अजमेर के सूबे अभी हाल में ही अजीतसिंह को दिये गये थे।

जयसिंह का अजीतसिंह की पुत्री से विवाह

१० दिसम्बर १७१९ को अजीतसिंह जोधपुर पहुँचा। मई १७२० में जयसिंह, महाराव बुद्धसिंह व शिवपुरी का राजा जोधपुर पहुँचे, जहाँ जयसिंह का सूर्य कुमारी से विवाह हुआ। १६ मई १७२० को आमेर में नव वधू की मुँह दिखाई की रस्म हुई[3]।

महाराव भीमसिंह का दिलावरअली खां की सहायता से बूंदी पर अधिकार करना

बुद्धसिंह के दिल्ली भागने के पश्चात् (फरवरी १७१६) सैयदों ने कोटा के महाराव भीमसिंह को निजाम के विरुद्ध आरम्भ होने वाले अभियान की सफलता के बाद महाराजा को खिताब ७०००/७००० की मसब व माहीमरातिब देने का वायदा भी किया गया था। फरवरी १७२० में भीमसिंह, हुसैनअली खा के बख्शी दिलावर अली खा व उसके १५,००० चुने हुए सवारों के साथ बूंदी पहुँचा और कड़े मुकाबले के बाद बूंदी पर अधिकार कर लिया। भीमसिंह की सेना के अलावा नरवर का गजसिंह भी उसके साथ था। इस सफलता की सूचना दरबार में २ फरवरी को पहुँची[4]।

1 बालमुकुन्दनामा, पत्र स 5, 34, इरविन, 2, पृ 4, टाड 2, पृ. 68.।
2. कासिम, पत्र, 93 (ए)।
3 वंशभास्कर, पृ 3075–76, टाड 2, पृ. 69, दस्तूर कोमवार, 24. पृ. 573।
4. इरविन, 2, पृ 5–6 शर्मा, कोटा 1, पृ 289।

बुद्धसिंह का गिरधर बहादुर की सहायता के लिए जाना

अपना राज्य छिन जाने के बाद बुद्धसिंह सभवत जयसिंह की सलाह पर, राजा गिरधर बहादुर के पास इलाहाबाद चला गया और सैयद विरोधी सघर्ष मे उसको अपना सहयोग दिया। हाडा व बुन्देलो के पहुँच जाने से गिरधर बहादुर के पास २०,००० सैनिक हो गये। बुद्धसिंह ने एक बार पुन कुछ सैनिक दस्ते जालिम सिंह हाडा के नेतृत्व मे भेजे जो घेरे के बावजूद भी किले मे प्रवेश कर गये। परन्तु कुछ समय बाद सैयदो ने गिरधरबहादुर को अवध का सूबा व उसके मातहत फौजदारी, तीस लाख रुपये व कुछ अन्य क्षेत्रो की फौजदारी देकर उससे समझौता कर लिया[1]।

सैयदो का पराभव, सैयद-निजाम सघर्ष

ठीक इस समय जब कि सैयदो ने उनके विरुद्ध चल रहे सघर्ष पर काबू पा लिया था–उन पर एक के बाद एक गहरे अघात हुए जिन्होने उनकी गौरवपूर्ण स्थिति को मिट्टी मे मिला दिया। उनके निजाम के साथ सघर्ष का यहाँ विस्तृत वृत्तान्त देने की आवश्यकता नही हे। यह इरविन के ग्रन्थ मे बहुत विस्तार से उपलब्ध है। सघर्ष का प्रारम्भ सैयदो द्वारा निजाम से मालवा का सूवा लेना था जो उसे मार्च १७१९ मे दिया गया था। सैयदो ने कहा कि दक्षिण के सूबो की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि मालवा हुसैनअली खा के पास रहे निजाम को आगरा, इलाहाबाद, मुल्तान व बुरहानपुर मे से कोई सूबा लेने को कहा गया। परन्तु निजाम को ऐसा लगा कि सैयद उसे बर्बाद करने पर तुले हुए है। इसलिए उसने २८ अप्रेल को नर्मदा पार कर असीरगढ जीत लिया। इसके साथ ही निजाम का विद्रोह आरम्भ हो गया[2]।

अब्दुल्ला खां का निज़ाम को मैत्रीपूर्ण पत्र भेजना और मराठो से निजाम के विरुद्ध सहायता मांगना

इसकी सूचना दिल्ली पहुँचते ही दिलावर अली खा को निजाम के विरुद्धबढने की आज्ञा भेजी गई। परन्तु साथ ही अब्दुल्ला खा ने निजाम को पत्र भेजा जिसमे उसने लिखा कि सैयदो के मन मे उसके विरुद्ध किसी प्रकार की शत्रुता की भावना नही है। उसने लिखा कि हिन्दुस्तान मे शासन व व्यवस्था बनाये रखना किसी एक आदमी के लिए स भव नही है और निजाम से इस कार्य मे पूर्ण सहयोग देने को कहा[3]। परन्तु इसी समय उसने शाहू व बालाजी विश्वनाथ को पत्र भेजे जिसमे उसने निजाम

---

1. इरविन, 2, पृ, 8–12, शिवदास, पत्र 35 (ए), सीआर, 1, पृ. 150, खफीखा, 2, पृ. 846, सैयदो की गिरधर बहादुर के साथ समझौता करने की व्यग्रता के लिए देखिये बालमुकुन्दनामा मे पत्र सं. 9–11।
2. पार्टीज, पृ. 154–58, इरविन, 2, पृ. 17–23।
3. बालमुकुन्दनामा पत्र स 2।

के विरुद्ध मराठा सहायता माँगी । १६ मई के पत्र मे उसने बालाजी को लिखा कि यह उनके मैत्रीपूर्ण सबधो की सच्चाई की जाँच का समय है । उसने लिखा कि यदि इस समय राजा शाहू व बालाजी उसका साथ दे तो मामला शीघ्र ही तै हो जाएगा और दक्षिण मे उनके (मराठो) विरोधी तत्वो को सबक मिल जाएगा[1] ।

दिलावर खां की हार व मृत्यु

हुसैनअली का निजाम को धोखे में रखने का प्रयत्न

आलिमअली की पराजय व मृत्यु

इसके कुछ ही दिन बाद ६ जून १७२० को दिलावर अली खा व उसकी सेना को पढार (बुरहानपुर से १६–१७ कोस) के स्थान पर निजाम ने नष्ट कर दिया । घाटी मे छिपाई हुई तोपो ने सैयद सेना का बुरी तरह सहार किया । इस लडाई मे कोटा का महाराव भीमसिह व नरवर का गजसिह भी मारे गये[2] ।

जब इस क्षति का समाचार दिल्ली पहुँचा तो सैयदो ने आलिमअली (हुसैन अली का दत्तक पुत्र जो उस समय दक्षिण के सूबों का कार्य सम्हाल रहा था) को लिखा कि वह निजाम के विरुद्ध हुसैनअली के आने तक युद्ध स्थगित रखे[3] । सैयदो को आशा थी कि दिलावरअली व आलिमअली की सेनाओ के बीच निजाम पिस जायेगा । परन्तु निजाम ने अपने दुश्मनो की इन सेनाओ को मिलने ही नही दिया । दिलावरअली व उसकी सेना का नष्ट होना सैयदो के लिये भारी आघात था । परन्तु उन्होने शीघ्र ही उसे पूरा करने का निश्चय किया । निजाम को धोखे मे रखने के उद्देश्य से हुसैनअली ने उसे लिखा कि दिलावरअली को केवल उसके (हुसैनअली) परिवार को औरगाबाद से लाने का काम सौंपा गया था । क्योकि उसने निजाम का मार्ग रोकने की धृष्टता की, इसलिए जो कुछ उसके साथ हुआ वह उचित ही था । उसने लिखा कि बादशाह उसे (निजाम) दक्षिण के सूबो की सूबेदारी दे रहे है । उसने निजाम से अनुरोध किया कि आलमअली को, जो उसके (हुसैनअली) परिवार को औरगाबाद से ला रहा है, किसी प्रकार की हानि न पहुचने पाए[4] । परन्तु कुछ दिन बाद ही (३१ जुलाई) मराठो की हुसैनअली के आने तक औरगाबाद लौटने की सलाह की उपेक्षा कर आलिमअली अपनी सेना के साथ निजाम से भिड गया और वीरता पूर्वक लडता हुआ मारा गया[5] ।

---

1 वही, पत्र स. 16 ।

2. अहवाल, पत्र 162-64, सीअर पृ. 162–63, इरविन, 2, पृ 28-34 ।

3 देखिये इरविन, 2, पृ. 34–37 ।

4 सैयद हुसैन अली–निजाम, बालमुकुन्दनामा, परिशिष्ट, 5, इरविन 2, 36 ।

5 यद्या, पत्र 126, इरविन, 2, पृ 47–50, सैयदो को आलमअली की सफलता की पूर्ण आशा थी । मुर्शीदकुली खा के नाम एक पत्र मे अब्दुल्ला खा ने लिखा कि निजाम की स्थिति ऐसी है कि यदि वह बचकर निकल जावे तो उसका सौभाग्य ही होगा और भविष्य में वह विरोध करने का कभी नही सोचेगा ।

हुसैनअली का बादशाह मुहम्मदशाह के साथ निज़ाम के विरुद्ध जाना

ये दोनो ही आघात सैयदो के लिए असह्य थे और इनसे उन्हे बडी निराशा हुई। दूसरी ओर सैयदो पर ये आघात उनके विरोधियो के लिए उत्साहवर्धक हुए। काफी सोच विचार के बाद सैयदो ने यह निर्णय लिया कि हुसैनअली खा बादशाह के साथ एक बडी सेना लेकर निजाम से निपटने दक्षिण की ओर जाए और अब्दुल्ला खा राजधानी मे रहे। हुसैनअली ने अजमेर होकर जाने वाला दूर का मार्ग चुना[1]। जिससे कि राजपूत, विशेषकर अजीतसिंह व उसकी राठौड सेना उसके (हुसैनअली) साथ हो जाए। परन्तु अजीतसिंह आवश्यकता होने पर अपने मित्रो के काम आने को बिल्कुल भी इच्छुक नही था। उसने अब्दुल्ला खा को लिखा कि सैयद हुसैनअली शीघ्र नर्मदा पहुँचने के लिए सीधा मार्ग पकड़े, परन्तु अब्दुल्ला खा ने लिखा कि चबल मे बाढ आ रही है और उसके भाई के लिए यह आवश्यक है कि महाराजा जैसे सच्चे दोस्त की कई मामलो के बारे मे सलाह ले।

अब्दुल्ला खां का अजीतसिंह से हुसैनअली से मिलने का आग्रह और जयसिंह को अपनी ओर करने का प्रयत्न

अब्दुल्ला खा ने अजीतसिंह को अजमेर पहुचने को लिखा जिससे उसके भाई को एक दिन भी उसकी प्रतीक्षा नही करनी पडे। इस स्थिति मे सैयदो ने जयसिह को भी अपनी ओर करने का प्रयत्न किया। अब्दुल्ला खा ने अजीतसिह को हर सभव तरीके से राजाधिराज को सतुष्ट करने के लिए कहा और उसे अपने साथ अजमेर लाने को लिखा। पत्र मे उसने लिखा कि राजाधिराज राज्य व सरकार का स्तम्भ है। उसके मन मे यदि किसी प्रकार की शका हो तो उसे तुरन्त दूर करने के हर सभव प्रयत्न किए जाय[2]।

हुसैनअली की हत्या

सैयद हुसैनअली बादशाह व उनके प्रमुख मसबदारो के साथ २ सितम्बर को दिल्ली से चला। ८ सितम्बर को वह टोडाभीम (जयपुर के ६१ मील पूर्व) पहुँच गया। उसी दिन उसकी हत्या करदी गई। प्रमुख षडयन्त्रकारियो मे मुहम्मद अमीन खा व उसका पुत्र कमरुद्दीन खा (जो दोनो बाद मे वजीर बने) हैदर कुली खा व सादत खा थे। षडयन्त्र के बारे मे बादशाह को पहले से जानकारी थी[3]।

जयसिंह का बादशाह मुहम्मदशाह को सहायता पहुंचाने का प्रयत्न

जयसिह इस समय सूरपुरा (जोधपुर) मे था। ९ अक्तूबर को उसे अजीतसिंह के मार्फत अब्दुल्ला खा का भेजा आदेश मिला जिसमे उसे मालवा की सूबेदारी

---

1. इरविन, 2, पृ. 51–52।
2. अब्दुल्ला खा-अजीतसिह, 4 अगस्त, 1720, बालमुकन्दनामा पत्र सं 12।
3. कासिम, 106–107, शिवदास 49 (ए), इरविन, 2, पृ. 52–60।

दिए जाने का उल्लेख था[1]। परन्तु जयसिंह ने इस आदेश को कुछ भी महत्त्व नही दिया और बादशाह की मदद के लिए चल पडा। उसे २४ अक्तूबर का महाराणा का पत्र मिला जिसमे उन्होने पूछा था कि हुसैनअली खा की मृत्यु के बाद उत्पन्न स्थिति मे क्या नीति अपनाई जाय ? परन्तु जयसिंह ने कुछ दिन पूर्व ही महाराणा को पत्र लिखा था जिसमे उसने स्वयं के बादशाह की मदद के लिए जाने का उल्लेख किया था और महाराणा को भी ऐसा ही करने को लिखा था[2]। उसने महाराणा के पास बादशाह के आदेश की व मुहम्मद अमीन खा, खानदौरा व राजा गिरधर बहादुर के उसके नाम पत्रो की नकले भेजी। उसने लिखा कि बादशाह के पास जाने की जल्दी मे उसका महाराणा से मिलना सभव नही है[3]। जयसिंह ने बादशाह की मदद करने के लिए कोटा के महाराव अर्जुनसिह, बीकानेर के महाराजा सुजानसिंह, राव इन्द्रसिंह आदि को भी लिखा। जयसिंह ने लिखा कि वे स्वय न आएँ तो अपनी-अपनी सेना प्रतिष्ठित ठाकुरो के नेतृत्व मे भेज दे[4]। परन्तु राजपूत राजा व्यक्तिगत रूप से इस सघर्ष मे भाग नही लेना चाहते थे। पिछले दिनो की घटनाओ से मुहम्मद अमीन खा आदि की सिद्धान्तहीनता स्पष्ट हो चुकी थी। उन पर किसी प्रकार का भी विश्वास करना कठिन था। नए बादशाह की योग्यता अथवा अयोग्यता संदिग्ध थी। ऐसी स्थिति मे मुहम्मद अमीन खा आदि पर विश्वास कर बादशाह का समर्थन करने मे बडा खतरा था। युद्ध का क्या फैसला हो इसके बारे मे निश्चितपूर्वक कहना कठिन था। इन सब कारणो से राजपूत राजा बादशाह का खुला समर्थन करने मे हिचक रहे थे। महाराणा कुछ पारिवारिक झगडे की वजह से १ नवम्बर को सेना रवाना कर सके। परन्तु यह सेना शाहपुरा ही पहुँची थी कि जयसिंह का पत्र आ गया जिसमे उसने बादशाह की विजय की सूचना दी और मेवाड की फौज को वापस बुला लेने को लिखा[5]। कुछ दिन बाद बीकानेर के सुजानसिह ने जयसिंह को लिखा (१७ नवम्बर, १७२०) कि जोधपुर की फौज के सरहद की तरफ बढने के व उसके स्वय के अस्वस्थ होने के कारण वह फौज नही भेज सका। राव इन्द्रसिंह ने लिखा कि मराठों के मालवा मे घुस आने के कारण वह बादशाह के पास नही पहुँच सका। महाराव अर्जुनसिह को जयसिह के अलावा मुहम्मद अमीन खाँ का पत्र भी मिला

1. स्याहा दफ्तर वकाया 9 अक्तूबर 1720, ज. आ.।

2. महाराव अर्जुनसिह-जयसिंह, 2, नवम्बर 1720, ज. आ., महाराणा जयसिंह 24 अक्तूबर, ज. आ।

3 महाराणा-जयसिंह, 7 नवम्बर 1720, ज. आ महाराणा ने अपने पत्र मे जयसिह से प्राप्त पत्र का वृत्तान्त भी लिखा था। ऐसा इस समय के अनेक पत्रों मे पाया जाता है।

4. बीकानेर, कोटा, राव इन्द्रसिह को भेजे गए खरीतों के ड्राफ्ट ज आ.।

5 महाराणा-जयसिंह, 7, 28 नवम्बर 1720, ज. आ.।

था, परन्तु वह भी कुछ न कुछ कारण बताकर बादशाह की मदद के लिए नही पहुँचा[1]।

बादशाह द्वारा निज़ाम व जयसिंह की प्रतीक्षा, जयसिंह का राव जगराम के साथ एक बड़ी फौज भेजना

कई दिन तक निजाम व राजपूतो के आने की प्रतीक्षा के बाद बादशाह मुहम्मद शाह अब्दुल्ला खा के विरुद्ध रवाना हुआ। वह निश्चय ही नही कर पा रहा था कि वह देहली की ओर बढे अथवा आगरा की ओर। वह जानकर धीरे-धीरे बढ रहा था जिससे कि जहाँ कही से भी मदद आ रही हो वह उस तक युद्ध से पहले ही पहुँच जावे। कभी कभी वह २००–३०० सवारो को चुपचाप भेज देता। जब शाम के झुटपुटे मे वे घोडे दौडाते हुए आते तो यह खबर दी जाती कि कई सौ सवार आकर मिल गए है। एक बार जब कुछ राजपूत सवार इस प्रकार आए तो यह बात फैला दी गई कि जयसिह की फौज आ पहुँची है और वह भी शीघ्र आने वाला है। २५ अक्टूबर को बादशाह ने जयसिंह को आदेश भेजा कि वह २७ अक्टूबर तक अवश्य पचहुँ जाए। बादशाह ने लिखा कि वह उसके आने की प्रतीक्षा मे ठहर गया है। कुछ ही देर बाद जयसिह का एक प्रमुख अफसर, राव जगराम, आवेर की फौज के साथ आ पहुँचा। सफीखा के अनुसार इस फौज मे तीन या चार हजार सवार थे, परन्तु शिवदास के अनुसार जगराम पचास हजार से भी अधिक फौज के साथ आया था[2]। इसमे खफीखा ने जो सख्या दी है वह कम लगती है और शिवदास द्वारा दी गई सख्या अधिक। युद्ध के दौरान राव जगराम के पास ही १०,००० सवार थे। परन्तु अनेक कारणो से, जिनका हम उल्लेख कर चुके है, जयसिह स्वय युद्ध मे शामिल नही हुआ। चूडामण जाट बादशाह से आकर मिल गया था और बादशाह की सेना का मार्ग प्रदर्शन करते हुए अपने इलाके को बचाकर जयसिंह के इलाके मे से वह शाही सेना को लाया था, यद्यपि इस मार्ग पर पानी बहुत कम था और अनेक लोग प्यास से मर भी गए थे।

बिलोचपुर के युद्ध में अब्दुल्ला खां की पराजय

२ नवम्बर को बादशाह हसनपुर (दिल्ली के ४७ मील दक्षिण, जमुना के दाएं तट पर) के निकट पहुंच गया। अब्दुल्ला खा एक बडी सेना के साथ छ मील ऊपर बिलोचपुर के स्थान पर आ पहुंचा था। उसके साथ इब्राहीम भी था जिसे उसने दिल्ली मे बादशाह घोषित कर दिया था। आधी रात के बाद मुहम्मद शाह ने सेना

---

1 महाराजा सुजानसिह के 7 व 28 नवम्बर 1720 के, राजा इन्द्रसिंह का सं. 1777 का व महाराव अर्जुनसिह का कार्तिक सुदी 14 सं. 1777 के पत्र, ज. आ.।

2. उपरोक्त वृत्तान्त के लिए कासिम, 115 (ए), शिवदास, 50 (बी), 51 (ए), इरविन, 2, पृ 68–69, फर्मान 25 अक्टूबर, ज. आ. व खफी खा, 2, पृ. 920; शिवदास, 51 (बी)।

व्यवस्थित की। इस बारे मे शिवदास ने जो आंकडे दिए है उनके अनुसार सेना मे कुल १,१०,००० सैनिक थे। जब बादशाह देहली से हुसैनअली के साथ रवाना हुआ था तव उसके साथ कुल ५०,००० सैनिक थे। हुसैनअली की हत्या के वाद और टोडा से दिल्ली की ओर बढते हुए मार्ग मे अनेक सैनिक भाग गए थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जयसिंह ने बादशाह के पास काफी बड़ी फौज भेजी थी।

३-४ नवम्बर को लडे गए युद्ध मे, जिसमे तोपो का निर्णायक भाग रहा, अब्दुल्ला खाँ हार गया और बन्दी बना लिया गया[1]। जीतने के वाद आवेर की फौज के अनेक लोगो को बादशाह ने स्वय अपने हाथ से इनाम दिए[2]। कुछ दिन वाद जब जयसिंह बादशाह से मिलने आया तो उसका बहुत सत्कार किया गया।

बादशाह का जयसिंह को सलाह के लिए बुलाना

अब्दुल्ला खा की हार और उसके बन्दी बनाए जाने का हाल जयसिह को उसी दिन मिल गया। चार दिन पश्चात् मुहम्मद अमीन खां की शिकायत पर बादशाह ने जयसिंह को एक आदेश भेजा जिसमे उसके समय पर न पहुंचने पर थोड़ी अप्रसन्नता प्रदर्शित की गई थी। परन्तु बादशाह ने उसे तुरन्त आने को लिखा जिससे साम्राज्य की अनेक समस्याओ के बारे मे उससे सलाह ली जा सके[3]।

जयसिंह का बादशाह द्वारा सत्कार, जिज़िया पुनः बंद किया जाना

११ नवम्बर को जयसिह दिल्ली के निकट पहुँच गया। बादशाह ने नए वजीर मुहम्मद अमीन खा व उसके पुत्र को जयसिह के डेरे पर जाकर स्वागत करने के लिए भेजा। शाम को जयसिंह व अमीन खा एक ही हाथी पर बैठ कर शहर मे आए। दरवार मे जयसिंह ने बादशाह को १००० असर्फी व १००० चादी के सिक्के भेट किए। बादशाह ने उसे हाथी, मोतियो की माला, जडाउ जमधर आदि अनेक उपहार दिए। उसके सवार पद मे ४००० की वृद्धि की गई और २,०००००००० दाम उसे इनाम मे भी दिए जाने के लिए आज्ञा जारी की गई, परन्तु उसने नम्रतापूर्वक ये लेने से इंकार कर दिया[4]। उसके तथा राजा गिरधर बहादुर के कहने से बादशाह ने जिजिया भी माफ कर दिया जो हाल ही मे मुहम्मद अमीन खा के कहने पर लगाया था। जयसिंह ने यह सब वृत्तान्त महाराणा को लिखा। महाराणा ने २७ दिसम्बर १७२० के पत्र मे जयसिंह को जिज़िया बन्द करवाने के लिए हार्दिक

---

1 उपरोक्त वृत्तान्त शिवदास, 58 (ए)–59 (ए), कासिम, 113 (बी), 115 (बी), खफी खा, 2, पृ. 920, इरविन, 2, पृ. 53–82, 85–93, पर आधारित है।

2 वकाया, 10 नवम्बर 1720, ज. आ.।

3. सियाहा वकाया, 5 नवम्बर 1720, ज. आ, फर्मान 9 नवम्बर 1720, ज आ।

4. सियाहा हजूर, दफ्तर वकाया, 11 नवम्बर, दफ्तर रोजनामचा, 24, 25 नवम्बर 1720, को बादशाह मुहम्मदशाह के बारे में उल्लेख।

बधाई दी। महाराणा ने लिखा कि उसके (जयसिंह के) बुरे दिन बीत चुके है और अब भाग्य ने फिर पलटा खाया है। यह उसके (जयसिंह के) धर्म व कर्म का ही परिणाम है[1]।

जिन दिनो सैयदों के विरुद्ध सघर्ष जोरो पर था, जयसिंह ने अपने परिवार व विजयसिंह को उदयपुर भेज दिया था। अब जयसिंह ने उन्हे भिजवाने के लिए महाराणा को लिखा। ये लोग १२ जनवरी १७२१ को उदयपुर से विदा हुए।

सैयदों के उत्कर्ष-काल का महत्व

हसनपुर के युद्ध के साथ ही सैयदो का युग समाप्त हो गया। सैयदो ने उदार नीति का अनुकरण किया, हिन्दुओ को प्रशासन मे उचित भाग लेने का अवसर दिया और मसबदारो के सभी वर्गो को सतुष्ट रखने का प्रयास किया। उनका दृष्टिकोण धर्म व जाति के सकीर्ण दायरे मे सीमित नही था और उनमे सबल केन्द्रीय शासन देने की क्षमता भी थी। वे दरबारी दलो को अपनी उदार नीति से काबू मे रखना भी चाहते थे। परन्तु आरम्भ से ही उनके व बादशाद फर्रुखसियर के बीच मतभेद व एक-दूसरे के प्रति दुर्भावना व सदेह बढते चले गए जिनसे सारा राजनैतिक वातावरण दूषित हो गया और अन्त मे बादशाह के पद व प्रतिष्ठा को भारी धक्का पहुँचा। इस काल मे ईरानी मसबदारों की पार्टी का प्रभाव एकाएक ही समाप्त हो गया और मराठो का उत्तरी भारत की राजनीति मे एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप मे विकास आरम्भ हो गया। साथ ही सैयदो के अन्त से यह स्पष्ट हो गया कि बादशाह के सम्मानित पद से जो खिलवाड करने का प्रयास करेगा वह अपने लिए असीमित विपत्तियाँ आमत्रित करेगा।

जयसिंह के उत्कर्ष-काल का आरम्भ

सैयदो के पतन के साथ ही जयसिंह का राजनैतिक प्रभाव तेजी से बढने लगा और कुछ ही वर्षों मे वह देश के सबसे प्रमुख व प्रभावशाली व्यक्तियो मे से एक बन गया। राजपूताने मे बिना उसकी सलाह के कुछ नही होता। वह शीघ्र ही राजपूत हितो का सर्वमान्य प्रतिनिधि माना जाने लगा। राजपूताने के ही नही मालवा व बुन्देलखण्ड के शासक भी अपनी समस्याएँ सुलझाने मे उसकी सलाह लेते और अपने हितो की रक्षा के लिए उस पर निर्भर रहते थे। जब इन राज्यो पर मराठो के बढते हुए प्रभाव की छाया पड़ने लगी तो वे अपने अस्तित्व के लिए जयसिंह पर और अधिक निर्भर रहने लगे। १७३५ के बाद तो मराठे भी जयसिंह को विशेष आदर व महत्व देने लगे थे। इसका विस्तृत वर्णन हम आगे करेंगे। १७२० से जयसिंह का जो अपूर्व उत्कर्ष आरम्भ हुआ वह द्रुत गति से बढता गया।

•••

1. महाराणा-जयसिंह, 27 सितम्बर 1720, ज. आ., इरविन, 2, पृ० 103।

अध्याय ८

महत्वपूर्ण दस वर्ष (१७२०-३०)

अजीतसिंह का मुहम्मदशाह के शासन काल मे प्रथम विद्रोह

मुहम्मद शाह के शासन काल के प्रारम्भ मे ही महाराजा अजीतसिंह का विद्रोह हुआ। यह पिछले कुछ महीनो की घटनाओं की प्रतिध्वनि सी प्रतीत हुई। जब अजीतसिंह ने सुना कि उसे अजमेर व गुजरात की सूबेदारी से हटा दिया गया है (२१ जिलहिज्ज) तो वह ३०,००० सैनिको के साथ नए सूबेदार, खानदौरा के भाई मुजफ्फर खा, को रोकने के लिए अजमेर पहुँच गया। अजीतसिंह को इन सूबो से हटाने का कारण उसकी सैयदों के साथ अत्यधिक घनिष्ठता व पिछले दो-तीन महीनों मे बादशाह के प्रति उसका शत्रुतापूर्ण रुख था। दिल्ली मे सभी मसबदार अजीतसिंह के विरुद्ध अभियान का सचालन करने मे हिचकिचा रहे थे। चूडामरण का पुत्र मोहकमसिंह भी अजीतसिंह से आकर मिल गया था। कुछ ही दिन बाद अजीतसिंह का पुत्र अभयसिंह १२,००० ऊँट सवारो के साथ नारनोल, अलवर, तिजारा व अन्य कस्बो को लूटता हुआ दिल्ली से १६ मील दूर अल्लाहवर्दी की सराय तक आ पहुँचा।[1]

सभवत मुहम्मद अमीन खा की मृत्यु के बाद निजाम की वजीर के पद पर नियुक्ति व जनवरी १७२२ के अन्त तक निजाम के दिल्ली के निकट पहुँचने का समाचार सुनकर अजीतसिंह ने झुक जाना ठीक समझा। उसने बादशाह को लिखा कि जब हैदर कुली खा गुजरात का सूबा लेने आया तो उसने हैदर कुली को तुरन्त वहाँ का चाज सौप दिया था और यदि मुजफ्फर खा भी आता तो वह अजमेर का सूबा उसे सौप देता। परन्तु मुजफ्फर खा अजमेर तक पहुँचा ही नही। नारनोल व अन्य नगरो पर हमले के लिए मेवातियो को दोषी ठहराते हुए उसने बादशाह के प्रति अपनी भक्ति के बारे मे आश्वासन दिया और दरबार मे आने के स्थान पर जोधपुर रहते हुए ही बादशाह की सरकार की दिनो-दिन उन्नति हेतु ईश्वर से प्रार्थना करते रहने

1. शिवदास, पत्र 76 बी-78, खाफीखां, 937, इरविन, 2, पृ० 108, टॉड, 2, पृ० 70।

की अनुमति मांगी। शासन काल के आरम्भ मे ही मारवाड के अभियान मे न उलझ कर और खानदोरा के सरकार की खराब आर्थिक स्थिति के तर्क को स्वीकार करते हुए बादशाह ने अजीतसिंह को क्षमा करना ही उचित समझा।[1]

जयसिंह का जाटों के विरुद्ध दूसरा अभियान

इन दिनो अजीतसिंह के विरुद्ध अभियान के लिए दिल्ली मे जो तैयारियाँ की गई, जयसिंह ने उनमे कोई भाग नही लिया। कुछ महीने पश्चात् उसे चूडामण के विरुद्ध जाने को कहा गया। चूडामण सैयदो के गुट के अतरग सदस्यो मे से था। हसनपुर के युद्ध मे उसने बादशाह की सेना के पीछे की ओर अकस्मात् आक्रमण कर सैयदो के प्रति अपनी मित्रता का परिचय दिया था। उसने अजीतसिंह के विद्रोह के समय उसे सहायता दी थी और उसके कुछ समय बाद बुंदेलो को इलाहाबाद के नायब सूबेदार के विरुद्ध भडकाया था। कुछ दिन पूर्व उसके पुत्र ने आगरे के सूबेदार सादत खा के नायब नीलकठ नागर की एक जाट गाव को लूट कर आते समय हत्या कर दी थी। चूडामण को दबाने के लिए पहले तो सादत खा को भेजा गया, परन्तु वह कुछ नही कर सका तो यह कार्य सवाई जयसिंह को सौपा गया।[2]

जयसिह अपने दूसरे व अन्तिम जाट अभियान के लिए आगरे का सूबेदार बनाए जाने की घोषणा (सितम्बर १७२२) के बाद दिल्ली से रवाना हुआ।[3] उसके साथ राजा गिरधर बहादुर, ओरछा का उद्योतसिंह, कोटा का महाराव अर्जुनसिंह व अनेक मंसबदार नियुक्त किए गए जिससे सेना की कुल संख्या ५०,००० तक हो गई। उसे पर्याप्त संख्या मे तोपे व अन्य सामान दिया गया व खर्च के लिए दो लाख रुपये भी दिए गए।

जयसिंह के थूण पहुँचने से पहले ही चूडामण ने गृह कलह से तग आकर आत्महत्या कर ली थी।[4] इससे जयसिंह का काम आसान हो गया। कुछ समय पूर्व चूडामण ने अपने भतीजे बदनसिह को नजरबंद कर दिया था, परन्तु बाद मे और जाट नेताओ की सिफारिश पर उसे रिहा कर दिया था। बदनसिह भाग कर आगरे मे सादत खां से मिला। २१ सितम्बर को जब जयसिह थूण की तरफ बढ़ रहा

---

1. शिवदास, पत्र 83-84 'बी', सीअर, 1, पृ. 231; इरविन, 2, पृ. 111-12।
2. इरविन, 2, पृ. 121.।
3. फरमान, कपटद्वारा कागजात, नं 36/ए जयसिंह को मथुरा की फौजदारी भी दी गई थी।
4. शिवदास, 78 (ए), इरविन, 2, पृ 122।

था, वह आकर उससे (जयसिह) मिला। ड्योढी पर राजा अयामल (आबेर का दीवान), ठाकुर दीपसिह, ठाकुर मोहनसिह नाथावत व बुद्धसिह ने उसका स्वागत किया और उसे अन्दर के दीवानखाने मे ले आए। जब महाराजा अन्दर से निकल कर आया तो बदनसिह ने कदमपोसी की एक घोडे का साज भेट किया और उसे स्वीकार करने का आग्रह किया।[1]

थूण किले के पास पहुँचने पर जयसिंह ने चारो ओर के जगल को कटवा कर तोपो को किले की ओर बढाने की आज्ञा दी। अनेक बार जाटो ने जयसिह के इन प्रयत्नो को विफल करने की कोशिश की परन्तु हर बार उन्हे पीछे हटना पडा। लगभग डेढ माह मे थूण के निकट की दो गढियो को अच्छी तरह घेर लिया गया। नवम्बर के महीने मे एक राठौड सेना के जाटो की मदद के लिए आने की आशका उत्पन्न हो गई परन्तु यह सेना जोबनेर (जयपुर से २६ मील उत्तर-पश्चिम) से लौट गई। जब चूडामण के पुत्र मुहकमसिह ने देखा कि किले को बचाना कठिन है तो वह बारूद के जखीरे मे आग लगाकर भाग निकला।[2]

किले मे काफी मात्रा मे नगदी, जवाहिरात हथियार आदि मिले जिन्हे जयसिह ने दिल्ली भिजवा दिया। परन्तु किले की विजय से कही अधिक महत्वपूर्ण मुगलो से मान्यता प्राप्त शान्तिप्रिय जाट शक्ति की स्थापना थी। दीर्घकाल के बाद इस प्रदेश मे लूट खसोट बन्द हुई और मुगल सेनाओ द्वारा गावो की बर्बादी और निर्धन किसानो का विनाश समाप्त हुआ। दिल्ली और आगरा के बीच शाह राह पर अब पथिक व व्यापारी निश्चिन्त होकर आ जा सकते थे। बदनसिह जाट के योग्य नेतृत्व मे जाटो ने हर क्षेत्र मे प्रगति की और उन्हे वे सब लाभ प्राप्त हुए जो एक वैधानिक शक्ति के अन्तर्गत व्यवस्थित शासन मे सहज ही उपलब्ध होते है। २३ नवम्बर, १७२२ को बदनसिह ने जयसिह को अपना सर्वोपरि मानकर एक समझौता किया। इस अवसर पर जयसिह ने बदनसिंह को पगडी पहनाई और उसे निशान, नगाडा, पचरगा ध्वज व ब्रजराज की उपाधि दी। १९ जून को बदनसिह ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसमे उसने दरबार (जयसिंह) की सेवा करने व ८३,००० रुपये प्रति वर्ष पेशकश देना स्वीकार किया[3]। वह अनेक बार जयसिह के दशहरा दरबारो मे उपस्थित हुआ और जयपुर के अन्य ठाकुरो की भाँति सवाई

1. दस्तूर कोमवार, 7, पृ. 435।
2. उपरोक्त वृत्तान्त के लिए खफीखां, 945, सीअर, 1, पृ. 259, पंचोली रायचन्द-सवाई जयसिह, 28 अक्टूबर 1722, ज आ. राठौड सेना विजयराज भंडारी की अध्यक्षता में थी जाटों ने महाराजा को तीन लाख रुपये अगाऊ व सेना का रोज का व्यय देने का वचन दिया था।
3. कपटद्वारा कागजात न. 73।

जयसिंह के नव निर्मित नगर जय नगर मे उसने अपने लिए एक हवेली भी बनवाली[1] । उसने राजा कहलाने की अपेक्षा ठाकुर और बाद मे राव की पदवियो से ही सतोष किया ।

बदनसिंह ने जयसिंह के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बराबर बनाए रखे और उसे पूर्ण आदर दिया । १७३८ मे बदनसिंह ने अपने पुत्र सूरजमल के साथ एक जाट दस्ता भेजा जिसने जयसिंह के बडे पुत्र ईश्वरी सिह के साथ निजाम के बाजीराव पेशवा के विरुद्ध भोपाल अभियान मे भाग लिया । अगले वर्ष जयसिंह ने बदनसिंह को परगना खोरी मे मेवो के विद्रोह को दबाने के उपलक्ष मे एक खिल्लत प्रदान की[2] । तत्कालीन पत्रो मे उसका जयसिंह से मिलने का अन्तिम उल्लेख ५ फरवरी १७४१ का है । जयसिंह डीग मे था और वहाँ से बदनसिंह के शिविर मे गया । इस अवसर पर बदनसिंह के लिए तत्कालीन कागजो मे पहली बार राव की पदवी प्रयुक्त की गई है । यह हम देख चुके है कि १७१३ मे चूडामण को भी फर्रूखसियर ने राव की पदवी दी थी । बदनसिंह की ७ जून, १७५६ को मृत्यु हुई । उस समय तक उसने राज्य का भार अपने पुत्र सूरजमल को सौप दिया था । डीग, वायर, साहर आदि मे उसके बनवाए हुए महल व बाग आदि उसकी सूझ-बूझ व कलात्मक रुचि का पर्याप्त परिचय देते है ।[3]

अजीतसिंह का दूसरा विद्रोह

अजीतसिह की नाराजगी पहले से ही चली आ रही थी । मार्च १७२२ मे बादशाह की पुन: अधीनता स्वीकार करने व अजमेर का सूबा बहाल किये जाने के बाद भी अजीतसिंह मुगल सरकार की अवज्ञा करने पर तुला हुआ था । पहले तो उसने जाटो की सहायता के लिए फौज भेजी जो किसी कारणवश जोबनेर से वापस बुलाली गई । फिर थूण के पतन के बाद उसने चूडामण के पुत्र मुहकमसिंह को अपने यहाँ आश्रय दिया । इन पर मुगल सरकार ने कोई आपत्ति नही की । परन्तु जब ६ जनवरी १७२३ को उसने नाहर खा, रुहेल्ला खा व उनके साथ के छब्बीस अन्य लोगो की हत्या करवादी तो मुगल दरबार मे क्रोध की लहर दौड गई और अजीतसिंह के विरुद्ध तुरन्त सेना भेजने की तैयारी की जाने लगी । अभियान का नेतृत्व इरादतमद खा को दिया गया और ५०,००० सैनिक व अनेक प्रमुख अफसर उसके साथ नियुक्त कर दिए गए । जयसिह व उसकी सेना इस समय थूण के पास थी । जयसिंह को अकेले अथवा उसके साथ के अफसरो (मुहम्मद खा बहादुर, राजा गिरधर बहादुर, राजा गोपालसिह, याजिद खा मेवाती आदि) के साथ नारनौल

1. स्याह वकाया कागजात, दस्तूर कोमवार, 10, पृ. 1220 ।
2 दस्तूर, 8, पृ 441, 444 ।
3. कानूनगो, पृ. 63-64 ।

पहुँचने को कहा गया। बादशाह ने जयसिंह से उसके पुत्र शिवसिंह के विवाह को स्थगित करने को भी लिखा। जयसिंह इस अभियान मे भाग नही लेना चाहता था और अनेक बार कहे जाने पर ही वह अजमेर के लिये रवाना हुआ जहाँ वह जून के आरम्भ मे पहुँचा।[1]

इरादतमद खा फरवरी के अन्तिम सप्ताह मे दिल्ली से चलकर मई के अन्त मे साभर पहुँचा। उसके आगे बढने पर अजीतसिंह साभर से पीछे हट गया। तारागढ़ के किले मे कुछ सैनिको को छोड वह अजमेर से भी पीछे हट गया। किले का घेरा डेढ महीने तक चला। इस बीच मे शाही दरबार से जयसिंह के पास अनेक बार यह लिखा आया कि वह किसी न किसी तरह अजीतसिंह को समाप्त करदे। परन्तु जयसिंह ने इसमे कोई दिलचस्पी नही दिखाई और इसके लिए बादशाह ने उससे नाराजगी भी प्रकट की।[2]

वास्तव मे जयसिंह का दूसरा ही इरादा था। उसने अजीतसिंह को पत्र भेज कर आग्रह किया कि वह मुगल सरकार से समझौता करले और बीटली से अपने सैनिक बुलाले। जयसिंह ने अपने दीवान राजा अयामल व कुछ ठाकुरो को तारागढ (बीटली) मे ठाकुर अमरसिंह राठौड के पास भेजा। अन्त मे यह तय हुआ कि राठौड़ अपना झंडा फहराते व नगाडे बजाते सम्मानपूर्वक किले से चले जाए गे और उन पर आक्रमण नही किया जायगा। जब राठौड़ फौज बीटली को खाली कर गई तो हैदर कुली खा ने किले की चाबी बादशाह के पास भेज दी (२६ जुलाई)। १३ अगस्त के पत्र मे महाराणा ने जयसिंह के शान्ति वार्ता के प्रयत्नो की सफलता के लिए प्रशसा की और आशा व्यक्त की कि शीघ्र ही महाराजा अजीतसिंह के विरुद्ध मुगल अभियान समाप्त हो जाएगा।[3]

इसी बीच अजीतसिंह मेडता (जो शाही नियत्रण मे था) को लूटता हुआ पश्चिम की ओर चला गया। परन्तु जब उसने देखा कि शाही फौज मेडता की ओर बढ रही है और उसे कही से कोई सहायता मिलने की सभावना नही है तो उसने अपने बडे पुत्र अभयसिंह को सवाई जयसिंह के पास भेजा जिससे वह (जयसिंह) हैदर कुली खा से बातचीत तय करादे। अभयसिंह ४ दिसम्बर, १७२३ को मेडता से १४ मील दूर रीया गाव आया जहाँ शाही सेना का पडाव था और सीधा जयसिंह के पास गया। जयसिंह उसे हैदर कुली खा, इरादतमद खा मुहम्मद खा, बगश आदि से मिलाने के लिए ले गया। लम्बी बातचीत के बाद यह तय हुआ कि अभयसिंह इरादतमद खा के साथ दिल्ली जाएगा। इन शर्तो की स्वीकृति आ जाने पर शाही सेना वापस

1. इरविन, 2, पृ 112–13, फरमान, 10 फरवरी 1723, ज. आ।
2 इरविन, 2, पृ. 113–114, फरमान, 20 जुलाई 1723, ज. आ.।
3. महाराणा–जयसिंह, 13 अगस्त 1723, ज, आ.।

लौट पडी। सेना ८ अप्रेल, १७२४ को साभर पहुँची। यहाँ से जयसिंह आवेर की ओर चला गया और इरादतमद खा अभयसिह के साथ दिल्ली की ओर रवाना हो गया। बादशाह अभयसिह से अच्छी तरह मिला परन्तु उसे अपने पास रोक लिया।[1]

१७१० के वाद अजीतसिह का यह तीसरा विद्रोह था और वादशाह मुहम्मद शाह के शासनकाल मे दूसरा। यह विद्रोह बिल्कुल निरर्थक था और इससे उसे किसी प्रकार का लाभ नही हुआ। सच तो यह है कि अजीतसिह के विद्रोहो, अस्थिर नीतियो व विश्वासघात का यदा-कदा सहारा लेने के कारण मुगल सरकार का उस पर से बिल्कुल विश्वास उठ गया। यदि अजीतसिंह अपनी नीतियो मे इतनी अस्थिरता न रखता तो वह जयसिंह की सहायता से सैयदो के पतन के वाद भी अपनी स्थिति यथावत रख सकता था। परन्तु उसने अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर अपना काम निकालना चाहा और इसमे वह असफल रहा। उसकी सन्देह करने की व अत्यधिक उत्तेजित हो जाने की प्रकृति से उसे अनेक वार हानि उठानी पडी। उसकी नीतियाँ, आचरण व व्यवहार वहुधा अतिरेक की सीमा पार कर जाते थे और अदूरदर्शिता के अनियंत्रित आवेग मे वह अनेक बार ऐसी भूले कर बैठता था जिनसे वह विना किसी प्रयत्न के बच सकता था।

जयसिह के कोटा के साथ सम्बन्ध

हम यह देख चुके है कि फर्रूखसियर के अपदस्थ किए जाने के वाद सैयदो के कहने पर महाराव भीमसिह ने बूंदी पर अपना अधिकार जमा लिया था। परन्तु नवम्वर, १७२० तक सैयदो का पतन हो गया और जयसिंह ने बूंदी पुन महाराव बुद्धसिंह को दिलवा दी। १७२० के बाद जयसिंह की कोटा-बूंदी के प्रति नीति की सतर्कतापूर्वक जॉच करने की आवश्यकता है। यह बहुधा कहा गया है कि जयसिंह हाडौती को अपने मातहत करना चाहता था और महाराव बुद्धसिंह को बूंदी से अपदस्थ करने के लिए उसकी कटु आलोचना की गई है[2]। आगे के पृष्ठो मे यथा स्थान जयसिंह के कोटा-बूंदी के साथ सम्बन्धो की विवेचना की गई है। यहाँ केवल जून, १७२० मे महाराव भीमसिह की मृत्यु के बाद कोटे के साथ उसके सम्बन्धो के वारे मे सक्षेप मे लिखेगे।

भीमसिंह की मृत्यु के वाद उसका बडा पुत्र अर्जुनसिंह कोटा की गद्दी पर वैठा। महाराव अर्जुनसिंह के जयसिह के नाम अनेक पत्र जयपुर ऐतिहासिक पत्र सग्रहालय मे सुरक्षित है जो उन दोनो के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धो पर प्रकाश डालते है। अक्तूबर, १७२३ मे अर्जुनसिह की असामायिक मृत्यु के बाद उसके दो भाईयो-श्यामसिंह व दुर्जनसाल (जो श्यामसिह से छोटा था) मे कोटा की गद्दी के लिए लडाई

1. इरविन, 2, पृ 114, दस्तूर कोमवार, 18।
2. जैसे टाड 2, पृ. 414, मालवा, पृ. 179।

हुई। यह बहुधा कहा जाता है कि जयसिंह व महाराव दुर्जनसाल के बड़े खराब सम्बन्ध रहे और बुद्धसिंह को बूंदी पुन. दिलवाने के लिए दुर्जनसाल अनेक बार जयसिंह के विरुद्ध लडा। यह भी कहा गया है कि जयसिंह ने श्यामसिंह का समर्थन किया था।[1] परन्तु तत्कालीन पत्र इस विवरण से भिन्न वृत्तान्त देते है।

सालिमसिंह हाडा के ८ दिसम्बर, १७२३ के पत्र से ज्ञात होता है कि ७ दिसम्बर को जब श्यामसिंह अपनी फौज के साथ पालकरन पहुँचा तो दुर्जनसाल सीसवाली मे था। मालवा से लगभग १००० रुहेले भी आ पहुँचे थे और दोनो ही पक्ष इनको अपनी ओर करना चाहते थे। इनके अलावा दलेल खा भी आ गया था और वह अधिक पैसा देने वाले पक्ष का साथ देने को तैयार था। सालिमसिंह के साथ बूंदी की फौज दोनो राज्यो की सीमा पर थी। सालिमसिंह ने जयसिंह को लिखा कि वह रुहेले व पठानो को कोटा के आन्तरिक झगडे मे हस्तक्षेप करने से रोके। ऐसा प्रतीत होता है कि जयसिंह के मना करने पर ये लोग वापस लौट गए। १२ दिसम्बर, १७२३ के दिन दोनो पक्षो मे युद्ध हुआ। इसमे दुर्जनसाल की विजय हुई और श्यामसिंह मारा गया।[2] इसके बाद जयसिंह व दुर्जनसाल के आपसी सम्बन्ध दिनोदिन घनिष्ट होते गए और १७२६–२७ मे जब एक व्यक्ति ने अपने आपको श्यामसिंह कह कर कोटा मे उपद्रव करना चाहा तो जयसिंह ने दुर्जनसाल की सहायता की।[3] इससे यह प्रतीत होता है कि जयसिंह ने श्यामसिंह को कोई सहायता नही दी थी, जैसा कि बहुधा कहा जाता है।

जयसिंह व बुंदेले शासक

इस समय के जयसिंह के नाम छत्रसाल बुंदेला, ओरछा के उद्योतसिंह दतिया के रामचद्र, हिरदे साह (छत्रसाल का पुत्र) आदि के लिखे बीसियो पत्र मिलते है और जयसिंह द्वारा उन्हे भेजे गए अनेक पत्रो की नकले मिलती है जिनसे ज्ञात होता है कि उसके बुंदेल खण्ड के राजाओ के साथ बडे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे और वे लोग मुगल दरबार से सम्बन्धित अपने मामलो को बहुधा जयसिंह के ही मार्फत तय करवाते थे। जब भी उन पर कोई विपत्ति आती या उनका आपसी झगडा भडक उठता अथवा मालवा व इलाहाबाद सूबे के मुगल अधिकारियो से उनकी टक्कर हो जाती, तो वे जयसिंह की सहायता व मुगल दरबार मे उनके पक्ष

---

1. जैसे शर्मा, कोटा, 1, पृ. 338–39, वीर विनोद मे तो यहा तक लिखा (पृ 1416) है कि श्यामसिंह की हार के बाद जयसिंह ने उसे अपने यहाँ आश्रय दिया और 1728 मे उसे फौज देकर महाराव दुर्जनसाल के विरुद्ध भेजा।
2. सालिमसिंह हाडा–सवाई जयसिंह, 8 दिसम्बर, 1723, ज आ।
3. आगे देखिए, पृ ।

मे समर्थन के लिये उस पर निर्भर करते। जयसिंह व छत्रसाल के आरम्भ मे ही अच्छे सम्बन्ध थे। हम १७०८--१० मे राजपूत सघर्ष के आरम्भ मे जयसिंह को छत्रसाल को लिखे पत्र का उल्लेख कर चुके है जिसमे उसने बुंदेलो को उनके क्षेत्र मे मुगलो के विरुद्ध सघर्ष छेडने के लिए लिखा था। १७१० मे राजपूतो व मुगल सरकार मे समझौता करवाने मे भी छत्रसाल बुंदेला का सहयोग रहा था। १७१४-१६ मे जब जयसिंह मालवा का सूबेदार था तो वह छत्रसाल के निकट सम्पर्क मे आया। दोनो ने मराठो व पठानो के विरुद्ध अभियानो मे सक्रिय भाग लिया। १७१९-२० मे जयसिंह ने सैयदो के विरुद्ध अपने जीवन मृत्यु सघर्ष के दिनो मे छत्रसाल से बराबर सम्पर्क बनाए रखा और जयसिंह के कहने पर बुंदेलो ने राजा गिरधर बहादुर की सहायता भी की।[1] यद्यपि कभी-कभी उनमे आपस मे मन-मुटाव हो जाता था परन्तु वह अधिक समय तक नही रहता था और उनके सम्बन्ध शीघ्र ही सामान्य हो जाते थे।

१७२० से अपनी मृत्यु (१७३१) तक छत्रसाल को मुहम्मद खा बगश से जूझना पडा। इसका यह कारण था कि पूर्वी बुन्देल खण्ड का बड़ा भाग इलाहाबाद सूबे मे था जो अब्दुल्ला खा की पराजय के बाद बंगश को दिया गया था। मई १९२१ मे छत्रसाल ने बंगश के एरच, कालपी व भाडेर मे नायब, दिलेर खा को हरा दिया। १० मई १७२१ के पत्र मे उसने जयसिंह को लिखा कि जो पठान जमना पार कर गए थे, वो बच गए, परन्तु जो पैलानी की ओर गए वे मारे गए। कुछ दिन बाद ही एक दूसरी मुठभेड मे दिलेर खा मारा गया। छत्रसाल ने जयसिंह को लिखा कि यह सब उसकी (जयसिंह) इच्छानुसार हुआ है और यदि उस बारे मे कुछ झगडा खडा हो तो वह उससे निपट ले। जुलाई १७२२ मे छत्रसाल ने महोबा से अपने दीवान रसिक राय को जयसिंह के पास बगश की समस्या के बारे मे सलाह लेने भेजा। अप्रेल १७२५ मे चदेलो का पीछा करते हुए सादत खा जमुना पार कर छत्रसाल की सरहद मे आ गया। छत्रसाल ने तुरन्त १३-१४ हजार सवार उसको आगे बढने से रोकने के लिए भेज दिए। १२ अप्रेल, १७२५ के पत्र मे इसका विवरण देते हुए उसने जयसिंह को लिखा कि सादत खा जमुना पार कर वापस चला गया परन्तु वह बहुत छटपटा रहा है। १७२४-२५ मे चाहते हुए भी बगश बुंदेलो के विरुद्ध कोई अभियान शुरू नही कर सका। इसका कारण यह था कि बुंदेलो की एक बडी सेना बघेलखंड मे डटी हुई थी। १७२७ मे जब हिरदे साह ने बघेलखण्ड ले लिया तो बगश को बुंदेलो के विरुद्ध जाने का हुक्म मिला। जनवरी १७२७ मे उसने जमुना पार की। परन्तु मुगल सरकार इस क्षेत्र मे यथा संभव युद्ध बढाना नही चाहती थी। इसलिए बादशाह ने जयसिंह को छत्रसाल से पत्र व्यवहार कर

1. पीछे देखिए, पृ ।

बीच बचाव करा देने के लिए लिखा।[1] कुछ दिन बाद छत्रसाल की आज्ञा पर हिरदेसाह ने रीवा बघेलो को लौटा दिया। इस मामले मे जयसिंह व छत्रसाल के बीच कुछ अनबन हो गई। छत्रसाल को मालूम पडा कि जयसिंह ने बघेलखण्ड लेने के हिरदेसाह के प्रयत्न को बहुत बुरा माना है और उसने (जयसिंह) बंगश को बु देलो के विरुद्ध भेजे जाने का समर्थन भी किया है। जब छत्रसाल ने उसके प्रति जयसिंह की उदासीनता की शिकायत की तो जयसिंह ने लिखा (१३ मार्च, १७२७) कि उनके सम्बन्ध मिर्जा राजा जयसिंह के समय से है। जब बघेलो का मामला उठा तो छत्रसाल को उसे सूचित करना चाहिए था। जयसिंह ने लिखा कि उसके बारे मे उनके (छत्रसाल के) मन मे किसी प्रकार की शका उत्पन्न नही होनी चाहिए और उन्हे यह नही सोचना चाहिए कि वे दोनो एक दूसरे से दूर होते जा रहे हे।[2]

छत्रसाल के ऐसे भी अनेक पत्र मिलते है जिनसे ज्ञात होता है कि वह राजपूत राज्यो मे होने वाली घटनाओ मे बराबर दिलचस्पी लेते थे। छत्रसाल एक पत्र मे, जो १७२०-२३ के बीच का प्रतीत होता है, जयसिंह से अजीतसिंह व बादशाह के बीच सुलह कराने पर बल देते है। १७२६ मे जब कोई व्यक्ति श्यामसिंह बन कर कोटा मे उपद्रव करने लगा तो छत्रसाल ने महाराव दुर्जनसाल से उसके बारे मे विस्तृत जानकारी मागी। परन्तु जयसिंह स्वय कोटा को मदद कर रहा था और छत्रसाल बंगश से उलझे हुए थे। इसलिए जयसिंह ने दुर्जनसाल को इस मामले के बारे मे छत्रसाल को न लिखने की ही सलाह दी।[3]

जयसिंह के छत्रसाल के पुत्र हिरदेसाह व राजा उद्योतसिंह (ओरछा), राव रामचंद्र (दतिया), पृथ्वीसिंह (सतहद्यी) से भी अच्छे सम्बन्ध रहे। जयसिंह बु देला राजाओ को छत्रसाल के बंगश के विरुद्ध सघर्ष मे पूरा सहयोग देने को प्रेरित करता रहता था। जिससे की बंगश पूर्वी बु देलखड मे अपने पाव नही जमा सके।[4] बु देले राजा यदा-कदा जयसिंह को उसकी सलाह, सहायता व समर्थन के लिए लिखते रहते थे।[5] उनके जयसिंह के नाम पत्र उनके आपस के सौहार्दपूर्ण सम्बन्धो का

1. उपरोक्त वृत्तान्त छत्रसाल के जयसिंह को 10 मई 1721, श्रावण बदि 2, सं 1779 (1722), 12 अप्रेल 1725 के पत्र (ज आ), भगवानदास, पृ 77, 82 व जयसिंह छत्रसाल के नाम फारसी पत्र (जनवरी-फरवरी 1727) पर आधारित है।
2. जयसिंह-छत्रसाल, ड्राफ्ट, 13 मार्च 1727, ज. आ छत्रसाल अपने पुत्र के रीवा के जीतने के विरुद्ध थे। हिरदेसाह रीवा जीतकर अपना एक स्वतन्त्र राज्य बनाना चाहता था। (भगवानदास पृ, 82, टिप्पणी)।
3 जयसिंह-महाराव दुर्जनसाल, ड्राफ्ट खरीता, 15 फरवरी, 1727, ज आ।
4. भगवानदास, पृ 77. टिप्पणी 7।
5. एक पत्र मे (श्रावण [ ] स. 1779), छत्रसाल ने जयसिंह को लिखा कि वह पृथ्वीसिंह को राजा रामचंद्र के साथ मैत्रीपूर्ण संबध बनाए रखने की सलाह दे। राजा पृथ्वीसिंह 8 मई 1723 के जयसिंह के नाम पत्र मे लिखता है कि वह (जयसिंह) हिन्दुस्तान के समस्त राजाओं के सरदार है और वे सभी उसके प्रति श्रद्धालु है।

परिचय देते है। इन पत्रो मे राजनीतिक घटनाओ से लेकर पूर्णतया निजी बातो के प्रसग भी मिलते है। जैसे एक पत्र मे जयसिंह नील कमल के बीज भेजने के लिए लिखता है या छत्रसाल बु देला उसके लिए घोडे लाने वाले व्यापारियो को मार्ग मे आवश्यक सुविधाएँ दिलवाने के लिए जयसिंह को पत्र भेजता है। ये सभी पत्र जयसिंह व बु देलो के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो के परिचायक है।

जयसिंह व नरवर

जयसिंह ने नरवर की भी समय-समय पर सहायता की। यद्यपि राजा गजसिंह सैयदो के प्रमुख समर्थको मे से था, उसकी निजाम के विरुद्ध युद्ध मे मृत्यु के बाद जयसिंह ने उसके पुत्र छत्रसिंह का बराबर समर्थन किया। राजा छत्रसिंह को शाहाबाद परगना मिला था। १७२३ मे देवीसिंह ठठेरा ने, जिसकी शाहाबाद के महलो मे कुछ जमीन थी, धिराजसिंह खीची (बजरगगढ) की सहायता लेकर नरवर से झगडा किया। छत्रसिंह ने तब जयसिंह से धिराजसिंह को ढढेरो की सहायता न करने के लिए लिखने को कहा।[1] इस भाँति दिसम्बर १७२५ मे बगश के अलापुर मे अमीन पीर खा सात हजार पठानो को लेकर नरवर के विरुद्ध आया परन्तु नरवर के दीवान खाडेराय ने उसे भगा दिया। ६ जनवरी, १७२४ के पत्र मे छत्रसिंह ने इस घटना का विवरण जयसिंह के पास भेजा और निवेदन किया कि वह (जयसिंह) मुहम्मद खा बगश को लिख दे कि गलती पीर खा कि ही थी।[2] ये हमे छोटी घटनाएँ लगती है परन्तु इस छोटी रियासतो के लिये इनका बडा महत्व था और जयसिंह का उनके पक्ष मे एक शब्द भी बहुधा उनकी समस्या हल कर देता था।

कुछ वर्ष बाद जयसिंह ने नरवर को बडी विकट स्थिति मे से उभारा। १७२७ के अन्त मे सैयद नजमुद्दीनअली खा (जिसे हाल ही मे ग्वालियर, रानोद व शाहाबाद की फौजदारी मिली थी) ने नरवर मे उन जमीदारो को बसाना शुरू कर दिया था जिन्हे छत्रसिंह ने निकाल दिया था। इससे लडाई भडक उठी। अक्टूबर १७२७ मे नज्मुद्दीन अलीखा, निजाबत अलीखा, शाह अलीखा, राजा पृथ्वीसिंह बु देला व दलेल खा पठान के साथ आया और नरवर को घेर लिया। लगभग दो सप्ताह मे ही नरवर की स्थिति बिगड गई। ११ नवम्बर के पत्र मे खाडेराय ने सहायता मागते हुए जयसिंह को याद दिलाया कि जब राजा गजसिंह की मृत्यु (जून १७२०) के बाद मुहम्मद अमीन खा ने नरवर को हानि पहुँचाने का प्रयत्न किया था तब भी महाराजा (जयसिंह) ने उन्हे बचाया था। नवम्बर के अन्त तक नरवर की स्थिति और बिगड गई। २८ नवम्बर के पत्र मे खाडेराय ने जयसिंह

1 राजा छत्रसिंह का जयसिंह को पत्र 6 जनवरी 1724, ज. आ।

2. छत्रसिंह–जयसिंह, 1 जनवरी 1724, खाडेराय–जयसिंह, 13 जनवरी 1724, ज. आ.।

को लिखा कि यदि मदद तुरन्त नही आई तो किले मे स्त्रियो को जौहर करना पडेगा। उसने लिखा कि महाराजा खानदौरा से नज्मुद्दीन अली खा के नाम नरवर का घेरा तुरन्त हटाने के लिए लिखवाए। जयसिह ने तुरन्त एक फौज रवाना करदी जिसके पास आते ही, जैसा राजा छत्रसिंह ने २४ जनवरी, १७२८ के पत्र मे जयसिंह को लिखा, शत्रु बिना नगाडे बजाए भाग खडे हुए[1]।

इस प्रकार इन राज्यों की बार-बार सहायता करने से मुगल दरबार मे जयसिंह इनके हितो का प्रवक्ता स्वीकार किया जाने लगा और इन राज्यो के आपसी झगडो मे उसकी मध्यस्थता स्वीकृत की जाने लगी। सच तो यह है कि इस समय ऐसी कोई हिन्दू शक्ति नही थी जो जयसिह की सहायता अथवा मध्यस्थता की इच्छुक न थी और जो मुगल अथवा मराठो के साथ उनके सबधो मे उसकी सलाह अथवा मदद न लेती थी।

महाराजा अजीतसिंह की हत्या, अभयसिंह पर इस कार्य के लिए मुगल दरबार में दबाव

यह हम देख चुके है कि अजीतसिंह द्वारा अधीनता स्वीकार करने के बाद अभयसिंह इरादतमद खा के साथ दिल्ली चला गया था जहाँ बादशाह ने उसे अपने पास रोक लिया था। कुछ दिन बाद २३ जून, १७२४ को जोधपुर मे महाराजा अजीतसिंह की उनके शयन कक्ष मे उन्ही के छोटे पुत्र बख्तसिह ने अपने बडे भाई अभयसिह के कहने पर हत्या करदी।[2] जैसे ही अजीतसिंह की हत्या का समाचार दिल्ली पहुँचा, अभयसिंह को जोधपुर का राजा स्वीकार कर लिया गया। बादशाह ने अभयसिंह को ७०००/७००० का मसब व राज राजेश्वर का खिताब दिया। साथ ही नागौर, केकडी, फूलिया आदि परगने जो १७२३ मे जब्त किए गए थे। उसे दे दिए गए।[3] जयसिंह इस समय आगरा मे था। ५ जुलाई को उसने अभयसिंह के राजतिलक के अवसर पर कुछ उपहार भेजे। अगले कुछ दिनो मे यह स्पष्ट हो गया कि महाराजा अजीतसिंह की हत्या के कारण मारवाड मे व्यापक असन्तोष है और अभयसिंह व बख्तसिंह का वहाँ कडा विरोध होगा। सभवत जयसिंह की सहायता की आवश्यकता को समझकर अभयसिंह ने मथुरा पहुँच कर जयसिंह की पुत्री से विवाह भी कर लिया (१ अगस्त, १७२४)। ऐसा कहा गया है, और इसमे सच्चाई प्रतीत होती है कि बादशाह व उसके सलाहकारो ने अभयसिंह पर उसके

---

1. उपरोक्त वृत्तान्त खाडेराय के जयसिंह के नाम 11, 28 नवम्बर, 22 दिसम्बर, 1727 के पत्रों व छत्रसिंह का 24 जनवरी, 1728 के पत्र पर आधारित है। खाडेराय ब्राह्मण मथुरालाल का पुत्र नरवर का दीवान था।
2. वीर विनोद 2, पृ 842, ओझा, जोधपुर, 2, पृ. 600।
3 ओझा, जोधपुर 2, पृ. 605, इरविन, 2, पृ 115।

पिता की हत्या करवाने के लिए बहुत दबाव डाला। अभयसिंह से कहा गया कि पिछले वर्षो मे अजीतसिंह के कार्यो व आचरण के कारण बादशाह उसे जोधपुर से हटाने के लिए कटिबद्ध है और यदि उसे (अभयसिंह) जोधपुर का राज्य भोगना है तो वह अजीतसिंह को समाप्त करवा दे। उससे कहा गया कि यदि बादशाह ने जोधपुर खालसा कर लिया तो लडाई होगी और बहुत से राजपूत मारे जाएंगे। इसलिए महाराजा को खत्म करवा देना ही ठीक है, बजाय इनके कि सैकडो राठौड मारे जावे। जब अभयसिंह ने सकोच प्रदर्शित किया तो उससे पूछा गया कि क्या वह अपने पिता के जीवन को पितृ भूमि के हितो की अपेक्षा अधिक महत्व देगा ?[1]

इसमे कोई सशय नही कि महाराजा अजीतसिंह की हत्या के कारण व्यक्तिगत नही थे और कामवर खा के यह कहने मे कोई सच्चाई नही है कि अपने छोटे पुत्र बख्तसिंह की पत्नी से अवैध सबधो के कारण बख्तसिंह ने अपने पिता की हत्या की थी।[2] बाद की घटनाओ से यह स्पष्ट है कि इस कार्य मे बख्तसिंह व अभयसिंह दोनो का ही हाथ था। जैसा हम देखेगे यह न केवल तत्कालीन पत्रो से स्पष्ट हो जाता है बल्कि उन दोनो मे अजीतसिंह की हत्या के बाद वर्षो तक घनिष्ठ सबध रहने और बख्तसिंह को नागौर आदि दिए जाने से भी सिद्ध होता है।

जयसिंह के विरुद्ध आरोप का संदेहात्मक आधार

जिन लोगो ने बादशाह व उसके प्रमुख सलाहकारों के कहने पर अभयसिंह को उसके पिता की हत्या करवा देने की राय दी, उनमे रघुनाथ भंडारी व जयसिंह का नाम भी आता है। परन्तु हम यह देख चुके है कि १७२० के बाद जयसिंह के अजीतसिंह के साथ अच्छे सबध हो गए थे और १७२३ मे अजीतसिंह व मुगल सरकार मे समझौता कराने मे उसने प्रमुख भाग लिया था। दूसरे, जयसिंह ने हत्या आदि करवाने मे कभी उत्साह प्रदर्शित नही किया था। १७१७ व १७२३ मे क्रमशः चूडामरण जाट व अजीतसिंह को किसी न किसी तरह समाप्त करने के लिए उसे कहा गया था परन्तु उसने इन सुझावो मे कोई दिलचस्पी नही दिखाई थी। इसलिए बिना किसी विश्वस्त प्रमाण के निश्चयपूर्वक यह कहना कठिन है कि जयसिंह ने भी अभयसिंह को महाराजा अजीतसिंह की हत्या करवाने की सलाह दी थी। हम यह भी देखते है कि हत्या के बाद मारवाड मे सामान्य स्थिति पुनः स्थापित करने मे महाराणा सग्रामसिंह व सवाई जयसिंह ने मिलकर प्रयत्न किया था। यदि हत्या मे जयसिंह का हाथ होता तो महाराणा जयसिंह का साथ न देते। इस समय की मारवाड की स्थिति के बारे मे उन दोनो के अनेक पत्र मिलते है जिनमे उनका एक

1 जोधपुर ख्यात, 2, पृ 115, ओझा, जोधपुर, 2, पृ 600, नोट 1, वंशभास्कर, 3082-83, टाड 1, पृ. 583।

2. देखिए इरविन, 2, पृ. 117।

ही उद्देश्य दृष्टिगोचर होता है और वह यह है कि वहाँ गृह-युद्ध समाप्त किया जाय और मुगल व मराठा हस्तक्षेप न होने दिया जाय।

मारवाड़ मे अभयसिंह के विरुद्ध व्यापक विरोध, जयसिंह व महाराणा का हस्तक्षेप

महाराजा अजीतसिंह की हत्या से सारे मारवाड मे क्रोध की लहर दौड गई। यद्यपि अभयसिंह को बादशाह ने जोधपुर का राजा बना दिया था परन्तु वहाँ के सरदार व आम लोगो ने बख्तसिंह व अभयसिंह का कडा विरोध करने का निश्चय किया। राठौड ठाकुरो ने भडारी अफसरो को, जिनका हत्या मे हाथ था, नजरबन्द कर दिया और वे महाराजा के दूसरे पुत्रो—आनन्दसिंह, रायसिंह आदि, का समर्थन करने लगे। हत्या के बाद जब बख्तसिंह को महल मे घेर लिया गया तो उसने राठौड सरदारो को अभयसिंह का वह पत्र बताया जिसमे उसे महाराजा को मार देने के लिए लिखा था। परन्तु इसके बाद भी सरदारो ने बख्तसिंह को नजरबन्द कर दिया। केवल दो-चार ठाकुर, जैसे ठाकुर शिवसिंह व ठाकुर संतोखसिंह, अभयसिंह का समर्थन कर रहे थे और उन्होने सोजत से धनरूप भडारी व मेडता मे खेमसी भडारी को, जिन्हे नजरबन्द कर दिया गया था, छुडवा लिया। परन्तु जब केसरीसिंह नरूका के नेतृत्व मे आमेर की एक बडी फौज मेडता पहुँची (२८ अक्टूबर १७२४) तो स्थिति बदलने लगी। नरूका ने स्थिति का अध्ययन कर सवाई जयसिंह को और फौज भेजने को लिखा (३१ अक्टूबर)। उसने लिखा कि यदि संभव हो तो फौज राय शिवदास के साथ भेजी जाय। ११ नवम्बर के पत्र मे जयसिंह ने महाराणा को मारवाड की स्थिति के बारे मे विस्तृत सूचना दी और लिखा कि मेवाड की सेना को, जो कान्ह पचोली के साथ मारवाड भेजी गयी है, तुरन्त वहाँ पहुँचने की आज्ञा भेजी जाय।[1]

इस समय बादशाह के पास सूचना पहुँची कि आनन्दसिंह व रायसिंह का समर्थन करने वाले कुछ राठौड सरदार उन्हे मराठो के पास मदद के लिए बातचीत कराने के लिए जालौर ले गए है। मराठे इन दिनो अहमदाबाद के निकट सक्रिय थे। यद्यपि मराठो ने मारवाड के आन्तरिक मामले मे हस्तक्षेप नही किया और वे गुजरात मे हामिद खा (निजाम का चाचा) व शुजात खा (नव नियुक्त सूबेदार सरबुलंद खा का प्रतिनिधि) के बीच संभावित संघर्ष का लाभ उठाने के लिए वहाँ चले गए, परन्तु उनके हस्तक्षेप की संभावना मात्र ने ही बादशाह को चिन्तित कर दिया और उसने सवाई जयसिंह को तुरन्त जोधपुर जाने की आज्ञा दी (अक्टूबर)।

1. केसरीसिंह नरूका-जयसिंह, रिपोर्ट, 31 अक्टूबर, 1724 (ज. आ)। जयसिंह के महाराणा व नंगजी को 11 नवम्बर 1724 के पत्रों की प्रतिलिपिया, ज आ, वीर विनोद, 2, पृ. 843।

बादशाह ने कहा कि जयसिंह अपने बडे पुत्र शिवसिंह को मथुरा मे फौजदार नियुक्त कर, आवश्यक तैयारी कर, मारवाड मे उत्पन्न स्थिति का अध्ययन करने वहाँ पहुँचे।[1] जयसिंह तब मेडता के निकट रीया गाव मे अभयसिंह से मिला (१८-१९ नवम्बर) और फिर दिल्ली लौट आया। आबेर की फौजे मारवाड मे ही रही परन्तु जून १७२५ मे मेवाड मे मराठो की प्रथम घुसपैठ के कारण महाराणा ने मारवाड से कान्ह पचोली के साथ भेजी गई अपनी फौज तुरन्त वापस बुलवा ली।[2]

राजपूताने मे मराठो की घुसपैठ का आरम्भ होना, जयसिंह व महाराणा की चिंता

यद्यपि राजपूत मराठो के मुगल विरोधी शानदार सघर्ष की नैतिक श्रेष्ठता तथा मूल्य को समझते थे, परन्तु वे उनके उत्तर की ओर बढने की आशका से चिन्तित भी थे। ७ जून, १७११ के मेवाड के बिहारीदास के नाम एक पत्र मे जयसिंह ने मदसौर व कुछ अन्य नगरो मे मराठो द्वारा धन वसूल किए जाने पर चिन्ता प्रकट की थी। जयसिंह ने लिखा था कि मराठो को नर्मदा के उस पार ही रखा जाय।[3] १७१४ मे जब जयसिंह मालवा का सूबेदार बना तो उसने मालवा मे मराठो की घुसपैठ को रोकने का पूरा प्रयत्न किया था। परन्तु मराठे मालवा व गुजरात मे अपना प्रभाव बढाने के लिए दृढ़ सकल्प थे। ये समृद्ध प्रान्त उनके देश के निकट थे, और नए मराठा सरदारो की धन, भूमि, व कीर्ति प्राप्त करने की आकाक्षा यहाँ पूरी हो सकती थी। दक्षिण का अधिकाश प्रदेश पहले से ही दूसरे सरदारो का प्रभाव क्षेत्र था और वहाँ पर उनकी महत्वाकाक्षाओ की पूर्ति की कोई सभावना नही थी।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि जब बालाजी विश्वनाथ सैयद हुसैन अली के साथ दिल्ली गए थे (१७१८) तो उन्हे बादशाह से इन प्रान्तो की चौथ वसूल करने का अधिकार प्राप्त करने के लिए कहा गया था।[4]

१७२२ मे मराठो ने मालवा व गुजरात पर अपना दबाव और बढा दिया। १७२४ मे उन्होने रामपुरा व कोटा बूदी की सीमा पर लूटमार की। अगले वर्ष, जैसा हम लिख चुके है, वे मेवाड की सीमा मे प्रवेश कर गए और मारवाड मे कान्ह पंचोली के साथ भेजी गई मेवाड की सेना को तुरन्त वापस बुलवाना पडा (जून १७२५)। उस वर्ष उन्होने कोटा राज्य मे भी उपद्रव किया।[5] १७२६ के आरम्भ मे उन्होने

1. जयसिंह के नाम फर्मान (अक्टूबर-नवम्बर 1724) ज. आ.। गुजरात की तत्कालीन स्थिति के बारे में देखिए, दिघे, पृ 26-28।
2. कान्ह पचोली-जयसिंह, अर्जदाश्त, 28 मार्च 1725, ज. आ.।
3. जयसिंह-बिहारीदास, ड्राफ्ट परवाना, 7 जून, 1711 ज. आ।
4. देखिए, इर., 1, पृ. 370; पार्टीज, पृ. 196।
5. जयसिंह राठौड़ (कोटा का)-सवाई जयसिंह, 6 जुलाई 1725 ज. आ.।

मेवाड मे फिर प्रवेश कर विस्तृत क्षेत्र मे उपद्रव किया। महाराणा संग्रामसिंह मराठो के बढते हुए उत्पात से बहुत चिन्तित हुए और उन्होने दिल्ली स्थित अपने वकील राय मायाराम को जयसिंह से इस बारे मे सलाह करने भेजा। महाराणा ने पत्र मे लिखा कि मराठो की उपद्रव क्षमता इतनी अधिक है कि यदि साल छैः महीने मे उन्हे नही रोका गया तो सारे हिन्दुस्तान मे अव्यवस्था व बर्बादी फैल जाएगी।[1]

जयसिंह व महाराणा द्वारा निज़ाम को समर्थन देना

इस समय निजाम मराठो की शक्ति को उसके स्रोत पर ही कमजोर करने के उद्देश्य से कोल्हापुर के शम्भाजी को शाहू के विरुद्ध समर्थन दे रहा था। कोटा, बूंदी व रामपुरा मे मराठो के उत्पात, तथा मालवा व गुजरात मे उनके बढते हुए प्रभाव पर चिन्ता प्रकट करते हुए निजाम ने जयसिंह को एक पत्र मे लिखा कि जयसिंह की सलाह पर व महाराणा के प्रति उसके (निजाम) मन मे आदर के कारण उसने शंभाजी को अपनी ओर कर लिया है और उसे शाहू को नष्ट करने के लिए राजी कर लिया है। शाहू की सेना का सर-ए-लश्कर सुलतानजी निम्बालकर उससे मिला और उसे शम्भाजी की सेना का अध्यक्ष बना दिया गया है। निजाम ने लिखा कि उसे आशा है कि शाहू के अन्य समर्थक भी उससे आकर मिल जाएंगे।[2] निज़ाम के इस पत्र से ज्ञात होता है कि जयसिंह व महाराणा को उसके शाहू के विरुद्ध षडयन्त्र के बारे मे पूरी जानकारी थी। स्पष्ट है कि राजपूत राज्यो मे मराठो की बढती हुई घुसपैठ को देखते हुए जयसिंह व महाराणा ने हर सभव तरीके से मराठो के उत्तर की ओर दवाव को कम करना उचित समझा।

परन्तु जयसिंह निजाम के प्रयत्नो से ही सतुष्ट नही हुआ। उसने कोटा, बूंदी जोधपुर आदि राज्यो के नरेशो को लिखा कि वे मराठो के आक्रमणो का मुकाबला करने के लिए तैयार रहे और दक्षिणी राजपूताने मे उनके प्रवेश का समाचार सुनते ही वे तुरन्त वहाँ पहुँचे। उसके इन प्रयत्नो का स्वागत किया गया। २५ नवम्बर, १७२६ के पत्र मे कोटा के महाराव दुर्जनसाल ने लिखा कि मराठो के प्रवेश का समाचार मिलने पर वह तुरन्त उन्हे रोकने के लिए मेवाड पहुँचेगा। महाराव ने लिखा कि हिन्दुस्तान की इज्जत व सुरक्षा जयसिंह के ही प्रयत्नो पर निर्भर है।[3] अन्य राजपूत राजाओ ने भी इसी आशय के पत्र जयसिंह को लिखे।

---

1. महाराणा–सवाई जयसिंह, 14 मार्च, 1726 ज. आ.।
2. निजाम–सवाई जयसिंह, फारसीपत्र, ज. आ.। यह पत्र 1724 के अन्त या 1725 के प्रारम्भिक महीनों का है। पत्र मे निजाम मुवारिज खां के साथ युद्ध (1 अक्टूबर, 1724) के वाद हैदरावाद जाने का उल्लेख करता है।
3 जयसिंह–भंडारी रघुनाथ, परवाना, 9 अगस्त, 1726, जो आ., महाराव दुर्जनसाल–जयसिंह, 25 नवम्बर, 1726 ज. आ.।

जयसिंह के मराठों व मुगल सरकार के बीच समझौते के प्रयत्न

राजपूत राज्यो को मराठो के आक्रमणो को रोकने के लिए तैयार करते हुए जयसिंह ने शाहू से इस बारे मे बातचीत भी चलाई। जुलाई १७२६ में उसने जोगी शम्भूराम को सतारा भेजा और शाहू को यह कहलाया कि मराठे आनन्दसिंह व रायसिंह से अपनी बातचीत बन्द कर दे।[1] जयसिंह की मराठो के साथ वार्ता का रुख सतारा स्थित मेवाड के वकील के (२८ जुलाई, १७२६ के) पत्र से ज्ञात होता है। वकील ने जयसिंह को लिखा कि उसके (जयसिंह) दो पत्रो व नवनीतराय से (जिसे सतारा भेजा गया था) समाचार मिले। उसने लिखा कि दशहरे के बाद मराठा सेनाएँ मालवा-गुजरात मे आने के लिए एकत्रित होगी। इसलिए महाराजा दक्षिणी मालवा आएँ जिससे मराठो से बातचीत हो सके। वे लोग समझौता करने की व्यग्रता प्रदर्शित नही करेगे अन्यथा मराठे समझेगे कि वे राजपूत कमजोर है। "हम उन्हे गुजरात व मालवा मे दस-दस लाख की जागीर दिलाने का कहेगे। परन्तु समस्या यह है कि वे दोनो सूबो से चौथ चाहते है जो कुल पचास लाख होती है। महाराजा के आने पर ये सब तय हो जायगी।" वकील ने लिखा कि मराठो मे फूट है। जब मिर्जा राजा जयसिंह आए थे तो शिवाजी ने ८४ किलो की कुंजियां उन्हे सौप दी थी। "परन्तु फिर भी उन्हे दबाने मे बहुत सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। उनके दात अभी तोड देने चाहिएँ, जबकि वे कच्चे है। निजाम (जयसिंह, महाराणा के) साथ ही है"।[2]

इसके कुछ दिन पहिले (जून १७२६) जयसिंह ने बादशाह को लिखा था कि यद्यपि वह खानदौरा व खिदमतगारखा के साथ मराठो के विरुद्ध जाने के लिए सदा तैयार है, परन्तु साम्राज्य के हित मे यह उचित होगा, यदि शाहू को मालवा व गुजरात मे दस-दस लाख की जागीरे दे दी जाएँ और कुछ प्रमुख मराठा सरदारो को मसब देकर शाही सेवा मे ले लिया जाय। जयसिंह ने लिखा कि इसके बदले मे राजा शाहू मालवा व गुजरात मे किसी प्रकार के उपद्रव न होने देने की जिम्मेदारी ले। जयसिंह की सलाह पर महाराणा ने यह प्रस्ताव उदयपुर स्थित मराठा वकील, जदुराय प्रभु, से कहा और शाहू को भी इस बारे मे कहलाया। महाराणा इन शर्तो पर आधारित समझौते के पक्ष मे था।[3]

परन्तु इस बारे मे बातचीत पूरी होने से पहले ही सरबुलंदखा ने पीलाजी, कंठाजी कदम, उदाजी पवार, बाजी भीवराव आदि के गुजरात मे उपद्रवो के

---

1 जयसिंह-भटारी रघुनाथ, परवाना, 9 अगस्त, 1726, जो आ।

2 28 जुलाई, 1726 की रिपोर्ट। पत्र मे ऊपर लिखा है "श्री रामोजयती" और दांई ओर "श्री एकलिंगजी" ज आ।

3. महाराणा-जयसिंह, 2 जुलाई, 1726, ज आ।

कारण शंकरजी मल्हार के भाई, जदुराय, प्रभु, को उदयपुर से बुलवाकर उस वर्ष (१७२६) की चौथ देने का वायदा कर लिया। परन्तु पीलाजी व कठाजी गुजरात को अपना प्रभाव-क्षेत्र मानते थे और उसमे पेशवा के हस्तक्षेप के विरुद्ध थे। उस वर्ष सर्दियो मे उन्होने वहाँ बहुत उपद्रव किया। सरबुलन्द खा ने तब फरवरी १७२७ मे पेशवा को चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार इस शर्त पर दे दिया कि वह अन्य मराठा सरदारो को गुजरात मे उपद्रव नही करने देगा। परन्तु दो महीने बाद कठाजी व पीलाजी ने बडौदा, दभोई जीत लिए और तब सरबुलन्द खा ने चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार उन्हे दे दिया। छत्रपति शाहू ने भी गुजरात को इनका प्रभाव-क्षेत्र स्वीकार कर लिया (अगस्त १७२७)। गुजरात मे मराठो के आपसी सघर्ष व दोनो ही पक्षो द्वारा वहाँ लूट-मार करने व मराठा कामाविशदारो द्वारा चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने के कारण सूबे मे पूर्ण अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई। इन सबसे तग आकर सरबुलन्द खां ने मार्च १७३० मे चिमनाजी अप्पा से समझौता कर लिया और फरवरी १७२७ मे पेशवा के साथ किए गए समझौतो को पुन मान लिया। मुगल दरबार मे सरबुलद खा द्वारा मराठो को गुजरात से चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार देने की आलोचना हुई और उसे सूबे से वापस बुला लिया गया।[1]

यद्यपि सरबुलन्द खा ने मराठो को गुजरात की चौथ देना स्वीकार कर लिया था परन्तु जयसिंह मराठो को मालवा मे चौथ वसूल करने का अधिकार देने के सर्वथा विरुद्ध था। वह मराठो को केवल ऐसी रियायते देने के पक्ष मे था जो मुगल साम्राज्य व मुगल सार्वभौमिकता के अन्तर्गत हो। उसका विचार था कि इससे दोनो ही पक्ष प्रति वर्ष के सैनिक अभियानो के भारी व्यय से बच जाएँगे। इसी विचार से जयसिंह ने पहले मालवा की सूबेदारी माँगी और जब यह उसे नही दी गई तो उसने मदसौर मे नियुक्त किए जाने की माँग की, जिससे कि वह मराठो के राजपूताने मे घुसने के प्रयत्नो को विफल कर सके। परन्तु बादशाह इस प्रस्ताव से भी सहमत नही हुआ।[2]

१७२७ के बाद मराठा समस्या को सुलझाने के जयसिंह के अथक प्रयत्न अगले अध्याय मे विस्तारपूर्वक दिए गए है।

अभयसिंह द्वारा शाही आज्ञा की अवहेलना, जयसिंह की नाराजगी

हम यह लिख चुके है कि नवम्बर १७२४ मे महाराजा अभयसिंह को जोधपुर जाने के लिए एक माह की छुट्टी मिली थी। परन्तु मारवाड मे आतरिक गडबड

1 उपरोक्त वृत्तान्त के लिए देखिए, महाराणा–जयसिंह, 2 जुलाई, 1726, ज. आ. पेशवा दफ्तर, जि. 15, पृ. 82, 84–5, डफ, 1, पृ. 416–17, 422–23, दिघे, पृ 30–33।

2. जयसिंह–महाराणा, 4 अक्टूबर, 1726, ज. आ।

के कारण वह अपने देश मे ही रहा। सितम्बर १७२५ मे उसे सरबुलन्द खा के पास नियुक्ति के आदेश मिले। सरबुलन्द खा को हाल ही मे गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया था। जयसिंह ने भी अभयसिंह को अहमदाबाद जाने के लिए अनेक बार लिखा परन्तु हर बार अभयसिह अपने वहाँ जाने की असमर्थता के दो कारण बताता—एक तो मराठो के आनन्दसिंह रायसिंह के समर्थन मे हस्तक्षेप की सभावना, और दूसरे बादशाह का उसे खर्च न भेजना। २६ नवम्बर के पत्र मे जयसिंह ने अभयसिंह को लिखा कि वह पाँच-छ मजिल तै करने के बाद बादशाह को खर्चे के लिए लिखे। यदि वह जोधपुर मे ही रहा और बादशाह के आदेशो की अवहेलना करता रहा तो बादशाह उसकी कोई भी दलील नही सुनेगा। इस समय सरबुलन्द खा को मराठो को गुजरात से निकालने मे बहुत कठिनाई पड रही थी और इसलिए बादशाह चाहता था कि अभयसिंह उसकी मदद के लिए तुरन्त अहमदाबाद पहुँचे। दिसम्बर मे अभयसिह जोधपुर से अहमदाबाद के लिए रवाना तो हुआ परन्तु पुन रुक गया। जयसिंह ने भडारी रघुनाथ को अभयसिंह द्वारा शाही आज्ञा की अवहेलना के परिणामो के बारे मे लिखा। २५ मार्च, १७२६ को अभयसिह ने जयसिह को लिखा कि वह जोधपुर का शासन वख्तसिंह व रघुनाथ भडारी के हाथ मे सौंपकर अहमदाबाद के लिए शीघ्र ही रवाना हो जाएगा। परन्तु उसने ऐसा नही किया और मराठो के आक्रमण की सभावना का बहाना लगाकर वह जोधपुर मे ही रहा। जब वह गुजरात नहीं पहुँचा तो मई १७२६ मे उसे मालवा मे नज्मुद्दीन अली खा के पास तैनाती के हुक्म मिले। परन्तु १३ मई के पत्र मे उसने जयसिंह को लिखा कि उसके देश की स्थिति को देखते हुए वह मालवा नही जा सकता। इसी कारण वह गुजरात भी नही जा सका। यदि बादशाह उसके लिए खर्च भेज देता तो वह देश की फौज वहीं छोडकर नई भर्ती कर गुजरात चला जाता। दूसरे, उसकी सरबुलन्द खा जैसे व्यक्ति के साथ बनती भी नहीं। वह मालवा भी नही जाना चाहता क्योकि वह मराठो को तो रोक नही सकेगा और नज्मुद्दीन अली खा का साथ देकर मराठो से और दुश्मनी मोल ले लेगा। अभयसिंह ने लिखा कि यदि मालवा का सूबा महाराजा (जयसिह) के पास होता तो उसे वहाँ जाने मे कोई आपत्ति नही होती। उसने लिखा कि या तो उसे गुजरात की सूबेदारी दे दी जाय अन्यथा उसे दरबार मे बुला लिया जाय। अगस्त १७२६ मे जयसिंह की सिफारिश पर अभयसिह की गुजरात की नियुक्ति रद्द कर दी गई और बादशाह ने नागौर इन्द्रसिह को देने का इरादा भी छोड दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि एक दो महीने बाद अभयसिह को पुन. गुजरात जाने के लिए कहा गया और उसने फिर कोई न कोई बहाने बना दिए। अबतक उसे मारवाड मे आए दो वर्ष होने आ गए थे जबकि नवम्बर १७२४ मे वह केवल एक माह की छुट्टी लेकर वहाँ आया था।

उस पर जयसिह ने (अभयसिह को) एक कडा पत्र लिखा (६ नवम्बर, १७२६)। जयसिह ने लिखा कि महाराजा सरबुलद खा के पास मुख्य रूप से दो कारणो से नही जा रहा है : एक तो आनन्दसिह व रायसिह द्वारा देश मे उपद्रव, और दूसरे उसे जागीरे व खर्चा न दिया जाना। जयसिह ने लिखा कि महाराजा को गुजरात पहुँच कर खर्च आदि के लिए लिखना चाहिए था और तव वादशाह तुरन्त सब 'मतालिब' स्वीकार कर लेता। जब महाराजा दिल्ली मे था तो उसने बादशाह को आश्वासन दिया था कि वह २०,०००-३०,००० सवारो के साथ जहाँ आवश्यकता होगी वहाँ जाकर शाही सेवा करेगा। इस कारण बादशाह अब महाराजा (अभयसिह) से बहुत नाराज है और उसे (जयसिह) व खानदौरा को ताने-उलहाने देता है। बादशाह इन्द्रसिह को नागौर देने का, और आनन्दसिह रायसिह को दिल्ली बुलाने का सोच रहा है। यह भी संभव है कि वह महाराजा से जोधपुर छीन ले।[1] परन्तु इन सब का अभयसिह पर कोई असर नही हुआ। वह अपने पिता की भाँति जिद्दी प्रकृति का था। बाद मे हम देखेगे कि वह जयसिह व महाराणा के निकट नही आ सका और उसने मुगल सरकार व मराठो के प्रति अन्य राजपूत राजाओ से भिन्न नीति अपनाई।

अब मारवाड मे उपद्रव होते दो वर्ष हो गए थे और वहा गृह-युद्ध की स्थिति बनी हुई थी। देश मे व्यापार बन्द सा हो गया था। आनन्दसिह व रायसिह अपने दोनो भाइयो के विरुद्ध सघर्ष जारी रखने के लिए काफिले लूट लेते व व्यापारियो से पैसा वसूल करते थे। देश मे अराजकता की स्थिति व्याप्त थी। जयसिह व महाराणा को मराठो के हस्तक्षेप की आशका बनी हुई थी। यह भी डर था कि बादशाह कोई बडा कदम न उठा ले और उससे समस्या और अधिक उलझ जावे। इसलिए जब अगस्त १७२६ मे जयसिह को ज्ञात हुआ कि यदि आनन्दसिह रायसिह को जागीरे मिल जावे व उनके साथ के ठाकुरो को भी उनकी जागीरे लौटा दी जावे तो वे अभयसिह को जोधपुर का शासक मान लेगे, तो जयसिह ने भडारी रघुनाथ को इस बारे मे लिखा[2]। परन्तु अभयसिह अपने भाइयो को कुछ भी देने को तैयार नही था।

इसी बीच आनन्दसिह व रायसिह ने ईडर पर अधिकार कर लिया था। जयसिह को ज्ञात था कि महाराणा ईडर को मेवाड मे मिलाने के बहुत इच्छुक हैं।

---

1. उपरोक्त वृत्तान्त जयसिंह के अभयसिंह को 26 नवम्बर 1725, 20 दिसम्बर 1725, 27 अगस्त 1726, 6 नवम्बर 1726 व अभयसिंह के जयसिंह को लिखे 25 मार्च 1726, 31 मार्च 1726, 13 मई 1726 के पत्रों पर आधारित है। 26 जून 1727 को अभयसिंह बारहपुला पहुंचा (देखिए उसका पत्र जयसिंह को, 26 जून 1727, ज. आ)।
2. जयसिंह-भंडारी रघुनाथ, परवाना, 9 अगस्त 1726, ज आ।

जयसिंह ने महाराणा को ईडर देने के लिए अभयसिंह को तैयार कर लिया। महाराणा ने इसके एवज मे रायसिंह आनन्दसिंह को समाप्त करने का वचन दिया[1]।

३१ मई, १७२७ के पत्र मे जयसिंह ने महाराणा को लिखा कि आनन्दसिंह व रायसिंह के विरुद्ध या तो वो (महाराणा) स्वय जाएँ अथवा धाभाई नगराज को भेजे।[2] परन्तु मेवाड की फौज पहुँचने से पहले ही आनन्दसिंह व रायसिंह वहा से बचकर निकल गए थे। महाराणा व धाभाई, दोनो ने ही जयसिंह को आश्वासन दिया कि रायसिंह व आनन्दसिंह की हिम्मत टूट चुकी है और शीघ्र ही या तो वे पकडे जाएँगे या मारे जाएँगे।[3]

ईडर से भागकर रायसिंह व आनन्दसिंह सिरोही चले गए और वहाँ से वे मारवाड मे धावे मारने लगे। २७ जून, १७२७ के पत्र मे अभयसिंह ने सवाई जयसिंह से शिकायत की कि वह आनन्दसिंह वगैरह के विरुद्ध कुछ कर भी नही सकता है क्योकि वे मेवाड की सीमा मे से धावे मारते है। जयसिंह ने तब महाराणा को इस बारे मे लिखा। आनन्दसिंह आदि सिरोही से भाग कर जैतारण, हसरोर और फिर रूपनगर पहुँच गए परन्तु वहाँ भी बख्तसिंह उनके पीछे जा पहुँचा[4]। जयसिंह ने एक फौज बख्तसिंह की मदद के लिए भेज दी। जयसिंह ने जोशी शभूराम को जैसलमेर भी भेजा और महारावल से कहलाया कि वह रायसिंह व आनन्दसिंह की मदद न करे।

अन्त मे परेशान होकर रायसिंह व आनन्दसिंह ने अभयसिंह के विरुद्ध सघर्ष समाप्त कर दिया। यह तय हुआ कि वे दोनो उदयपुर मे रहेगे और वहाँ से कही बाहर नही जाएँगे। उनके खर्चे के लिए ईडर व ईडर परगने का अधिकाश भाग दे दिया गया।[5] महाराजा अजीतसिंह का चौथा पुत्र, किशोरसिंह, अपने नाना, जैसलमेर के महारावल, के यहाँ से आबेर आ गया। जयसिंह ने अभयसिंह से उसके भाई को बारह सौ रुपया महीना देने का वायदा करवा लिया। जयसिंह ने भडारी

1. धाभाई नगराज–जयसिंह, 22 जून 1727, ज. आ.। महाराणा ने 1727 ई (माह व तिथि का उल्लेख नही है) के पत्र में जयसिंह को ईडर के मेवाड को दिए जाने के बारे में समझौते से संबधित कागजात भिजवाने के लिए धन्यवाद दिया और लिखा कि यह कार्य केवल सवाई जयसिंह के ही लिए करना संभव था। महाराणा ने लिखा कि जब सारे हिन्दुस्तान का कार्य उनके मार्फत होता है तो यह तो उनके (जयसिंह) घर का ही कार्य था।
2. जयसिंह–महाराणा, 31 मई 1727, (वीर विनोद 2, पृ 968)।
3 धाभाई नगराज–जयसिंह, 22 जून 1727 व महाराणा–जयसिंह [ ] 1727 ज. आ ।
4 अभयसिंह–जयसिंह, 26 जून 1727, भडारी रघुनाथ–जयसिंह, 14 जनवरी 1728, ज आ ।
5. अभयसिंह–महाराणा, 10 अगस्त 1728. (पत्र की प्रतिलिपि) ज आ., जयसिंह–महाराणा, 21 अगस्त 1728 (वीर विनोद, 2, पृ. 971)।

रघुनाथ को लिखा कि फिलहाल वह आबेर के साहूकारो से किशोरसिह को चालीस रुपया रोज दिलवा देगा और जोधपुर से पैसा आने पर हिसाब कर लिया जाएगा ।[1]

इस प्रकार महाराजा अजीतसिह की मृत्यु के बाद मारवाड मे उत्पन्न अराजकता की स्थिति को जयसिह व महाराणा ने सामान्य किया और मराठो व मुगल सरकार के सभावित हस्तक्षेप को रोका। जिन राठोड ठाकुरो ने आनन्दसिह व रायसिह का साथ दिया था, उन्हे उनकी जागीरे जयसिह ने वापिस दिलवादी ।

जयसिंह द्वारा कोटा की सहायता करना

इन्ही दिनो कोटा के महाराव दुर्जनसाल के सामने एक नई समस्या उठ खडी हुई। १७२६ के आरम्भ मे एक व्यक्ति अपने आपको श्यामसिंह (महाराव भीमसिह का पुत्र, जिसकी दुर्जनसाल के साथ युद्ध मे दिसम्बर १७२३ मे मृत्यु हुई थी) बताकर दलेलखा पठान व रोहेलो के साथ श्योपुर (कोटा के ६३ मील उत्तर पूर्व) आया और वहाँ से कोटा मे धावे मारने लगा। दुर्जनसाल तब रामगढ (कोटा के ४९ मील उत्तर पूर्व) पहुँचा। जयसिह ने भी एक छोटी फौज दुर्जनसाल की मदद के लिए भेजी। इस फौज के अधिकारी ने १७ मार्च, १७२६ को जयसिह के पास विस्तृत समाचार भेजे। उसने लिखा कि सालिमसिह हाडा ऊपर से तो महाराव दुर्जनसाल के साथ है परन्तु उसने जो फौज भेजने के बारे मे कसमे खाई थी, उन्हे पूरा नही किया है। सालिमसिह के साथ गुलमीर खा रुहेला व हाडा घाटी का छीतरसिंह हे। वे कहते है कि 'फितूर' श्यामसिंह ही है। इस अधिकारी ने सालिमसिह से कहा कि यदि वह श्यामसिह ही है तो बादशाह अथवा महाराजाधिराज (जयसिह) से क्यो नही मिलता ? यदि वह श्यामसिह है तो अपना ही देश तुर्को के हाथो क्यो बर्बाद करवा रहा है ?

इस समय तक नरवर का दीवान खाडेराय भी महाराव से आकर मिल गया था। वह 'फितूर' से मिलकर आया और उसने कहा कि वह पाखडी है। परन्तु महाराव को खाडेराय पर विश्वास नही था। इसलिए उन्होने जयसिह को लिखा कि वे खाडेराय को पठानो को तुरन्त दबाने के लिए लिखे। महाराव ने जयसिंह से यह भी कहा कि वो शिवपुरी के राजा को लिखे कि फितूर' उस तरफ से भागने न पावे। अक्टूबर १७२६ मे महाराव ने लिखा कि 'फितूर' अब भी शिवपुरी मे ही है और खाडेराय उसे शरण दे रहा है।[2]

---

1 जयसिह-भंडारी रघुनाथ, 9 सितम्बर 1728 व 25 अक्टूबर 1728, जो आ ।

2 उपरोक्त वृत्तान्त 17 मार्च 1726 की आबेर के एक अधिकारी की रिपोर्ट और दुर्जनसाल के 28 जून, अक्टूबर 15 अथवा 29, 1726 व 15 फरवरी 1727 के जयसिह के नाम पत्रो (ज आ.) पर आधारित है।

'फितूर' का उपद्रव १७२७ के प्रथम तीन-चार महीने तक चला। यद्यपि यह अपने आप मे कोई महत्वपूर्ण घटना नही थी, परन्तु इससे जयसिह व दुर्जनसाल के अच्छे सबधो के बारे मे ज्ञात होता है। इससे कुछ राज्यो की अपने आन्तरिक मामलो को सुलझाने के लिए पठानो व रुहेलो को भाडे पर बुलाने की बढती हुई प्रवृत्ति भी विदित होती है।

कुछ महीने बाद एक अन्य झगडे मे जयसिह ने फिर बीच-बचाव कराया। नवम्बर १७२७ मे कुछ उपद्रवी (सूर्यमल के अनुसार छीतरसिह हाडा) कोटा के कुछ गावो को लूटकर रामपुरा पहुँच गए। जब रामपुरा के राव गोपालसिह के पुत्र ठाकुर सग्रामसिंह चद्रावत ने महाराव दुर्जनसाल की उपद्रवकारियों को सरक्षण न देने की चेतावनी पर कोई ध्यान नही दिया तो कोटा की फौजें रामपुरा पहुँच गई। रामपुरा अगस्त १७१७ से मेवाड के अधीन था। कोटा की फौज ने रामपुरा पर अधिकार कर लिया, नगर लूट लिया, और सग्रामसिह व छीतरसिह को भागने पर बाध्य किया। इसके बाद कोटा की फौज ककरेसर के थानेदार को रामपुरा सौपकर वापस आ गई। २१ दिसम्बर १७२७ के पत्र मे दुर्जनसाल ने सारा वृत्तान्त जयसिह को लिखा।[1] उधर सग्रामसिंह ने भी कोटा की शिकायत की और लिखा कि इससे मेवाड की मर्यादा भंग हुई है। उसने जयसिह को एक बडी सेना भेजने के लिए लिखा जो उसकी, स्वय की, व मेवाड की फौज के साथ मिलकर इस अपमान का बदला ले। जयसिंह ने सग्रामसिह की सलाह पर कोई ध्यान नही दिया परन्तु महाराणा को यह अवश्य लिख दिया कि वह सग्रामसिह को जो खानाजाद नौकर है, बरखास्त न करे। कुछ दिन बाद सग्रामसिंह दिल्ली गया और वहाँ रिश्वत देकर उसने रामपुरा अपने नाम करवा लिया। मेवाड वापस लौटते समय उसकी हत्या करदी गई। सूर्यमल्ल मिश्रण के अनुसार यह हत्या आबेर के आदमियो ने की थी।[2]

मराठो का मेवाड़ मे पुनः हस्तक्षेप

हम जयसिह के १७२४–२७ के बीच मराठो के राजपूताने पर बढते हुए दबाव को रोकने के प्रयत्नो के बारे मे देख चुके है। १७२८ मे मराठो ने मेवाड के मातहत डूंगरपुर व बासवाडा राज्यो को वार्षिक पेशकश देने पर बाध्य किया। यह तय हुआ कि डूंगरपुर अपनी राशि उदाजी पवार को और बासवाडा आधी राशि उदाजी पवार और आधी होल्कर को और बाद मे केवल बार के मार्फत दे। परन्तु कुछ ही महीने बाद कदम राव राधोजी व कर्तसिह कदम राव ने डूंगरपुर व

1. उपरोक्त वृत्तान्त के लिए देखिए वंशभास्कर, 4, पृ 3116–3121, दुर्जनसाल–जयसिंह, 26 नवम्बर व 21 दिसम्बर 1727, ज. आ।
2. महाराज श्री राव संग्रामसिंह–जयसिंह, 24 दिसम्बर 1727, वंशभास्कर 4, पृ. 3121।

वासवाडा से क्रमश: १,३०,००० व ५०,००० रुपये वसूल कर लिए। इस पर पेशवा बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने उन दोनो मराठा सरदारो को यह रुपया पूना मे जमा कराने का आदेश दिया।[1]

मराठो द्वारा डूंगरपुर व वासवाडा पर वार्षिक पेशकश देने की शर्त लादने से महाराणा को बहुत दुख हुआ। १० दिसम्बर, १७२८ के पत्र मे महाराणा ने जयसिंह से पूछा कि उसने मराठो के बढते हुए उपद्रव को रोकने के लिए क्या तजवीज सोची है। महाराणा ने लिखा कि इस वार मराठे चोट कर गए है। यदि उन्हे रोकने के लिए आवश्यक कार्यवाही नही की गई तो उनके उपद्रव सीमा पार कर जावेगे। इससे पहले दिसम्बर १७२६ मे जब महाराणा ने जयसिंह से मराठो द्वारा मेवाड मे वार-वार उपद्रव करने की शिकायत की थी तो जयसिंह ने लिखा था कि वे चोर है[2]। जयसिंह के इस भर्त्सनापूर्ण वाक्य व महाराणा के क्रोध भरे शब्दो मे राजपूत राजाओ का मराठो के प्रति राजपूत राज्यो मे उनके आक्रमणो के कारण रोष स्पष्ट होता है। मराठो की इस अमैत्रिपूर्ण कार्यवाही के बाद भी जयसिंह ने समझौते के लिए द्वार खुला रखा और १७३० मे मसाराम पुरोहित को सतारा व पूना भेजा।[3] इसके बाद जयसिंह ने मराठा समस्या को सुलझाने के जो प्रभावशाली प्रयत्न किए, उनका विस्तृत विवरण अगले अध्याय मे दिया गया है।

जयपुर नगर का शिलान्यास

इन अनेक समस्याओ के बीच घिरे रहने पर भी जयसिंह ने एक विशाल व अपने समय के सबसे सुव्यवस्थित व सुन्दर नगर की योजना तैयार करली। आमेर जयसिंह के बढते हुए राज्य की आवश्यकताओ के लिए अपर्याप्त था। वहा सुन्दर महल थे परन्तु न बडे बाजार थे और न भव्य सडके। पहाडो से घिरे आमेर का विस्तार करना एक समस्या थी। इस समय जयसिंह के पास साधनो का भी अभाव नही था। इन सब कारणो से जयसिंह ने एक नया नगर बनाने का निश्चय किया। २५ नवम्बर, १७२७ को जयनगर की नीव रखी गई। १७३३ तक नगर बनकर तैयार हो गया। इन दिनो जयसिंह जब भी आमेर आता वह अपने निर्माणाधीन नगर को अनेक बार देखने आता। जयनगर अथवा जयपुर का विस्तृत वर्णन आगे के अध्याय मे दिया गया है।

माधोसिंह का जन्म, जयसिंह का मेवाड़ से रामपुरा प्राप्त करना

१७२८ का वर्ष समाप्त होते-होते जयसिंह के लिए एक समस्या छोड गया। १७ दिसम्बर १७२८ को रानी सीसोदणी के, जिससे जयसिंह ने उदयपुर मे मई

1 ओझा, वासवाडा, पृ 119।
2. महाराणा-जयसिंह, 10 दिसम्बर 1728, ज आ.।
3. पेशवा दफ्तर, 30, नं. 78।

१७०८ मे विवाह किया था, पुत्र उत्पन्न हुआ[1]। बच्चे का नाम माधोसिंह रखा गया। माधोसिंह के जन्म से जयसिंह की खीचीरानी के पुत्र ईश्वरीसिंह (जन्म फरवरी १७२२) का निर्विरोध राजा बनना सदेहपूर्ण हो गया। जयसिंह के सबसे बडे पुत्र शिवसिंह का हम उल्लेख कर चुके है। परन्तु शिवसिंह के बारे मे १७२४ के बाद कोई उल्लेख नही मिलता है।

जनवरी १७२८ मे महाराणा सग्रामसिंह ने ईश्वरीसिंह के लिए अपनी पौत्री के विवाह का प्रस्ताव भिजवाया। टीका महाराणा के काका किशोरसिंह व सलूंबर का ठाकुर व पुरोहित लाए थे। जयसिंह ने नारियल स्वीकार कर लिया।[2] यह स्पष्ट है कि महाराणा को यह आशा नही थी कि उनकी बहन के इतने वर्षो बाद पुत्र होगा। कुछ दिन बाद यह ज्ञात हुआ कि राणी सीसोदणी गर्भवती है। यदि उसके पुत्र हुआ तो १७०८ के समझौते के अनुसार जयसिंह के बाद आबेर की गद्दी पर उसी को बैठने का अधिकार था।

इस समस्या को सुलझाने व अपनी मृत्यु के बाद गृह युद्ध की सभावना दूर करने के लिए जयसिंह ने माधोसिंह को एक छोटे राज्य के बराबर जागीर देने का विचार किया। इसमे टोक, रामपुरा, फागी एव मालपुरा थे और उसने महाराणा से उसे रामपुरा दिलवाने का भी विचार किया। जयसिंह स्वय उदयपुर पहुँचा और बिहारीदास पचोली को रामपुरा चद्रावतो से लेकर कछवाहो को देने के लिए तैयार कर लिया। ऐसा कहते है कि जयसिंह स्वय बिहारीदास के घर पहुँचा और भविष्य मे आबेर मे गृह युद्ध बचाने के लिए उसकी सहायता माँगी।[3] २६ मार्च, १७२९ को राणा सग्रामसिंह ने रामपुरा का पट्टा माधोसिंह के नाम कर दिया। इसके एवज मे माधोसिंह ने वर्ष मे छ माह १००० सवार व १००० बदूकचियो के साथ मेवाड़ की सेवा करना स्वीकार किया। जयसिंह ने अपने छोटे पुत्र की ओर से इकरारनामे पर हस्ताक्षर किए।[4]

महत्वपूर्ण दस वर्ष

इन दस वर्षो मे (१७२०–३०) राजनीतिक दृश्य मे अनेक परिवर्तन हुए। इस काल मे चूडामण जाट व महाराजा अजीतसिंह का राजनीतिक मच से निष्क्रमण हुआ, जाटो का शान्तिप्रिय व व्यवस्थित शक्ति के रूप मे उदय हुआ, और निजाम

---

1 वीर विनोद, 2, पृ. 973। सूर्यमल के अनुसार शिवसिंह का अत्यधिक उग्र स्वभाव था और इस कारण उसकी हत्या करवादी गई थी।

2 दस्तूर, 24, पृ. 40, वशभास्कर के अनुसार (पृ. 3096) महाराणा ने अपने दूसरे पुत्र नाथसिंह की पुत्री के विवाह का प्रस्ताव भेजा था।

3 टाड, 2, पृ, 298, वीर विनोद, 2, पृ. 974।

4 देखिए, वीर विनोद, 2, पृ 975–77।

का दक्खिन के लिए प्रस्थान हुआ, जहाँ से वह दिल्ली की राजनीति पर विनाशकारी प्रभाव डालता रहा। इसी काल मे मराठो ने राजपूताने मे अपना प्रभाव-क्षेत्र बढाना शुरू किया और उनके आक्रमण शुरू हो गए। कुछ ही वर्षो मे वे मालवा व गुजरात पर छा गए और राजपूताने मे भी उन्होने अपना स्थायी प्रभाव जमा लिया। इन्ही दस वर्षो मे जयसिंह का दिल्ली व राजपूताने मे प्रभाव बढा और वह मुगल साम्राज्य के सबसे प्रभावशाली व्यक्तियो मे गिना जाने लगा। इसी काल मे उसकी बहुमुखी प्रतिभा के असाधारण विकास के प्रथम फल दृष्टिगोचर हुए। इन वर्षो मे जयनगर का अधिकाश भाग और जयसिह की पाच वेधशालाओ मे से दो बनकर तैयार हो गई और सात वर्ष के अनवरत परिश्रम के बाद ज्योतिष सारणिया भी पूरी हो गई। इस प्रकार इन दस वर्षो मे उसकी अभूतपूर्व ख्याति व प्रभाव का प्रथम चरण पूरा हुआ।

०००

अध्याय ६

जयसिंह व मराठे

१७२८ के बाद मराठो के उत्तरी प्रान्तों मे बढते हुए प्रसार की समस्या और भी गम्भीर हो गई। मालवा व गुजरात के मराठो के हाथ मे चले जाने से जो राजपूतो को खतरा हो सकता था, उसके बारे मे जयसिंह को कभी सदेह नही था। हम यह देख चुके है कि १७३० तक उसने उत्तर की ओर बढते मराठो के प्रभाव को यथासभव रोकने का प्रयत्न किया था। उसने राजपूत राज्यो की सगठित शक्ति द्वारा मराठो के राजपूताने मे आक्रमणो को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाए थे। उसने निजाम का शभाजी को शाहू के विरुद्ध सहायता देने के प्रयत्न का समर्थन किया था। साथ ही उसने मुहम्मद शाह की आज्ञा से मराठो व मुगल सरकार के बीच समझौते के लिए राजा शाहू से बातचीत भी की थी।

जयसिंह की मराठा-नीति की विवेचना

मराठा समस्या के बारे मे जयसिंह का कमरूद्दीन खा, सादत खा आदि से भिन्न दृष्टिकोण था। वे समस्या के सैनिक हल मे विश्वास रखते थे। लेकिन इस नीति का तो पिछले साठ वर्षो मे अच्छी तरह परीक्षण हो चुका था, और यह औरगजेब के अनथक प्रयत्नो और साम्राज्य के सारे साधन जुटा लेने पर भी पूर्णतया असफल रही थी। मुगल साम्राज्य की जर्जरित अवस्था मे इसकी सफलता की क्या आशा थी? साम्राज्य के आर्थिक साधन इस समय पहले की अपेक्षा बहुत कम थे। पजाब, बगाल व दक्खिन के सूबे केवल नाममात्र के लिए ही मुगल नियन्त्रण मे रह गए थे। अवध मे सादत खा, इलाहाबाद मे बगश, व गुजरात के सूबेदार, निजाम व अलीवर्दी खा का अनुसरण कर अपने आपको दिल्ली के नियन्त्रण से सभी व्यावहारिक दृष्टिकोण से मुक्त करने के प्रयास मे लगे थे। सैयदो के समय मे बादशाह की प्रतिष्ठा को बडा धक्का पहुँचा था। १७३० तक मराठो ने दक्षिण के सूबो व गुजरात से चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार ले लिया था। ऐसी स्थिति मे मुगलो द्वारा मराठो का उत्तर की ओर प्रसार रोकने की क्या संभावना थी, विशेषकर जबकि उनका नेतृत्व असाधारण प्रतिभाशाली व योग्य पेशवा कर रहा था। १७२८ तक मराठा सेनाओ की अजेयता की ख्याति फैलने लगी थी। इन सब कारणो से जयसिंह ने मराठो व मुगल सरकार के बीच ऐसे समझौते का प्रयत्न किया जो मराठा आकाक्षाओ की बहुत कुछ पूर्ति करते हुए मुगल साम्राज्य व बादशाह के

सार्वभौमिक स्तर के विरुद्ध न हो। जयसिंह का विचार था कि शाहू को जागीरे व मराठा सरदारो को उपयुक्त मसव देकर उन्हे गिरते हुए मुगल साम्राज्य का प्रमुख आधार बना लिया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए १७३० के बाद जयसिंह ने अनवरत प्रयत्न किए और बाद मे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि उसका उद्देश्य पूरा हो जावेगा और मराठे एक जिम्मेदार शक्ति के रूप मे बादशाह को सार्वभौम मानने हुए साम्राज्य के प्रमुख आधार बन जावेगे।

अपनी इस नीति की पूर्ति मे जयसिंह को निजाम, कमरुद्दीन खा, सादत खां आदि के कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। जयसिंह, बादशाह की सलाह से, पूना व सतारा से जो वार्ता कर रहा था, उसको असफल करने मे इन लोगो ने कोई कसर उठा न रखी। जैसा आगे के वृत्तान्त से स्पष्ट होगा, यह कहना सही नही है कि जयसिंह ने हिन्दू अभ्युदय के उद्देश्य से मराठो को मालवे मे बुलाया, अथवा यह कहना कि उसने मालवा मे मराठो का प्रभुत्व जमाने मे उनकी सहायता की[1]। इसके विपरीत जयसिंह ने यथासभव यह प्रयत्न किया कि मराठो के उत्तरोत्तर बढते हुए विस्तार को रोका जाय, अथवा उसकी गति धीमी की जाय, जिससे कि राजनीतिक व्यवस्था एकाएक ही नष्ट न हो जाय। यथासभव वह मालवा के दक्षिणी भागो मे मराठो को मान्यता देकर केन्द्रीय मालवा मे अपना प्रभुत्व रखना अधिक उपयोगी मानता था।

मालवा मे मराठो के प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार (१७२०–२७)

यह हम देख चुके है कि नवम्बर १७१७ मे जयसिंह के स्थान पर मुहम्मद अमीन खा को मालवे का सूबेदार बनाया गया था। परन्तु कुछ ही महीने बाद उसे हटा दिया गया था। उसके बाद निजाम को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया गया। वह मार्च १७१९ मे सूबे का चार्ज सभालने के लिए दिल्ली से चला परन्तु शीघ्र ही उसका सैयदो से झगड़ा हो गया। इस समय मराठे दक्षिण के सूबो मे हाल मे ही मुगल सरकार द्वारा स्वीकृत चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने मे व्यस्त थे। इस कारण, तथा अप्रेल १७२० मे बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु की वजह से, १७१९–२० में मराठे मालवे मे नही आए।

अगस्त १७२२ मे जब निजाम विजारत का कार्यभार सभालने के लिए दिल्ली गया तो मालवा की सूबेदारी राजा गिरधर बहादुर को दी गई। इस समय तक बाजीराव पेशवा ने मराठा शक्ति के उत्तर की ओर विस्तार की योजना कार्यान्वित करने की स्वीकृति प्राप्त करली थी। इस प्रकार गिरधर बहादुर के सूबेदार बनने के समय मालवा पर मराठो के दबाव मे गति आ चुकी थी। १७२३ के

1. इस धारणा के लिए देखिए सरकार (इरविन, 2, पृ 244), सिन्हा, पृ. 135, यूसुफ हुसैन, पृ. 167–68।

आरम्भ मे बाजीराव स्वय मालवा मे आया और १३ फरवरी को वह निजाम से बोलाशा मे मिला[1]। यह भेंट मालवा के लिए अशुभ थी क्योंकि निजाम दक्षिण मे अपनी स्थिति को मराठो के अतिक्रमण से बचाने के लिए उन्हे मालवा व गुजरात मे अपनी ओर से किसी प्रकार की रुकावट न डालने का आश्वासन देने को तैयार था। उसे आशा थी कि मराठो के उधर उलझ जाने से दक्षिण के सूबो पर मराठा दवाव कम रहेगा।[2] बाजीराव ने भी इस समय निजाम से निपटने के स्थान पर मालवे मे मराठा प्रभाव को बढाने के कार्य को प्राथमिकता दी। दिसम्बर १७२२ मे ही पेशवा ने ऊदाजी पवार के नाम गुजरात व मालवे का आधा मोकासा कर दिया था। मार्च-अप्रेल १७२३ मे पेशवा मालवा के हाडिया परगने मे गया और उसकी फौज की एक टुकडी ने निजाम के साथ भोपाल के दोस्त मुहम्मद खा रुहेला को दबाने मे भाग लिया[3]।

मालवा का सूबा निजाम को पुन: मिलना; उसकी बाजीराव से भेंट व साम्राज्य के हितों की उपेक्षा

मई १७२३ मे गिरधर बहादुर को हटाकर मालवा का सूबा निजाम ने स्वयं ले लिया। परन्तु जब निजाम ने बादशाही दरबार में अपने प्रति विरोध को बढते देखा और उसकी बादशाह मुहम्मदशाह से नही बनी, तो दिसम्बर १९२३ मे दिल्ली से रवाना होकर वह उज्जैन पहुँचा। यहाँ उसे ज्ञात हुआ कि दक्षिण के सूबो मे उसके स्थान पर उसी के नायब मुबारिज खा को सूबेदार बना दिया गया है और जयसिंह मुबारिज खा के लिए मराठो से सहायता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है। इस स्थिति मे वह १८ मई को नालछा मे बाजीराव से मिला और मुबारिज के विरुद्ध सहायता के एवज मे उसने मराठो को मालवा तथा गुजरात की चौथ व सरदेशमुखी दिलवाने का आश्वासन दिया[4]। साम्राज्य के हितो को देखते हुए निजाम का यह कार्य अत्यन्त निन्दनीय था।

राजा गिरधर बहादुर की मराठो के विरुद्ध सफलता,

अक्टूबर १७२४ मे निजाम की मुबारिज खा पर विजय के बाद मालवा का सूबा पुन: गिरधर बहादुर को दिया गया। बाजीराव ने जिन मराठा सरदारो को मालवा मे पैसा वसूल करने के लिए विभिन्न क्षेत्र निर्धारित कर दिए थे, उनका

---

1. मालवा, पृ 142, 144–46, दिघे, पृ 96।
2 यह निजाम की आने वाले वर्षों मे मराठों के प्रति नीति से व पेशवा तथा मुगल सरकार के बीच उसके द्वारा सुझाई समझौते की शर्तों से स्पष्ट हो जाता है।
3 मालवा, पृ. 144, दिघे, पृ. 96।
4. पार्टीज, पृ. 177, पेशवा दफ्तर, 30, पृ 269, 271, मालवा पृ. 151–52, डा० पंवार का लेख, प्रोसीडिंग्स, 1940 अधिवेशन, पृ. 204–5।

गिरधर बहादुर व दया बहादुर ने सफलता पूर्वक विरोध किया। १७२५–२७ के बीच मराठो को मालवा से खाली हाथ लौटना पडा। परन्तु फरवरी १७२८ मे पालखेड के स्थान पर निजाम की पराजय ने मराठो को उत्तर की ओर बढने के लिए नवीन प्रेरणा दी। पेशवा ने मालवा की रियासतो के राजाओ और सूबे के अफसरो के नाम आदेश जारी कर दिए जिनमे उन्हे चौथ वसूल करने के लिए नियुक्त मराठा कर्मचारियो को चौथ देने को कहा गया था। इसके कुछ महीने बाद, २९ नवम्बर १७२८ को, पेशवा के भाई चिमनाजी अप्पा के नेतृत्व मे एक बडी मराठा सेना ने अमझेरा के स्थान पर राजा गिरधर बहादुर की सेना को हरा दिया। राजा गिरधर, दया बहादुर व अनेक प्रमुख अफसर लडते हुए मारे गए[1]। मालवा मे मुगल सरकार की स्थिति पर यह बहुत बडा आघात था। इस विजय के बाद अगले कुछ महीनों मे मराठो को मालवा मे लूटमार करने मे कोई रुकावट नही रही। बादशाह ने कुछ समय के लिए छबीला राम के पुत्र भवानीराम को राजा का खिताब देकर मालवा का सूबेदार नियुक्त कर दिया, और सवाई जयसिंह, नज्मुद्दीन अली खा, महाराणा सग्रामसिह, महाराव दुर्जनसाल, मुहम्मद उमर खा आदि को भवानी राम की यथा सभव सहायता करने को लिखा[2]।

जयसिंह को भवानी राम की स्थिति के बारे मे जानकारी मिलना

गिरधर बहादुर की मृत्यु के बाद जयसिंह ने भवानीराम के पास एक शोक सदेश भेजा और उज्जैन मे नियुक्त आमेर के एक अफसर केशोराम के पास परवाना भी भेजा। २१ दिसम्बर १७२८ के पत्र मे केशोराम ने समाचार भेजा कि मराठे लडाई व उपद्रव करने पर तुले हुए है। सिरोज मे सूबे की सेना शहर को मराठो से बचाने के लिये कृत सकल्प है। उसने यह भी लिखा कि भवानीराम व गिरधर बहादुर के पुत्रो (कुवर विजयराम व शंभूराम) यद्यपि मिलजुल कर कार्य कर रहे है, तथापि उनमे आपस के मतभेद कुछ समय मे सामने आ जाएंगे[3]।

मालवे मे मराठों द्वारा धन-वसूली

१३ जनवरी १७२९ को मराठो ने उज्जैन का घेरा उठा लिया, जो उन्होने एक माह पूर्व शुरू किया था, और वे मालवा के महत्वपूर्ण नगरो से पैसा वसूल करने मे व्यस्त हो गए। उन्होने कायथ, शाहजहापुर, सारगपुर नोलाई, धार आदि स्थानो से पैसा वसूल किया। फरवरी मे चिमनाजी अप्पा अपनी सेना के साथ कोटा-बूदी की तरफ मुड गया। चिमनाजी राजगढ, रामपुरा, जावद आदि से धन

1. पेशवा दफ्तर, जि. 13, नं 15, 23, 26, 27, 29, अजाइब, पत्र 74 (बी), मालवा, 163–64।
2. पेशवा दफ्तर, 13, पृ. 51, इरविन, 2, पृ 245।
3. केशोराम, सवाई जयसिंह, फारसी अर्जदाश्त, 21 दिसम्बर 1728, ज. आ।

वसूल करके गुजरात होता हुआ ४ मई को पूना पहुँचा[1]। परन्तु कुछ मराठा सेना बरसात बिताने के लिए मालवा मे ही रुक गई।

भवानीराम की कठिनाइयां; जयसिंह को मालवा का सूबा मिलना

इन दिनो व अगले कुछ महीनो मे भवानीराम ने मराठो को मालवा से निकालने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु उसके पास पैसे की बडी कमी थी और दिल्ली से उसे कोई विशेष सहायता भी नही मिली। नज्मुद्दीनअली खा ने भी उसके काम मे रुकावट डाली और यह खबर उडा दी कि भवानीराम के स्थान पर उसे मालवा का सूबेदार नियुक्त किया जा रहा है।

सितम्बर १७२९ मे बाजीराव ने होल्कर व ऊदाजी पवार को मालवा के उन इलाको की सनदे दे दी जो उसने उन्हे पिछले वर्ष दिए थे[2]। प्रान्त की गिरती हुई अवस्था के कारण भवानीराम से सूबेदारी ले ली गई परन्तु उसे जयसिंह की सिफारिश पर कुछ समय के लिए पुन. सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। सभवतः यह केवल जयसिंह के मालवा पहुँचने तक के लिए ही किया गया था। बादशाह ने जयसिंह को अविलम्ब मालवा पहुँचने के लिए लिखा तथा अतिरिक्त सवार भरती करने के लिए उसे मदसौर व टोडा जागीर मे दे दिए।

बरसात के बाद होल्कर, पवार, कठाजी कदम आदि ने मालवा मे पुनः लूटमार आरम्भ कर दी और वे धरमपुरी को लूटते हुए माडू तक पहुँच गए। इस स्थिति मे भवानीराम को धार सहायता भेजने को कहा गया जिससे कि जयसिंह के वहाँ पहुँचने तक यह स्थान मराठो के हाथ मे न पडने पाए। उसे यह भी आज्ञा मिली कि जयसिह के मालवा पहुँचने पर वह उसकी (जयसिंह) सलाह से काम करे। भवानीराम की आर्थिक स्थिति बिगडती जा रही थी। आंबेर से अवतक केवल ७०० सैनिक उसके पास पहुँचे थे। वह जयसिंह की मालवा मे नियुक्ति के कारण भी क्षुब्ध था। उसने बादशाह को लिखा कि महाराजा वर्ष मे कुछ ही महीने मालवे मे रहेगा। उसने लिखा कि जयसिह को जितना पैसा दिया जाएगा, यदि उसका आधा भी उसे दिया जाय, तो वह मराठो को प्रान्त मे से बाहर निकाल सकता है। परन्तु प्रान्त मे किसी योग्य व अनुभवी अफसर की नियुक्ति की आवश्यकता इतनी स्पष्ट थी कि भवानीराम की अर्जी पर कोई ध्यान नही दिया गया और अक्टूबर १७२९ मे जयसिंह को सूबेदारी दिए जाने की सूचना उसके पास भेज दी गई।

मालवे मे जयसिंह की दूसरी सूबेदारी,
मराठों का जयसिंह को मांडू लौटाना

२३ अक्टूबर १७२९ को जयसिह जयपुर से उज्जैन के लिए रवाना हुआ। मराठे वहाँ पहिले से ही विद्यमान थे और नवम्बर के अन्त मे उन्होने माडू भी ले

1. पेशवा दफ्तर, जि. 13, 30, जि 30, पृ 284–87, दिघे, पृ. 101।
2. पेशवा दफ्तर, जि 30, पृ 293–94।

लिया था। जयसिंह की मराठो से एक झडप हुई परन्तु कुछ ही दिन बाद राजा शाहू से उसने समझौते की जो वार्ता चला रक्खी थी, उसके परिणाम-स्वरूप मराठे माडू जयसिंह को सौंप कर वापस लौट गए।

बाजीराव का मालवा में मुगल-मराठा शासन का प्रस्ताव

इस समय पेशवा बाजीराव मालवा पर मुगल व मराठो के सम्मिलित नियत्रण की योजना बना रहा था। परन्तु इसमे विशेष प्रगति नही हुई। सभवत: मुगल सरकार को इस योजना से मराठो के मालवा मे प्रभाव बढने की आशका थी। अगले कुछ वर्षो मे मराठो के प्रति जयसिंह की नीति को देखते हुए प्रतीत होता है कि वह इस योजना के पक्ष मे नही था क्योकि इससे निश्चय ही प्रान्त मे मराठो का प्रभाव बढने मे सहायता मिलती[1]।

जयसिंह का शाहू से समझौता

जयसिंह इस समय मराठो को इतनी रियायत देने के पक्ष मे नही था। वह चाहता था कि राजा शाहू के दत्तक पुत्र कुशलसिंह को, मालवे मे मराठा आक्रमण तुरन्त रोकने की शर्त पर, दस लाख रुपये की जागीर दे दी जाय। शाहू ने इस प्रस्ताव को २६ फरवरी १७३० को स्वीकार कर लिया। जयसिंह ने बादशाह को लिखा कि उस समझौते से मुगल सरकार को प्रति वर्ष मराठो को रोकने के लिए फौज का खर्चा नही उठाना पडेगा और सूबे मे शान्ति भी स्थापित हो सकेगी[2]। मार्च १७३० मे शाहू ने चिमनाजी अप्पा, उदाजी पवार व होल्कर को जयसिंह के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार करने व उसे माडू सौप देने के लिए लिखा। छत्रपति ने लिखा कि सवाई जयसिंह व उसके स्वय के राज परिवारो मे पिछली कई पीढियो से मैत्रीपूर्ण सबध रहे है।

जयसिंह का मालवा से वापस लौटना

जयसिंह मई १७३० के शुरु तक मालवा मे रहा और फिर जयपुर के लिए चल पडा। मार्ग मे उसने महाराव बुद्धसिंह को बूदी की गद्दी से हटा कर उसके स्थान पर करवर के सालिमसिंह हाडा के पुत्र को बैठा दिया। इस कारण राजपूताने मे जो दुखद प्रक्रिया आरम्भ हुई, उसके बारे मे हम आगे देखेगे।

जयसिंह-शाहू समझौते का पेशवा की आकांक्षाओ के विरुद्ध होना

ऐसा प्रतीत होता है कि जयसिंह ने शाहू के साथ जो समझौता किया था, वह शीघ्र ही चक्कर मे पड गया। यह समझौता बाजीराव पेशवा की उत्तर की ओर

---

1. समझौते की प्रतिलिपि, 26 फरवरी 1730, कपटद्वारा कागजात नं. 96।
2 देखिए पार्टीज, परिशिष्ट, सी (बी), पृ. 273, परन्तु इस पत्र से यह अर्थ नही निकलता कि जयसिंह के समझौते के सुझाव में मराठों को मालवा व गुजरात की चौथ देने की व्यवस्था थी।

मराठा प्रसार की नीति के विरुद्ध था। इस समझौते का अर्थ था कि मराठे मालवा व उत्तर के प्रान्तो से चौथ वसूल करने का विचार छोड दें। समझौते मे छत्रपति व मराठा सरदारो के बीच प्रान्त से प्राप्त होने वाली आय के विभाजन की व्यवस्था भी नही थी। इसमे होल्कर, सिन्धिया आदि मराठा सरदारो की गिरते हुए मुग़ल साम्राज्य के प्रान्तो मे अधिक से अधिक क्षेत्र पर अपना प्रभाव जमाने की आकाक्षा की पूर्ति के लिए कोई स्थान नही था। इस समझौते का यह भी अर्थ था कि बाजीराव पेशवा अपनी सभी सैनिक कार्यवाही बन्द कर दे और पिछले दस वर्षो मे मालवा मे जो कुछ मराठो ने प्राप्त किया है, वह त्याग दे। और अन्त मे, इस समझौते मे मराठो के गुजरात मे अधिकार-क्षेत्र के बारे मे कुछ नही लिखा था। इस समझौते के बारे मे अनिश्चितता को दूर करने के लिए व मराठो की वास्तविक मनोस्थिति ज्ञात करने के लिए जयसिंह ने अपने एक प्रमुख ठाकुर, दीपसिंह, को सतारा भेजा।

दीपसिंह का सतारा जाना और उसका समझौते के बारे मे प्रस्ताव

अप्रेल १७३० मे जयसिंह इन्दौर मे था। वही से उसने दीपसिंह, मंनाराम पुरोहित व मेवाड़ के व्याघ्रजी को सतारा जाने के लिए विदा दी। दीपसिंह २२ मई को सतारा पहुँचा। परन्तु बाजीराव के अस्वस्थ होने के कारण वह शाहू से लगभग २० जून से पहले नही मिल सका। दीपसिंह के आमेर के बख्शी हेमराज के नाम १६ जून के पत्र से ज्ञात होता है कि उसने मराठो के समक्ष जो प्रस्ताव रक्खे, उन्हे बादशाह की स्वीकृति प्राप्त थी। मराठा सूत्रो से विदित होता है कि दीपसिंह ने मराठो को प्रतिवर्ष ग्यारह लाख व पद्रह लाख रुपये उनके मालवे व गुजरात मे दावो के एवज मे देने का प्रस्ताव रक्खा। हम यह देखते है कि नए समझौते की शर्तो मे पेशवा गुजरात को भी शामिल कर सका था। लौटते हुए दीपसिंह निजाम से भी मिला। निजाम को मुगल सरकार व मराठो के बीच किसी स्थायी समझौते के होने मे सदेह था। यद्यपि निजाम ने दीपसिंह से बाजीराव के चरित्र व योग्यता की प्रशंसा की परन्तु उसने कहा कि वह बाजीराव पर एक कौडी भर भी विश्वास नही करता है[1]।

बंगश को मालवे में सूबेदार नियुक्त करना

इसके पहले कि समझौते की वार्ता किसी निश्चित स्थिति मे पहुँचती, सितम्बर १७३० मे जयसिंह के स्थान पर मुहम्मद खा बगश को मालवे मे सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। हाल ही मे बगश को बाजीराव के बुंदेलखड पहुँचने पर वहाँ से भागना पडा था। जब उससे इलाहाबाद का सूबा ले लिया गया तो उसने जफर खां

1. दीपसिंह से सबधित वृत्तान्त, दस्तूर कोमवार, जि 1, पृ 199, दीपसिह-बख्शी हेमराज (आमेर का), 16 जून 1730, ज आ. पेशवा दफ्तर, जि 10, 66, व सरदसाई, 2, पृ 112-14 पर आधारित है।

को रिश्वत देकर तथा बादशाह की कृपा-पात्र कोकी जू की मार्फत मालवा का सूबा प्राप्त कर लिया[1]। इस कार्य मे उसे कमरुद्दीन खा, सादत खा आदि की भी सहायता मिली होगी। हम यह देख चुके है कि ये लोग जयसिंह के मुगल-मराठा समझौता कराने के प्रयत्नो के घोर विरोधी थे, और मालवा की सूबेदारी जयसिंह के हाथ मे नही रहने देना चाहते थे। इस समय बगश के मालवा मे नियुक्त किए जाने का एक कारण बादशाह मुहम्मद शाह की बीच नदी मे घोडे बदलने की प्रवृत्ति भी थी। इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि जयसिंह ने दीपसिंह को भेजकर समझौते के बारे मे जो बात चलाई थी वह व्यर्थ हो गई।

बंगश की मालवा मे सूबेदारी,
बंगश का जयसिंह के नाम पत्र

बगश को विश्वास था कि उपलब्ध साधनो का पूरा व योजना बद्ध रूप से उपयोग करके मराठो को मालवा से निकाला जा सकता है। मालवा जाते हुए उसने जयसिंह को एक पत्र लिखा जिसमे उसने सलाह दी कि महाराजा मराठो पर भरोसा न करे। यद्यपि मराठे समय आने पर बुंदेलो को भी समाप्त कर सकते है, तथापि इस समय वे उनके मित्र होने का दावा करते है। उसने लिखा कि महाराजा के पास लाखो आदमी हैं और करोडो की जागीरे है, और उसे चाहिए कि वह अन्य अफसरों के साथ मिलकर मराठो के विरुद्ध कार्यवाही करे। उसने यह भी लिखा कि मराठे व बुंदेले मिलकर उन लोगो को हानि पहुँचा सकते है। उसने सलाह दी कि बादशाह को आगरे आ जाना चाहिए क्योकि उस सूबे से मराठो को दूर रखना नितान्त आवश्यक है। यदि यह सब कुछ किया जाय तो मुठ्ठी भर मराठो को नर्मदा के उस पार खदेडना कठिन कार्य नही है[2]। शीघ्र ही बगश की आशा व राजनीतिक स्थिति का उसका अध्ययन भ्रमपूर्ण सिद्ध हो गए।

बंगश की मराठों के विरुद्ध असफलता; उसकी निज़ाम से भेट

६ नवम्बर १७३० को बंगश दिल्ली से मालवे के लिए रवाना हुआ। ओरछा, दतिया, शिवपुर, कोलारस, रतलाम आदि के राजाओ को बगश की सेना मे शामिल होने की आज्ञा पहले ही भेजी जा चुकी थी। बादशाह ने जयसिंह व महाराणा को भी बगश की सहायता करने को लिखा। महाराणा ने तब अपने धाभाई के साथ कुछ सैनिक व तोपे मडेश्वर के लिए रवाना कर दी। जब बगश ग्वालियर पहुँचा तो उसे ज्ञात हुआ कि मराठो की एक बडी सेना नर्मदा पार करने को तैयार है[3]।

1 इरविन, 2, पृ 249।
2 खुजिस्ता, 281, 288, 208 (पार्टीज, पृ. 209)।
3 इरविन, "द बंगश नवाब्ज आव फर्रूखाबाद-ए-क्रोनिकल (1713–1857)", जर्नल आव द बंगाल एशियाटिक सोसायटी, 4, 1878 ई. पृ. 308–09।

अक्टूबर १७३० मे पेशवा ने मालवा मे मराठा सैनिक कार्यवाही का सचालन होल्कर को दे दिया और कुछ माह बाद राणोजी सिन्धिया को भी वहां नियुक्त कर दिया। आने वाले वर्षो मे मराठा सेनाएँ इन दो अत्यन्त प्रतिभाशाली सेनानायको के नेतृत्व मे मालवा मे सक्रिय रही। वगश मालवा के राज्यो व गावो को द्रुतगति से चलने वाली मराठा सेनाओ के आकस्मिक आक्रमणो व लूटपाट से नही बचा सका। अन्त मे उसने निजाम से सहायता प्राप्त करने का सोचा और मार्च १७३१ मे 'इस्लाम के शत्रुओ' के विरुद्ध योजना बनाने के लिए उससे मिला। वगश को यह सदेह था कि हिन्दू मराठो का साथ दे रहे है। वह पन्द्रह दिन तक निजाम के साथ रहा और दोनो ने सेनापति दाभाडे, गायकवाड व उदाजी पवार को पेशवा के विरुद्ध सहायता देने का निश्चय किया। परन्तु अप्रेल १७३१ मे दाभाडे की पेशवा के हाथो पराजय व मृत्यु के बाद इस योजना को कार्यान्वित करना असभव हो गया।

मार्च-अप्रेल १७३१ मे होल्कर ने मदसोर व रामपुरा के आस-पास का प्रदेश लूटा और अताजी मनकेश्वर ने कायथ, शाहजहापुर आदि लूटे। वगश ६ मई को उज्जैन पहुँचा और मराठो के साथ कुछ झडपो के बाद वह बरसात विताने के लिए सिरोज मे रुक गया। यहा से उसने तुरन्त मदद भिजवाने के लिए बादशाह को लिखा और कोटा, नरवर आदि के राजाओ के विरुद्ध यह आरोप लगाया कि वे उसका साथ नही दे रहे हैं।

बंगश को मालवा से हटाना व जयसिंह की वहाँ नियुक्ति

१७३१ मे मराठे मालवा मे पहले से भी अधिक सक्रिय रहे। ऐसा अनुमान था कि उस वर्ष लगभग एक लाख मराठा सवार प्रान्त मे लूटमार कर रहे थे। वगश सिरोज मे अटका हुआ था। दिल्ली से उसे कोई सहायता भी नही मिली थी। उसकी इस असफलता व नरवर के छत्रसिह से शाहाबाद लेने का प्रयत्न करने के कारण उसे मालवा के सूबे से हटा दिया गया। खानदौरा ने तो यहा तक कहा कि वगश शत्रुओ से मिला हुआ है। उसे सूचना मिली कि उसके स्थान पर जयसिह को सूबेदार नियुक्त किया जा रहा है। जयसिह द्वारा भेजे गए अफसरो को सूबे का चार्ज देने के बाद बगश दिल्ली लौट आया (६ दिसम्बर १७३२)।[1]

मालवा मे बंगश की असफलता वास्तव मे कमरुद्दीन खा, सादत खा आदि की मराठा समस्या के प्रति उनकी नीति की असफलता थी। पिछले कुछ वर्षो मे मराठो ने गुजरात, बुदेलखड व दक्षिणी राजपूताने मे जो सफलता प्राप्त की थी, उसको देखते हुए मालवा मे वगश की मराठो के विरुद्ध असमर्थता

1 उपरोक्त वृत्तान्त पेशवा दफ्तर, जि 30, पृ. 300, 304-6, इरविन, जर्नल बगाल एशियाटिक सोसाइटी, 4, 1878 ई, पृ. 309, 315-17, 321-24; मालवा, पृ 215, 217-18, 219-21 पर आधारित है।

स्वाभाविक थी। इसलिए यह उचित ही था कि सवाई जयसिंह को, जिसे एकाएक ही मालवा से हटा दिया गया था, मराठा समस्या के समाधान के लिए पुनः नियुक्त किया जाय।

सवाई जयसिंह की मालवा मे तीसरी व अन्तिम सूबेदारी :
मालवा में जयपुर–मेवाड़ के संयुक्त शासन की जयसिंह की योजना

जयपुर से २० अक्टूबर १७३२ को चलकर जयसिंह दिसम्बर मे उज्जैन पहुँच गया। उसे मराठो के विरुद्ध तैयारी करने व अतिरिक्त सेना भर्ती करने के लिए तेरह लाख रुपये दिए गए थे। इसके अलावा उसे सात लाख रुपये उधार के रूप मे इसी कार्य के लिए दिए गए थे। इस समय जयसिंह जयपुर व मेवाड के सम्मिलित प्रयत्नो से मालवे की सुरक्षा के लिए एक नई योजना बना रहा था। उसने अपने दीवान राजा अयामल को योजना के अंतर्गत दोनो राज्यो के भार व लाभ के वितरण के बारे मे निश्चित रूप से सब बाते तय करने के लिए उदयपुर भेजा। अयामल के आसौज वदी १३ स १७८९ (१७३२) के जयसिंह के नाम पत्र से ज्ञात होता है कि मालवा मे मेवाड की ओर से चौबीस-पच्चीस हज़ार सवार व नौ हजार प्यादे व जयपुर के पन्द्रह हजार सवार व पन्द्रह हजार प्यादे रखना तय हुआ। यह भी तय हुआ कि राजस्व व पेशकश से जो आमदनी होगी उसका एक भाग मेवाड को और दो भाग जयसिंह को मिलेगे। मेवाड की फौज १७८९ के पूरे वर्ष सूबे मे रहेगी और अगले वर्ष से छः माह मेवाड की और छः माह जयपुर की फौज सूबे मे रहेगी। दोनो राज्यो के बख्शी, नायब व मुतसद्दी मिलकर काम करेगे, और यदि मराठो से समझौता हो गया तो जो भूमि व राजस्व बादशाह उन्हे सूबे मे से देगे, उसका भार दोनो राज्य बराबर-बराबर बाट लेगे। महाराणा की ओर से धाभाई नगराज ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किए।[1]

मराठो का मालवा में प्रवेश, होल्कर का ज़ोरावर सिंह को पत्र

यह योजना कार्यान्वित भी नही हो पाई थी कि मराठे मालवा मे आ पहुँचे। ११ दिसम्बर १७३२ के पत्र मे सिन्धिया व होल्कर ने जयपुर के बख्शी जोरावरसिंह को, जो रामपुरे मे नियुक्त था, लिखा कि वह रामपुरे का बकाया देने की व्यवस्था करे, और कोटा का मामला तय करवाए। एक मराठा टुकडी डूंगरपुर बासवाडा की ओर भी बढी परन्तु इसे कुछ हाथ नही लगा, क्योकि जैसा टुकडी के मराठा सरदार ने लिखा, वहाँ बिना फौज के काम बनना कठिन था।[2]

---

1 अयामल–सवाई जयसिंह, आसोज वदी 13, सं. 1789 (1732 ई.) ज आ.।

2. होल्कर व सिन्धिया–बक्शी जोरावर सिंह (आमेर का), 11 दिसम्बर 1732, ज. आ; पेशवा दफ्तर जि. 14, नं 3।

जयसिंह का मंदसोर के निकट होल्कर से संधि करना

इस समय जयसिंह बुंदेलखंड की ओर बढ रहा था जहाँ चिमनाजी अप्पा के सक्रिय होने का समाचार मिला था। जैसे ही यह समाचार होल्कर व सिन्धिया को मिला, वे फौज का भारी सामान पीछे छोड़कर तेजी से आगे बढ़े और उन्होंने मदसोर के निकट जयसिंह को घेर लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि मराठों का आगमन एकाएक ही हुआ था और जयसिंह इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। इसलिए जयसिंह ने मदद आने तक खाइया आदि खोदकर वहीं रुक जाना ठीक समझा। पहले तो जयसिंह ने कृष्णाजी व उदाजी पवार से, जो मालवा में उनके हिस्से के बारे में पेशवा से असन्तुष्ट थे और आस-पास चक्कर लगा रहे थे, गुप्त वार्ता आरम्भ की, परन्तु जब होल्कर को इसका पता चला तो उसने उदाजी की सेना का सामान लूट लिया और उसे जयसिंह से मिलने से रोक दिया। दिल्ली से तुरन्त मदद आने की आशा भी नहीं थी। इसलिए जयसिंह ने होल्कर से समझौते की बातचीत शुरु कर दी। जयसिंह ने छः लाख रुपये नगद व मालवे के २८ परगनों की वसूली (जो मराठे पहले ही वसूल कर चुके थे) देने का प्रस्ताव रखा। परन्तु होल्कर ने इन शर्तों को अस्वीकार कर दिया। कुछ दिन बाद जब जयसिंह को यह सूचना मिली कि दिल्ली से मदद आ रही है तो उसने समझौते की ातचीत बन्द कर दी और मराठों पर एक जोरदार आक्रमण करके उन्हे पीछे हटने पर बाध्य किया। मराठा लगभग ३२ मील पीछे जाकर रुक गए। इस आक्रमण मे मराठों के १०-१२ अफसर व १००-२०० सवार काम आए। जयसिंह होल्कर की ओर बढा परन्तु उसने १६ मील ही तै किए होंगे कि होल्कर ने उसे पुनः घेर लिया। जयसिंह ने अब समझौते के लिए वार्ता फिर शुरू की, और इस बार होल्कर ने पहले वाले प्रस्ताव को ही स्वीकार कर लिया। एक मराठा फौज ने रामपुरा जाकर जयपुर के वहाँ नियुक्त अधिकारियों से ७,५००० रुपये वसूल किए। जयसिंह को मराठों के इस व्यवहार से गहरा दुख हुआ।[1]

मेवाड़ को मालवे से फौज वापस बुलाने का आदेश

१९ नवम्बर १७३२ को ८००० मेवाडी फौज मालवा सूबे मे जयपुर व मेवाड के सम्मिलित शासन की योजना के अन्तर्गत उज्जैन पहुँची। परन्तु अक्टूबर १७३३ मे महाराणा को मालवा से अपनी फौज वापस बुला लेने के बादशाह के आदेश पहुँच गए।[2] बादशाह की इस आज्ञा के कारण अस्पष्ट है।

---

1. उपरोक्त वृत्तान्त के लिए देखिए पेशवा दफ्तर जिल्द 14, न. 1, 2, जिल्द 15, 6, गुलाबराय-हेमराज, चैत्र सुदि 6, सं 1789 (1732 ई) ज. आ.।
2. जोवराज-विजयराम 21 नवम्बर 1732, राव जगराम (जयसिंह का देहली स्थित वकील)-बख्शी जोरावरसिंह (आमेर का), 6 नवम्बर 1733, ज आ।

यहाँ हम उन दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियो के बारे मे देखेगे जिनके कारण जयसिंह ने महाराव बुद्धसिंह को बूंदी की गद्दी से हटा दिया। हाडौती मे दुखद घटनाओ का जो क्रम शुरू हुआ, उससे राजपूताने का इतिहास बाद तक प्रभावित हुआ।

जयसिंह का बुद्धसिंह को बूंदी की गद्दी से हटाना

यह हम देख चुके है कि दो बार जयसिह ने महाराव बुद्धसिंह को उसका राज्य वापिस दिलवाया था। महाराव बुद्धसिंह जयसिह का बहनोई था। फर्रुखसियर के अपदस्थ किए जाने के बाद दोनो ने सैयदो के विरुद्ध मिलकर सघर्ष किया था। १७२७ तक जयसिह व बुद्धसिंह के घनिष्ठ सम्बन्ध रहे। इसके बाद उनके सम्बन्ध तेजी से बिगडते चले गए, और अन्त मे बिल्कुल टूट गए। जिन परिस्थितियो मे इनके सम्बन्ध बिगडे वे इस प्रकार हैं।

बुद्धसिंह का भवानीराम को नकली बताना

बुद्धसिंह का जयसिंह से समझौता

अप्रेल १७२८ मे जब जयसिंह पावटा (जयपुर के ६८ मील पूर्व) मे था तो उदयपुर से सलूबर का ठाकुर केसरीसिंह, महाराणा के चाचा किशोरसिह व मेवाड के पुरोहित सवाई जयसिह के बडे पुत्र ईश्वरीसिह के लिए नारियल लाए। जयसिंह की बहन व महाराव बुद्धसिंह की रानी अमर कुवर अपने आठ वर्षीय पुत्र भवानीसिंह (जन्म ३० जुलाई १७१९) के साथ वही थी।[1] उसने जयसिंह से भवानीसिंह के लिए नारियल स्वीकार करने को कहा। जयसिंह के कहने पर सलूबर ने नारियल महाराव बुद्धसिंह के पुत्र के लिए भेट किया और सवाई जयसिंह ने महाराव के वहाँ न होने के कारण नारियल अपने भाजे के लिए स्वीकार कर लिया। परन्तु बुद्धसिह कछवाही रानी से उसके (कछवाही) बुरे स्वभाव व रानी चूडावत के अत्यधिक प्रभाव मे होने के कारण उससे घृणा करता था। उसने सलूंबर से कह दिया कि विवाह की बात बिना उसकी आज्ञा के पक्की न की जाय। जब जयसिंह को यह विदित हुआ तो उसने महाराव से इसका कारण पूछा। महाराव ने कहा कि लडका कृत्रिम हे। जयसिंह ने तब क्रोध मे पूछा कि यदि भवानी सिंह कृत्रिम है तो महाराव ने अबतक क्यो नही कहा। जब बुद्धसिंह ने शपथ खाकर आरोप दुहराया तो जयसिंह ने कहा कि वह महाराव पर विश्वास नही करता। महाराव वाममार्गी है। जब बुद्धसिंह ने पुन भवानीसिंह के नकली होने का दावा किया तो जयसिंह ने कहा कि यदि वह लिखकर दे तो वह (जयसिंह) भवानीसिंह की हत्या करवा देगा। जयसिंह ने कहा कि महाराव यह भी लिखे कि

1 दस्तूर कोमवार, जिल्द 24, राजलोक सगाई (महाराज कुवर)।

वह अपनी राठौड व चूडावत रानियो के पुत्रो को उसे (जयसिंह को) सौंप देगा और उसके द्वारा मनोनीत बालक को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करेगा ।[1]

जयसिंह का महाराणा से सारा वृत्तान्त कहना, भवानीराम की हत्या

कुछ महीने बाद जब जयसिंह उदयपुर गया तो उसने सारा वृत्तान्त महाराणा को सुनाया और महाराव बुद्धसिंह का इकरारनामा भी बताया। जयसिंह ने कहा कि महाराव उसकी (जयसिंह की) बहिन से भवानीसिंह के जन्म के समय से ही अकारण नाराज है, और जब कहता है कि भवानीसिंह उनका औरस पुत्र नही है और वह कछवाही रानी के निकट कभी गया ही नही। जयसिंह ने कहा कि यदि यह सच होता तो उसकी बहिन के दो सतान कैसे होती ? सत्य यह है, जयसिंह ने कहा, कि बुद्धसिंह कौलमत को मानता है और उसकी (जयसिंह की) बहन वैष्णव हे। दूसरे, वह राणी चूडावत को बहुत चाहता है। जयसिंह ने कहा कि जब उसने बुद्धसिंह से इकरारनामे की शर्तें स्वीकार करने के लिए कहा, तो उसे तनिक भी आशा नही थी कि वह इसके लिए तैयार हो जाएगा, परन्तु उसने लिखित मे अपनी स्वीकृति दे दी, और प्रमुख हाडाओ द्वारा इकरारनामे को प्रमाणित भी करवा दिया। जयसिंह के कहने पर महाराणा ने भी इस इकरारनामे पर हस्ताक्षर कर दिए और अपने सोलह उमरावो से उसे प्रमाणित करवा दिया।[2] इसके कुछ दिन बाद ही भवानीसिंह की आबेर मे हत्या करवादी गई।

सूर्यमल द्वारा दिए गए उपरोक्त वृत्तान्त की पुष्टि दो तीन महत्वपूर्ण पत्रो से होती है जो जयपुर मे कपटद्वारा कागजातो मे सुरक्षित है।[3] इनसे ज्ञात होता हे कि बुद्धसिंह ने अपनी मर्जी से किसी को गोद न लेने का वचन दिया था। सूर्यमल लिखते हे कि वे स्वय निश्चित पूर्वक नही कह सकते कि भवानीसिंह नकली था अथवा नही। कछवाहा की कुटिल प्रकृति को देखते हुए भवानीसिंह का नकली होना सभव है। साथ ही बुद्धसिंह द्वारा मानसिक सतुलन खो देने के कारण भी यह सभव है कि भवानीसिंह वास्तव मे महाराव बुद्धसिंह का ही पुत्र हो और बुद्धसिंह का आरोप गलत हो।

बुद्धसिंह द्वारा भवानीसिंह को अपना पुत्र स्वीकार करना

जब कछवाही रानी को यह ज्ञात हुआ कि भवानीसिंह को मार दिया गया है, और इसमे महाराव बुद्धसिंह का हाथ है, तो उसने अन्न जल

---

1. वंशभास्कर जि 4, पृ 4096–3100।
2. वही, पृ. 3111–13,
3. कागजात न. 1425। आर, व 855। आर, व डिंगल पत्र नं 1493 (आषाढ वदि 2, सं. 1787) कपटद्वारा कागजात जिनसे ज्ञात होता है कि बुद्धसिंह ने बिना जयसिंह की स्वीकृति के किसी बालक को गोद न लेने का वचन दिया था।

छोड दिया। बुद्धसिंह ने उसे मनाने का बहुत प्रयत्न किया। कई दिन बाद उसने अपने पति को इस शर्त पर क्षमा कर दिया कि वह यह लिखकर दे कि भवानीसिंह उसका ही पुत्र था। बुद्धसिंह ने यह लिख दिया।

बुद्धसिंह द्वारा वचन तोड़ना और जयसिंह के प्रस्ताव को ठुकराना

कुछ समय बाद (जून १७२९) बुद्धसिंह को चूडावत रानी के पुत्र हुआ। बुद्धसिंह ने पुत्र जन्म को छिपाना ठीक नही समझा जिससे कि आगे चलकर उसकी वैधता के बारे मे किसी को सदेह न हो। महाराव ने जयसिंह को आश्वासन दिया कि वह अपने वचन के अनुसार उस बालक (उम्मेदसिंह) को जयसिंह को सौप देगा परन्तु उसे अपने पुत्र को जातकर्म सस्कार होने तक अपने पास रखने दिया जाय। बाद मे जब जयसिंह ने उम्मेदसिंह को लेने के लिए आदमी भेजे तो बुद्धसिंह ने उन्हे तिरस्कार पूर्वक वापस लौटा दिया। इस पर जयसिंह ने बुद्धसिंह को बूंदी की गद्दी से हटाने का निर्णय किया। परन्तु ऐसा करने से पहले उसने महाराव बुद्धसिंह को बूंदी मे बने रहने का एक और अवसर दिया। जयसिंह ने महाराव को कहलाया कि इकरारनामे के अनुसार वह उम्मेदसिंह को उसे सौप दे और करवर के सालिमसिंह हाडा के पुत्र दलेलसिंह को अपना उत्तराधिकारी स्वीकार करे। बुद्धसिंह ऐसा करने के लिए तैयार नही हुआ। जयसिंह ने तब दलेलसिंह को बुलाकर अपने पास गद्दी पर बैठाया और घोषणा की कि दलेल अब बूदी का राजा होगा, और शीघ्र ही उसका विवाह जयपुर की राजकुमारी से सम्पन्न किया जावेगा। जयसिंह ने सालिमसिंह हाडा को आज्ञा दी कि वह महाराव बुद्धसिंह को बूदी से हटा दे।

जयसिंह द्वारा दलेलसिंह को बूंदी की गद्दी पर बैठाना और बादशाह से स्वीकृति प्राप्त करना

इसके बाद जयसिंह ने बादशाह को लिखा कि महाराव बुद्धसिंह की मुगल सेवा मे रहने की कोई इच्छा नही है और उसके कोई पुत्र न होने के कारण वह दलेलसिंह को, जो बुद्धिमान व साहसी हाडा है, अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता है। जयसिंह ने लिखा कि वह स्वय, महाराणा व महाराजा अभयसिंह इस निर्णय के पक्ष मे है इसलिए दलेलसिंह को बूदी का राजा बनाए जाने के बारे मे आदेश भेजने की कृपा करे। बादशाह ने इस आशय का आदेश शीघ्र ही भेज दिया। मेवाड व जोधपुर से लेकर नरवर, बजरगगढ, राधोगढ, शिवपुरी आदि के किसी भी शासक ने बुद्धसिंह को हटाने का विरोध नही किया। इसलिए दलेलसिंह का राज्यारोहण निर्विरोध हो गया।

इसके पश्चात् जयसिंह दलेलसिंह को अपने साथ लेकर मालवे की ओर चला गया। कुछ ही दिन बाद बुद्धसिंह का अपनी कछवाही रानी के सगे भाई, विजयसिंह,

को जयपुर की गद्दी दिलवाने का षड़यंत्र पकड़ा गया। विजयसिंह १७११ से नजर वन्द था। जब इस षड़यंत्र का पता चला तो विजयसिंह को मार दिया गया।[1]

एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना

उपरोक्त घटनाएँ राजपूताने के लिए अत्यन्त दुभाग्यपूर्ण थी। ऐसे समय जवकि वढते हुए मराठा दवाव का सामना करने व मुगल साम्राज्य के पतन से उत्पन्न राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाने के लिए राजपूतो को पहिले से भी अधिक सगठित होने की आवश्यकता थी, वुद्धसिंह को अपदस्थ करने से राजपूत राज्यो मे वैमनस्य व गहरा मतभेद उत्पन्न हो गया। यद्यपि ऊपरी तौर से कोटा व जोधपुर ने जयसिंह के कार्य का विरोध नही किया, परन्तु जयसिंह की मृत्यु के वाद उन्होने उम्मेदसिंह का समर्थन किया।

पचोला का युद्ध

कुछ ही दिन वाद जयसिंह कि सूचना मिली की महाराव बुद्धसिंह वूंदी पर पुनः अपना अधिकार जमाने की योजना वना रहा है। उसे यह भी ज्ञात हुआ कि महाराव के पास १५,००० सवार है जिनमे से ४००० रूहेले है और १५,००० की फौज गजसिह खीची के नेतृत्व मे (जिसमे कई पठान भी हैं) गागरौन मे है। जयसिह ने तुरन्त जयपुर से छै प्रमुख ठाकुरो (ईसरदा, सारसोप, सावर, सेवार, नतौरी व पाऊनढेरा) को ३००० सैनिको के साथ सालिमसिह हाडा के पास भेजा। नरवर से खाडेराय दीवान के नेतृत्व मे एक फौज दलेलसिह से आकर मिल गई। दोनो पक्षो की फौजो की पचोला के स्थान पर टक्कर हुई। खाडेराय व जयपुर के उपरोक्त सभी ठाकुर काम आए परन्तु महाराव बुद्धसिह को हार कर भागना पडा।[2]

जयसिंह द्वारा दलेलसिंह का राजतिलक करना व अपनी पुत्री की उससे सगाई करना

इसी वीच जयसिह मालवे से वूंदी के लिए चल चुका था। जब वह कोटा की सरहद पर आया तो महाराव दुर्जनसाल ने उसका स्वागत किया (११ मई १७३०)।[3] अगले दिन जयसिह दलेलसिह को साथ लेकर दुर्जनसाल के खेमे मे गया। जयसिंह ने महाराव को वुद्धसिह का वह इकरारनामा दिखाया जिस पर महाराणा के

1. वशभास्कर, 4, पृ. 3095, 3123-3137।
2. वख्शी जोरावरसिंह व गुलावराय-हेमराज (आवेर का), 1 मई 1730 व 23 मई 1730, ज. आ ; गजसिंह-वुद्धसिंह (अर्जदाश्त), 10 जुलाई 1730, ज. आ., वशभास्कर, 4, पृ 3142-3189। जुलाई 21 के एक कागज में ठाकुर कोजूसिह कछवाहा (ईसरदा) फतहसिंह (सारसोप) घासीराम बहादुर सिंह (पाउनढेरा), अचल सिह आदि की पंचोला गाव में मृत्यु व उनकी छत्रियां के लिए 5000 रुपये दिए जाने का उल्लेख है।
3. दस्तूर कोमवार, जि. 32, पृ 424-25।

हस्ताक्षर थे, और महाराव से कहा कि वह भी उस पर अपनी मुहर लगा दे। महाराव दुर्जनसाल ने तब उस पत्र पर अपनी मुहर लगा दी। १९ मई १७३० को जयसिह ने दलेलसिह का राज्याभिषेक किया। पहले महाराव दुर्जनसाल ने दलेल-सिह के टीका किया और जयसिह ने अपने हाथ से दलेलसिह पर चवर ढुलाते हुए उसे बूंदी का नया रावराजा घोषित किया। जयसिह ने अपनी पुत्री का दलेलसिह के साथ विवाह के प्रस्ताव हेतु नारियल भेजा। तत्पश्चात् जयसिह पंचोला का युद्ध-स्थल देखने गया और वही पर उसने बूदी के कुछ गाव आवेर के उन ठाकुरो के उत्तराधिकारियो को प्रदान किए जो पचोला के युद्ध मे काम आए थे।[1]

पचोला के युद्ध से सवाई जयसिह व बुद्धसिह मे किसी भी प्रकार के समझौते की सभावना समाप्त हो गई। युद्ध मे जयसिह को जो हानि उठानी पडी थी उसके कारण बुद्धसिह के प्रति उसका अब कडा रूख हो गया। महाराणा को अब भी आशा थी कि शायद जयसिह महाराव बुद्धसिंह को बूंदी पुनः लौटा दे। इसलिए उन्होने कोटा के महाराव को उदयपुर बुलवाया। परन्तु दुर्जनसाल ने पिछले कुछ महीनो मे जिस प्रकार जयसिंह का समर्थन किया था, उसके कारण महाराव का आना व्यर्थ हुआ। इसी बीच बुद्धसिह उदयपुर छोड अपने ससुर बेगू (मेवाड मे) के ठाकुर देवीसिह के पास चला गया। मार्ग मे उसने मेवाड के कुछ गावो को लूट लिया। इससे महाराणा सग्रामसिह उसके विरुद्ध हो गया।[2]

कृष्ण कुमारी का दलेलसिंह से विवाह, इकरारनामा

दो वर्ष बाद (१७३२) जयसिह ने अपनी पुत्री कृष्ण कुमारी का विवाह दलेल सिह से कर दिया। विवाह के पूर्व दलेल के पिता सालिमसिह ने एक इकरारनामे पर हस्ताक्षर किए जिसमे कृष्ण कुमारी के पुत्र के दलेलसिह के बाद गद्दी पर बैठने की व्यवस्था थी। इस इकरारनामे मे कृष्ण कुमारी को पटरानी का स्तर दिया जाना स्वीकार किया गया। यह भी निश्चय हुआ कि रावराजा दलेलसिंह के जो विवाह हो चुके है उनके अतिरिक्त वह और कोई विवाह नही करेगा। इकरारनामे मे कृष्णा कुमारी के पुत्र की सुरक्षा की व अन्य रानियो के पुत्रो को बैठाने के किसी भी षडयत्र को रोकने की भी व्यवस्था थी।[3]

उपरोक्त वृत्तान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि बुद्धसिह को हटाने का कारण, जैसा टॉड व अन्य इतिहासकारो ने कहा है[4] जयसिह का बूदी व अन्य छोटे राज्यो को अपने आधिपत्य मे लाना नही था। सभवत बुद्धसिह को कभी भी

1 वशभास्कर, 4, पृ. 3192-93।
2 वही, पृ. 3202-3204।
3 याददाश्त (इस पर सामिमसिह के हस्ताक्षर है), 1 नवम्बर 1732, ज आ.।
4. देखिए टाड 2, पृ. 293, सरकार, फॉल, 1, पृ. 139।

अपना राज्य नही छोडना पडता यदि वह चू डावत रानी के पुत्र को अपने वाद वू दी की गद्दी पर बैठाने के लिए झूठ व छल कपट तथा कुत्सित आरोप लगाकर जयसिंह के हाथो अपने बडे पुत्र भवानीसिह की हत्या न करवाता, और तुरन्त वाद ही कछ-वाही को यह लिखकर न देता कि भवानीसिह उसी का पुत्र था। इसमे कोई सशय नही की बुद्धसिह का आचरण अत्यन्त दायित्वहीन था। जयसिंह को बुद्धसिंह के इस कथन पर सदेह था कि भवानीसिह कृत्रिम है और इसीलिए उसने महाराव से इकरारनामे पर हस्ताक्षर करवाए थे, जिससे यदि महाराव अपने पुत्र के जीवन से खिलवाड कर रहा हो तो वह इकरारनामे की शर्तो को सुनकर अपना विचार बदल दे। भवानीसिह की हत्या के बाद भी दलेलसिह को वू दी की गद्दी पर बैठाने से पहले जयसिह ने वुद्धसिह से कहा था कि यदि वह दलेलसिंह को अपना उत्तराधिकारी स्वीकार करले तो उसे वू दी से नही हटाया जाएगा। इससे स्पष्ट होता है कि जयसिह का बुद्धसिह के जीवन-काल मे उसे वू दी से हटाने का विचार नही था।

नवम्बर १७३३ से अप्रेल १७३४ के बीच मराठा-गतिविधि

मराठों का बूंदी के मामले में हस्तक्षेप

१७३३ की सर्दियो मे मराठा सेनाओ ने होल्कर, सिन्धिया, पीलाजी आदि के नेतृत्व मे मालवा मे पुनः प्रवेश किया। वे बुद्धसिंह की कछवाही रानी के निमत्रण पर महाराव को वू दी पुन दिलवाने के लिए आ रहे थे। कछवाही ने निमत्रण महाराव दलेलसिह हाडा के वडे भाई प्रतापसिह हाडा के द्वारा भिजवाया था, और मराठो को उनकी सहायता के बदले मे छ' लाख रुपया देने का वायदा भी किया था। अप्रेल के तीसरे सप्ताह मे मराठे बू दी के निकट आ पहुँचे। १८ अप्रेल को उन्होने शहर मे प्रवेश किया और चार दिन के घेरे के बाद किले पर अधिकार कर लिया। लडाई मे सालिमसिह हाडा के गहरी चोट आई और मराठे उसे बन्दी बनाकर ले गए। बूंदी मे महाराव बुद्धसिह का शासन पुन स्थापित होने की घोषणा करदी गई। कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए जयसिह की वहन ने होल्कर के राखी बाधकर उसे अपना भाई वनाया।[1]

परन्तु मराठो के वू दी से जाने के तुरन्त बाद ही जयसिह द्वारा भेजी गई २०,००० सेना वू दी आ पहुँची और दलेलसिह को पुनः गद्दी पर बैठा दिया गया। प्रतापसिह, जो बुद्धसिह की अनुपस्थिति मे शासन-कार्य चला रहा था, भाग कर होल्कर मे नेननगर मे मिला, परन्तु मराठा दुवारा हस्तक्षेप करने के इच्छुक नही थे।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि पेशवा ने यह अनुभव किया कि जयसिह बू दी

1. वशभास्कर, 4, पृ. 3216, 3220–21, 3225, श्रीचद्र-जोरावर सिह, वैशाख सुदि 2, व वैशाख सुदि 6, सं 1791 (1734 ई.) के पत्र।
2. वशभास्कर पृ. 3221–22।

के मामले मे अपनी बात रखने पर तुला हुआ है, और कुछ लाख रुपये के लिए मराठो को उससे सम्बन्ध नही बिगाडने चाहिए।

जैसा हम देखेगे, १७३५ के बाद मराठे जयसिह से अच्छे सबंध बनाए रखने पर अधिक महत्व देने लगे थे। उन्हे मुगल सरकार के साथ समझौता करने मे जयसिह की मध्यस्थता की आवश्यकता थी। इसलिए उन्होने जयसिह के जीवन-काल मे बूदी के मामले मे और हस्तक्षेप नही किया। नवम्बर १७३७ मे कृष्णा कुमारी के एक पुत्र हुआ। १७४२ मे जयसिह ने अपने धेवते के लिए बादशाह से कुँवर का पद, नगाडा व ४०००/२००० के मसब प्राप्त किए।[1] १७३९ तक महाराव बुद्धसिह की मृत्यु हो चुकी थी और उनके दोनो पुत्र, उम्मेदसिह व दीपसिह, अभी छोटे थे और उनसे किसी प्रकार का डर नही था। महाराव दलेलसिह की स्थिति इस प्रकार सुरक्षित प्रतीत होती थी।

मुजफ्फर खां का अभियान

१७३३ की सर्दियो मे जब मराठे मालवा मे आए और उनके ग्वालियर व नरवर की ओर बढने का समाचार देहली पहुँचा तो खानदौरा के भाई मुजफ्फर खा को उनके विरुद्ध भेजा गया। परन्तु वह देहली से मार्च १७३४ के अन्त मे रवाना हुआ और जबतक वह सिरोज पहुँचा (जून), मराठे भोपाल, बुदेलखण्ड, नरवर, ग्वालियर व बूदी आदि मे सफल अभियान के बाद वापस जा चुके थे। मुजफ्फर खा तब दिल्ली वापस आ गया।[2] मराठो के विरुद्ध बादशाही मसबदारो की इस प्रकार की शिथिलता व अकर्मण्यता अब सामान्य बात हो गई थी।

हुरडा सम्मेलन

मालवा के विभाजन की मेवाड़ की योजना

मुगल सरकार की मालवा, गुजरात व बुदेलखड मे मराठो को रोकने मे असफलता, व मराठो के बूदी के मामले मे हस्तक्षेप के कारण राजपूत शासको ने अनुभव किया कि उन्हे मराठो के बढते हुए प्रभाव को रोकने के लिए सम्मिलित रूप से प्रयत्न करने चाहिए, अन्यथा राजपूताने की भी वही दशा हो जाएगी जो मालवा की थी। महाराणा व अन्य राजपूत शासक यह भी अनुभव कर रहे थे कि राजपूत राज्यो की सुरक्षा के लिए मालवा मे मराठा प्रभाव को समाप्त करना अथवा कम करना आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाराणा को यह भी आशा थी कि राजपूतो के सम्मिलित प्रयत्न से वे मालवा को अपने अधिकार क्षेत्र मे ला सकेगे। हुरडा सम्मेलन से कुछ दिन पूर्व लिखे एक पत्र मे मेवाड के प्रमुख

---

1 दस्तूर कोमवार, जि. 24, रावराजा दलेलसिंह-जयसिंह, भाद्रपद वदि 5, सं 1799 (1742 ई.) ज आ।

2. रुस्तम अली, 265 (बी), इरविन, 2, पृ. 279।

उमराव ने मालवा के विभाजन के बारे में रूपरेखा तैयार की थी। उसके अनु-सार प्रान्त के दो भाग मेवाड़ को, एक भाग जोधपुर, एक भाग जयपुर, और एक भाग का आधा बूंदी और कोटा को और बाकी का आधा भाग अन्य राजपूत शासकों को देने का विचार किया गया था। यह पत्र हुरड़ा समझौते की शर्तों की शून्यता का अर्थ स्पष्ट करता है।

समझौते की शर्तें

ऐसा प्रतीत होता है कि महाराणा संग्रामसिंह, जिनकी जनवरी १७३४ में असामयिक मृत्यु राजपूताने के लिए गम्भीर हानि थी, मराठों के विरुद्ध राजपूताने के ही साधनों पर आधारित प्रति-आक्रमण की योजना बना रहे थे। महाराणा की मृत्यु के बाद सम्मेलन पूर्व-निश्चित स्थान हुरड़ा (उत्तरी मेवाड़ में अजमेर की सीमा के निकट) हुआ। १६ जुलाई १७३४ को नए महाराणा जगतसिंह द्वितीय ने सम्मेलन की अध्यक्षता की जिसमे सवाई जयसिह के अलावा महाराजा अभयसिंह, महाराव दुर्जनसाल, राजाधिराज बख्तसिह व उनके उमराव तथा सलाहकार थे। अभयसिंह ने एक बडा लाल शामियाना लगवाया था जहाँ सम्मेलन मे भाग लेने वाले राजा व उनके सलाहकार बैठे।[2] अगले दिन (१७ जुलाई) समझौते पर महाराणा व अन्य राजपूत राजाओ ने हस्ताक्षर कर दिए। समझौते मे लिखा था कि वे अच्छे व बुरे समय मे एकता बनाए रखेगे, एक की इज्जत सबकी इज्जत समझेंगे; कोई राज्य दूसरे के देशद्रोही को शरण नही देगा, बरसात के बाद कार्य शुरू होगा जिसके लिए सभी राजा अपनी सेनाओ के साथ रामपुरे मे एकत्रित होगे, यदि कोई राजा अस्वस्थता के कारण आने मे असमर्थ है तो वह अपने कवर अथवा भाई को भेजेगा।[3]

हुरड़ा सम्मेलन की असफलता

मराठो के कारण उत्पन्न परिस्थिति का सम्मिलित रूप से सामना करने का निर्णय महत्वपूर्ण था, परन्तु जो निर्णय लिए गए उन्हे कार्यान्वित नही किया गया। आने वाले वर्षो मे जयसिह की मराठा नीति को देखने से प्रतीत होता है कि वह महाराणा जगतसिह के इस विचार से सहमत नही था कि मराठो को मालवा से निकाल कर प्रान्त को वे लोग आपस मे बाट लें। जयसिह को मराठा शक्ति की क्षमता के बारे मे जानकारी थी। मालवे को ऊपर लिखे अनुपात मे बाट लेना तत्कालीन स्थिति मे संभव भी नही था। जयसिह व नए महाराणा और अभयसिह

1 वीर विनोद, 2, पृ. 1225।

2 जोधपुर खरीता बही न 2, सं 1789–1792 रा. आ.। इसमे सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रमुख व्यक्तियो के हुरडा पहुँचने आदि का उल्लेख है।

3. समझौते की प्रतिलिपि, श्रावण वदि 13, सं 1791 (17 जुलाई 1734), कपटद्वारा कागजात।

के बीच सद्भावना का अभाव था। यह जयसिंह को अच्छी तरह ज्ञात था। ऐसी स्थिति मे सम्मिलित राजपूत प्रयत्न की सफलता की क्या संभावना थी ? सभवत: इसीलिए १७३४ की बरसात के बाद राजपूत राजाओ ने रामपुरे मे एकत्र होने के बजाय मुगल सरकार द्वारा आयोजित अभियान मे सम्मिलित होना अधिक लाभप्रद समझा। इस समय दिल्ली मे इस अभियान की तैयारी हो रही थी।

मराठो के विरुद्ध अभियान (नवम्बर १७३४–मई १७३५)

१७३४ की सर्दियो मे मुगल सरकार ने दो बडी सेनाएं मराठो को मालवे से निकाल देने के लिये भेजी। इनमे से एक सेना वजीर कमरुद्दीन खाँ के नेतृत्व मे पीलाजी जाधव के विरुद्ध गई, जो उत्तरी मालवा व बुंदेलखड मे सक्रिय था। कमरुद्दीन खा अपने प्रयत्न मे नितान्त असफल रहा और थक कर मई १७३५ मे दिल्ली वापस आ गया।[1] हम दूसरी सेना के बारे मे देखेगे जो खानदौरा के नेतृत्व मे दक्षिणी राजपूताने में आई जिस समय वजीर व्यर्थ ही पीलाजी के विरुद्ध जूझ रहा था।

नवम्बर १७३४ मे खानदौरां दिल्ली से चला। सवाई जयसिंह, अभयसिंह, दुर्जनसाल व अन्य राजपूत शासको के आने पर उसकी सेना की सख्या एक लाख से भी ऊपर हो गई।[2] फरवरी १७३५ मे यह विशाल परन्तु भारी भरकम सेना रामपुरा पहुँची जहाँ सिन्धिया व होल्कर के आने का समाचार मिला था। मराठा सरदारो ने आसपास के गाँवो मे लूटमार करने मे व्यस्त टुकडियो को तुरन्त बुला भेजा, और उनके आने पर शाही सेना का रसद का मार्ग काटकर उसे चारो ओर से घेर लिया। अगले कुछ दिनो मे मराठो व मुगलो मे छुटपुट झडपे होती रही। जब मुगल सेना घेरे को तोडने का प्रयास करती, मराठे घेरे का दायरा बढा देते। उधर मुगल सैनिक बिना उनकी तोपो के सरक्षण के अधिक दूर जाने का साहस नही करते थे। मुगल सैनिको के लडने की अनिच्छा, उनके मुख्य सेनापतियो की दरबार मे उनके विरुद्ध कमरुद्दीन खा, सादत खा आदि की विरोधी कार्यवाही के प्रति चिन्ता, और दरबार मे मराठो के प्रति विरोधी नीति के समर्थक इन दो दलो की अपनी-अपनी नीति को यथार्थता प्रदान करने की प्रवृत्ति के कारण मुगल सेना मराठा घेरे को तोडने मे असमर्थ थी। घेरे के नवे दिन शाही सेना तथा मराठो मे एक जोरदार झडप हुई। इसके बाद अचानक ही मराठो ने घेरा उठा लिया और ४०,००० मराठा सवार जयपुर राज्य की ओर तेजी से बढे जो इस

1 विस्तृत वर्णन के लिए देखिए दिवे, पृ 118–19, इरविन, 2, पृ. 279–80।

2. पेशवा दफ्तर, जि. 14, न. 23 (मार्च 14, 1735) के अनुसार सेना की सख्या 2,00000 सवार तक पहुँच गई। परन्तु रुस्तम अली के अनुसार (पत्र 266, ए) सख्या 90,000 तक पहुँची। यह संख्या अधिक सही प्रतीत होती है।

समय आरक्षित अवस्था मे था। तीन दिन बाद (२८ फरवरी) उन्होंने साभर (जयपुर के ३६ मील पश्चिम) लूट लिया। होल्कर की इस चाल ने जयसिंह को खानदौरा से अलग होकर अपने राज्य की रक्षार्थ वहां जाने पर बाध्य किया। १४ मार्च को नारोशकर ने पेशवा को सूचित किया कि इस समय जयसिंह जयपुर मे, होल्कर उससे २० मील आगे, व खानदौरा बूंदी मे है। इस प्रकार अपनी कुशल रणनीति द्वारा मराठो ने विशाल मुगल सेना को दो-तीन भागो मे बट जाने पर बाध्य कर दिया, जो अब अपनी-अपनी जगह मराठो की अगली चाल की चिन्ता मे हतोत्साह खडे थे।

अब यह स्पष्ट हो चुका था कि मराठो पर विजय पाने की कोई सभावना नही है। यद्यपि छोटे अफसर यह चाह रहे थे कि शत्रु पर आक्रमण किया जाय परन्तु जयसिंह व खानदौरा को इसमे कोई लाभ प्रतीत नही होता था। जयसिंह ने होल्कर, सिन्धिया आदि को ४०००–५००० के मनसब व कुछ लाख रुपये देने तथा दोस्त मुहम्मद रोहेले के इलाके पर अधिकार देने का सुझाव रखा। खानदौरा इस सुझाव से सहमत था।[1]

समझौते की बातचीत के लिए मराठो की ओर से पडित रामचंद्र जयसिंह व खानदौरां से मिला। खानदौरा ने होल्कर व सिन्धिया के आने पर जोर दिया। पहले तो इसके लिए मराठा तैयार नही थे, परन्तु जब रामचन्द्र २० मार्च १७३५ को पुनः मिलने आया तो यह तय हुआ कि होल्कर व सिंधिया ३१ मार्च को मिलने आए गे। यह भी तय हुआ कि मनसब स्वीकार करने के बाद से प्रथम तीन महीनो मे प्रत्येक प्रमुख मराठा सरदार को ८००० रुपये प्रतिदिन तीन माह तक दिए जाए गे। ३१ मार्च को होल्कर व सिन्धिया राजा आयामल के साथ जयसिंह से मिले। जयसिंह उन्हे खानदौरा से मिलाने के लिए ले गया। ऐसा प्रतीत होता है कि बातचीत के दौरान होल्कर व सिन्धिया ने मनसब स्वीकार करने के प्रश्न पर बिना पेशवा की स्वीकृति के कुछ भी कहना अनुचित बताया। उन्होने मालवे की चौथ की माग की। काफी लम्बी बातचीत के बाद खानदौरा ने बादशाह की ओर से २२,००,००० रुपये मालवा की चौथ के रूप मे देना स्वीकार किया[2]। चौथ की वसूली के बारे मे यह तय हुआ कि उन सब परगनो मे, जो मुगल सरकार के सीधे नियन्त्रण मे है, एक-एक मराठा अफसर नियुक्त किया जाएगा। मराठे तहसीलो की आधी आय लेगे और

1 उपरोक्त वृत्तान्त के लिए देखिए पेशवा दफ्तर, जि 14, न 21, 23, यथा, पत्र 137 (ए)–138 (बी), रुस्तम अली, पत्र 266, दीघे, पृ 119–20।

2 हेमराज-बक्शी जोरावर सिंह, 12 मार्च, 1735, ज आ.; दानसिंह (कैम्प से)–जोरावर सिंह, 31 मार्च, 1735, दस्तूर कोमवार जि 19, पेशवा दफ्तर, जि. 14, न 24, 26, 27।

जयपुर के अफसरो द्वारा जारी किए गए परवानो पर (जयसिंह इस समय मालवा का सूबेदार था) मराठा कर्मचारियो की भी मुहर होगी। यह भी तय हुआ कि मराठे चुंगी चौकी पर भी वसूली करेंगे। जयपुर के अफसर इस बारे मे बहुत दृढ थे कि उज्जैन मे मराठे किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे[1]। यद्यपि ये शर्तें कभी कार्यान्वित नही हुई, और न ही बादशाह ने इन्हे स्वीकार किया, परन्तु इनका खानदौरा व जयसिंह द्वारा स्वीकार किया जाना महत्वपूर्ण था।

सादत खां की जयसिंह व खानदौरां के विरुद्ध बादशाह से शिकायत

इसमे कोई सदेह नही कि सैनिक दृष्टिकोण से खानदौरा का अभियान पूर्णतया असफल रहा था। इसलिए जयसिंह व खानदौरा के आलोचको, विशेषकर सादत खा को इनके विरुद्ध बोलने का अवसर मिल गया। सादत खा ने बादशाह से कहा कि जयसिंह ने मराठो को शह देकर सूबे को बर्बाद करवा दिया है। यदि आगरा व मालवा के सूबे, जो जयसिंह के पास है, उसे दे दिए जाए, तो वह अपने मित्र निजाम की सहायता से मराठो को मालवा से निकाल सकता है। परन्तु जयसिंह व खानदौरा ने कहा कि सैनिक शक्ति का परीक्षण अनेक बार हो चुका है। वे पेशवा व उसके भाई के साथ सलूक करके उनकी बादशाह से भेट करवाएगे, और तब स्थायी समझौते की शर्तें तै कर ली जाएंगी। उन्होने कहा कि पेशवा समझौते के लिए इच्छुक है और इसका प्रमाण यह है कि वह अपनी मा को देश के उत्तरी भाग के तीर्थो की यात्रा के लिए भेज रहा है। यदि सादत खा व निजाम एक हो गए तो वे दूसरा बादशाह खडा कर देगे। खानदौरा ने आश्वासन दिया कि यदि मराठा-मागे स्वीकार कर ली गई, और उन्हे जागीरे दे दी गई, तो वे मुगल सूबो मे उत्पात नही मचाएगे।[2]

जब जयसिंह ने देखा कि बादशाह मराठा-समस्या को सुलझाने के इन दो परस्पर विरोधी मतो मे से किसी एक को चुनने मे असमर्थ है तो उसने सर्वोच्च स्तर पर मराठो से बातचीत करने की सोची। कमरुद्दीन खा व सादत खा की नीति की असफलता अभी सिद्ध हो चुकी थी। जयसिंह ने अनुभव किया कि मराठो के साथ समझौता करने का उपयुक्त समय आ गया है। अबतक उसने जदुराय, रामचद्र पत, सिन्धिया, होल्कर आदि से बातचीत की थी, और अनेक बार अपने दूत सतारा भेजे थे, परन्तु उसे पेशवा से जो अपूर्व योग्यता, साहस व दूरदर्शिता से उत्तर मे मराठा-प्रसार को सचालित कर रहा था खुलकर बात करने का अवसर नही मिला था। जयसिंह ने अपने यहाँ नियुक्त मराठा प्रतिनिधियो को बुलाया। बातचीत के समय बिहारीदास पचोली भी उपस्थित था। जयसिंह ने कहा कि सादत खा के उसके

1. हेमराज–जोरावर सिंह, 3 अगस्त, 1735 ज. आ।
2 देखिए पेशवा दफ्तर, जि. 14, न. 47 (अगस्त 1735), 39 (21 अक्टूबर, 1735)।

(जयसिंह) व खानदौरा के विरुद्ध आरोपो को सुनने के बाद बादशाह का मन फिर दुविधा मे पड गया है। इसलिए पेशवा मालवा मे नियुक्त सरदारो-होल्कर, सिंधिया आदि के साथ एक छोटी सेना (५०००) लेकर आए। जयसिंह ने उस सेना का और का खर्चा, व मालवा, सिरोज, दतिया, ओरछा की वसूली का भाग, कुल मिलाकर बीस लाख रुपये, देने का कहा। पेशवा के आने पर विचार-विमर्श करने के बाद यदि खानदौरा से पेशवा के सुरक्षित वापस लौटने के विश्वसनीय आश्वासन मिल गए तो वह पेशवा को बादशाह से मिलाने के लिए ले जाएगा, अन्यथा वह वहां से ही वापिस स्वदेश लौट जाए। जयसिंह ने अपने उस प्रस्ताव का पक्का जवाब शीघ्र भिजवाने के लिए पेशवा को कहलाया[1]।

बाजीराव व बादशाह की भेंट की संभावना से निजाम की चिन्ता

निजाम को बाजीराव व बादशाह की भेंट की संभावना बहुत अखरी। उसने मराठा वकील, आनन्दराय, से स्पष्ट कहा कि पेशवा को बादशाह से बातचीत नही करनी चाहिए। उसकी नीति जयसिंह की नीति से सर्वथा विरुद्ध थी। निजाम को डर था कि पेशवा व बादशाह के बीच समझौते मे उसको उखाड़ने का प्रयास किया जाएगा। हम देखेंगे, उसका यह डर सच था। इसलिए निजाम ने बादशाह से सैनिक व आर्थिक सहायता मागी जिससे, उसने लिखा, वह अपने दो उद्देश्य पूरे कर सके : एक तो मराठो के स्वराज्य के प्रदेश को नष्ट करना, और दूसरे दक्षिण के सूबो से उनके चौथ के अधिकार को समाप्त करना। परन्तु बादशाह ने उस समय निजाम के पत्र पर कोई ध्यान नही दिया।[2]

जयसिंह द्वारा राधाबाई का सौहार्द्रपूर्ण सत्कार

जून १७३५ मे जब बाजीराव की मा, राधाबाई, जयपुर आई तो जयसिंह को मराठो के साथ सद्भावना पूर्ण सबध स्थापित करने की अपनी इच्छा प्रगट करने का अवसर मिला। जब राधाबाई उदयपुर पहुँची तो उनका महाराणा ने भी बहुत आदर सत्कार किया।[3] राधाबाई सर्व विजयी महान पेशवा की मां ही नही थी,

1. पेशवा दफ्तर, जि 14। न 47। इस समय निजाम ने बादशाह को लिखा कि जयसिंह मराठो के विरुद्ध कार्यवाही करने मे हिचकिचा रहा है और मराठा उपद्रवो के कम हो जाने की आशा व उनके हितो को हानि से बचाने के लिए वह उन्हे अपना मित्र बनाना चाहता है। निजाम ने बार-बार यह लिखा कि मराठो को मालवा से बाहर कर देना चाहिए परन्तु साथ ही यह भी लिखा कि आलमगीर के मराठों को दबाने के सभी प्रयत्न असफल रहे थे, जबकि उस समय साम्राज्य की स्थिति कहीं अधिक समृद्ध व मजबूत थी। माधव राव पृ 141–48।
2. पेशवा दफ्तर (नई ग्रंथमाला), 1, नं. 26, (9 दिसम्बर, 1735), निजाम का पत्र मुसावी खा के पत्र संग्रह मे (माधवराव पृ. 140–45)।
3 वंशभास्कर, 4, पृ. 3223–24, सरकार, फॉल, 1, 143।

वे धर्मनिष्ठ ब्राह्मणी और तीर्थयात्री भी थी। इस कारण उनके प्रति विशेष आदर प्रदर्शित किया गया। १ जून को जब वे जयपुर के निकट पहुँची तो सवाई जयसिह ने कई मील आगे बढकर उनका स्वागत किया। उन्हे राजमहल मे ठहराया गया और उनके सात सप्ताह के निवास के दिनो मे उनके पास प्रति दिन के खर्चे के १२५) रु० भेजे जाते रहे। जब ८ अगस्त को वह विदा हुई तो महाराजा उन्हे बदनसिह जाट की हवेली तक छोडने गया, और गया जाने के लिए उन्हे २५,०००) रुपये, तथा हाथी आदि भेट किए। इस समय से प्रति वर्ष इतनी ही राशि राधाबाई के लिए वर्खासरण के रूप मे पूना भेजी जाने लगी। यह राशि १७४४ तक भेजी जाती रही।[1] ऐसा कहा जाता है कि जिन दिनो राधाबाई जयपुर मे थी, जयसिह ने उनसे अपनी पुत्री कृष्ण कुमारी को आशीर्वाद देने का निवेदन किया।[2] दलेलसिह को १७४८ तक मराठो ने जो परेशान नही किया, इसका संभवतः एक कारण राधाबाई का कृष्ण कुमारी के हितो का ध्यान रखने का आश्वासन देना था।

राधाबाई के जयपुर से प्रस्थान के कुछ दिन पूर्व जयसिंह ने अपने दीवान राजा अयामल खत्री को यह देखने के लिए दिल्ली भेजा था कि शाही अफसरो को पेशवा की मा को सभी सुविधा अविलम्ब देने की आज्ञा जारी हो चुकी है या नही। जयसिंह ने अयामल के भाई नारायण दास को, जो आगरा सूबे मे नायब सूबेदार था, राधाबाई के साथ पूना तक जाने के लिए नियुक्त किया। जब नारायण दास मुहम्मद खा बगश से मिला तो उसने कहा कि पेशवा ने अपनी मा को उस पर भरोसा कर भेजा है, इसलिए वह राधाबाई को अपनी मा के समान समझता है। उसने मार्ग के सभी फौजदारो व अन्य अफसरो को आज्ञा दी कि वे सम्मानीय तीर्थ यात्री को सभी प्रकार की सुविधा दे। मराठे राजपूताने मे राधाबाई के सौहार्द्र पूर्ण सत्कार से बहुत सतुष्ट हुए[3]। इससे बाजीराव के आगमन के समय उपयुक्त वातावरण बनने मे भी सहायता मिली[4]।

पेशवा के राजपूताने में आगमन का वृत्तान्त; भेंट की तैयारियां

पूना से अक्टूबर १७३५ मे चलकर पेशवा मेवाड की दक्षिणी सीमा पर जनवरी १७३६ मे आ पहुँचा। उसके साथ प्रमुख अफसरो मे होल्कर, सिन्धिया, आनदराव पवार व तुकोजी पवार थे। मार्ग मे उसे महाराजा अभयसिंह व वजीर कमरूद्दीन खा के बीच पुन. मैत्रीपूर्ण सबध स्थापित होने और आगरा, मालवा व

1. दस्तूर कोमवार, जि. 10, पृ. 1219–1239।
2 वंशभास्कर, 4, पृ 3224।
3. पेशवा दफ्तर, जि. 30, नं 131, 134, हेमराज–जोरावर सिंह, 26 जुलाई 1735 ज. आ.।
4 इसके लिए देखिए पेशवा दफ्तर, जि. 30, 131, हिंगणे, नं. 19।

गुजरात के सूबे वजीर को दिए जाने के प्रस्ताव, व बादशाह का मराठों के विरुद्ध दो सेनाएं के भेजने के विचार के बारे में समाचार मिले।[1]

जब पेशवा डूंगरपुर पहुँचा तो उसने महादेव भट्ट हिंगणे (दिल्ली में मराठा वकील) व अयामल को बुलवाया। जिन मसलों पर वह उनसे सलाह करना चाहता था उनमें से एक यह भी था कि जयसिंह के साथ बातचीत के समय सेना कहां रखी जाय। पेशवा ने हिंगणे को यह भी आज्ञा दी कि जयसिंह से भेंट किसी पुण्य स्थान में हो।[2] बातचीत आरम्भ होने से पहले ही राणोजी सिन्धिया, राजा अयामल व रामचन्द्र बाबा ने दरबार से इस बात की पुष्टि करवा ली कि पेशवा की बादशाह से भेंट के बाद पेशवा को बीस लाख रुपये नगद, मालवा में चालीस लाख की जागीर, और जागीर तनख्वाह में मालवा में दोस्त मुहम्मद रोहिला का इलाका दिए जाए गे।[3]

मेवाड़ द्वारा पेशवा की मांग स्वीकार करना

उदयपुर में पेशवा ने महाराणा को १,५०,००० रुपये सालाना देने पर तैयार कर लिया। महाराणा ने इसके एवज में बनेड़ा के परगने की आय मराठों को देने का वायदा किया। यह समझौता दस वर्ष तक चला। महाराणा ने यह समझौता बहुत अनिच्छा से किया था। जैसा महाराणा ने एक पत्र में बिहारीदास को लिखा कि पेशवा को उससे (महाराणा से) पेशकश वसूल करके संतोष मिला होगा परन्तु ईश्वर ने चाहा तो उसे मेवाड की भूमि नही मिल सकेगी।[4]

जयसिंह की बाजीराव से भेंट

८ फरवरी, १७३६ को उदयपुर से चलकर पेशवा नाथद्वारे होता हुआ जहाजपुर पहुँचा। इसी बीच सवाई जयसिंह परगना मालपुरा के झाड़ली गांव मे पहुँच चुका था। २५ फरवरी को यही पर जयसिंह ने झाडली मे अपने शिविर से कई कोस आगे जाकर पेशवा का स्वागत किया। जब दोनों निकट आए तो वे दोनों घोडों पर से उतर पड़े। बाजीराव ने मुजरा किया। जयसिंह ने अपने माथे पर हाथ लगाकर अभिवादन किया। उसके बाद वे गले मिले। पेशवा के साथ रामचन्द्र

1. पेशवा दफ्तर, जि 22, पृ. 168, जिल्द 14, नं. 50, 39, दिघे, पृ 123।
2. हिंगणे न. 3।
3 पेशवा दफ्तर, जि 14, नं 50।
4 वंशभास्कर, जि. 4, पृ 3236–37, वीरविनोद, 2 पृ. 1228–29, टॉड. 1 पृ 336 पत्र न 2। इस पत्र मे यह ज्ञात होता है कि राजपूत मराठों के बढते हुए प्रभाव से असन्तुष्ट थे और यह कहना (देखिये डा. दिघे की पुस्तक, पृ 125) कि हिन्दू राजा व प्रजा ने बाजीराव के आगमन को ऐसा समझा जैसे कोई मुक्ति दिलवाने वाला आ गया हो, जिसकी वे दीर्घकाल से प्रतीक्षा कर रहे थे, सही नही है।

दीवान व छ अन्य अफसर थे। कुछ मिनट की औपचारिक वार्ता के बाद वे अपने-अपने शिविरो मे चले गए।

नौ सप्ताह की भेंट व वार्ता

अगले दिन बाजीराव राजा अयामल व रामचन्द्र के साथ जयसिह से मिलने आया। जयसिह ने ड्योढी पर उसका स्वागत किया। वे गले मिले और दोनो ने एक दूसरे को सलाम किया और सब मसनद पर बैठ गए। थोडी देर बाद वे भीतरी दीवानखाने मे चले गए। वहाँ वे लगभग तीन घ टे तक रहे। जब बाजीराव विदा हुआ तो जयसिह बाहर के दीवानखाने तक उसे छोडने आया।

२ मार्च को जयसिंह ने सध्या समय दरबार किया। इतने मे पेशवा आया। जयसिह उसे भीतरी दीवानखाने मे ले गया। पेशवा को पान, इत्र व बडी सख्या मे विभिन्न उपहार भेट किए गए। लगभग तीन घ टे तक विचार विनिमय के बाद पेशवा लौट गया। ४ मार्च को जयसिह बाजीराव के शिविर गया और कुछ रात बीत जाने पर वापस लौटा। १४ मार्च को जयसिह मोरला (अजमेर से ३५ मील दक्षिण पूर्व) मे अपने शिविर से बाजीराव से मिलने गया। १६ मार्च को जब बाजीराव मिलने आया तो जयसिंह ने उसे हाथीदात के शतरज के मोहरे व चदन की बनी कुछ मूर्तिया आदि दी। कुछ दिन पूर्व जयसिंह ने पेशवा के लिए सोने के शराब के प्याले व दो पालकिया भिजवाई थी जिनमे से एक विशेष रूप से स्त्रियो के लिए सुसज्जित थी। ३० अप्रेल को हम जयसिह को गेहलपुर मे पाते है, जहाँ से वह पेशवा से मिलने गया, जो पुष्कर से लौटा ही था। अगले दिन पेशवा जयसिह से मिलने आया और फिर सीतागढ के लिए चल दिया। दो महीने बाद पेशवा के निवेदन पर जयसिंह ने उसके लिए एक कीमती पेशखाना बनवाकर भेजा।[1]

समझौते की वार्ता के आरम्भ मे अपने वकील ढोढो महादेव के द्वारा पेशवा ने (१) हिन्दुस्तान मे वतन जागीर, (२) अपने व साथ के अन्य लोगो के लिए मनसब व जागीर, (३) अपने विरुद्ध मुगल सैनिक कार्यवाही का बद करना, (४) दक्षिण की सरदेशपाडेगिरी (जिसके आधार पर उसे दक्षिण के सूबो का ५ प्रतिशत राजस्व मिलता) जिसके बदले मे उसने बादशाह को छ लाख रुपये देना स्वीकार किया, (५) मालवा की सूबेदारी और बादशाही किलो, जागीरदार, क़दीम राजा, इनामदाद व रोजीनदारो की जमीने छोडकर, सूबे के अन्य भाग पर उसका नियत्रण व (६) खर्चे के रूप मे तेरह लाख रुपये, जो उसे तीन किश्तो मे पूर्व निश्चित

1. यह वृत्तान्त दस्तूर कोमवार, जि. 10, पृ. 1152–1207 पर आधारित है। इसमे पेशवा व जयसिंह के भंभौला मे मिलने का कही उल्लेख नही है, जैसा कि सूर्यमल ने लिखा है (वशभास्कर, 4, पृ. 3238–39)।

समय पर दिए जाएं-मागे। ये शर्ते जयसिंह के मराठो को मुगल साम्राज्य व शासन के विस्तृत दायरे मे लाने की नीति के अनुरूप थी। बादशाह ने इनमे से पहली, पाचवी व छठी शर्ते मान ली, जिसका अर्थ यह था कि दूसरी व तीसरी शर्त भी स्वीकार कर ली गई। बादशाह ने पेशवा को दक्षिण की सरदेशपाडेगिरी देना भी स्वीकार कर लिया, जिसके एवज मे पेशवा ने छ: लाख रुपये देने का वायदा किया। इन शर्तो मे हम चौथ का कही उल्लेख नही पाते है।

जब पेशवा ने देखा कि मुगल सरकार मराठा मागे स्वीकार करने के लिए प्रवृत्त है तो उसने दक्षिण के सूबो पर अधिक नियंत्रण स्थापित करने व अधिक आर्थिक लाभ के लिए नई मागे रखी, परन्तु जैसा हम देखेगे, उसने इन्हे समझौता स्वीकार करने के लिए आवश्यक शर्ते कभी नही कहा। पेशवा ने ओरछा, भदावर, चदेरी, नरवर, शिवपुरी, रामपुर, अमझेरा, कोटा, दतिया, खीचीवाडा, बूदी व स्योन्ढा से खर्चा, दक्षिण का बदोबस्त करने का अधिकार, शाहजादा को दक्षिण के सूबो मे सूबेदार बनाने, उसे (पेशवा को) दक्षिण मे पचास लाख रुपये की जागीर व दक्षिण की वशपरम्परानुगत (वतनी) सरदेशपाडेगिरी, पेशवा के परिवार के लिए माडू व रायसिन किले दिए जाने, इलाहाबाद, बनारस, गया व मथुरा जागीर मे देने, बगाल के राजस्व मे से पचास लाख रुपये देने व बादशाह से, सवारी के समय मार्ग मे सवाई जयसिंह व अमीरखा के समक्ष, मिलने की मॉग की। इन सभी शर्तो को पेशवा ने एक साथ नही रखा और न ही सब पर समान जोर दिया। इस बारे मे विद्वानो को जो सदेह है, वह बाजीराव के कुछ दिन बाद लिखे पत्रो से दूर हो जाता है जिनमे उसने मुगल सरकार पर समझौते से सबधित वायदे तोडने का आरोप लगाया है।[1]

वार्ता की असफलता के कारणो की विवेचना

३१ मई, १७३६ के पत्र मे पेशवा ने हिंगणे को लिखा कि उसे जागीर, पाँच लाख रुपया खर्चा, रौहेलो के अधिकृत क्षेत्र का इलाका और मालवा का सूबा बरसात शुरू होने से पहले ही देने का वायदा किया गया था। वह (पेशवा) मई (१७३६) तक इन शर्तो की स्वीकृति की प्रतीक्षा करता रहा परन्तु दिल्ली से जब कोई जवाब नही आया तो पेशवा ने खानदौरा को लिखा कि उसने २-३ दिन मे ही शर्ते स्वीकार करने का वायदा किया था। पेशवा ने लिखा कि उसको ५०,०००-६०,००० सवारो का खर्चा व्यर्थ ही सहना पड़ा। क्योकि बादशाही नौकरी का प्रस्ताव रखा गया था इसलिए उसने शाही इलाको को लूटा भी नही। पेशवा ने लिखा कि उपरोक्त शर्तो के बारे मे मुगल सरकार को तुरन्त निर्णय लेना चाहिए। तबतक वह होल्कर को १०,००० फौज के साथ मालवे मे छोडकर पूना जा रहा है।[2]

---

1. देखिए पेशवा दफ्तर, जि 15, पृ. 92-96, इफ, 1, पृ 439।
2. हिंगणे, नं 6, 4।

११ जुलाई के महादेव भट्ट के नाम पत्र मे पेशवा ने लिखा कि वह अपनी ओर से किए गए वायदो को पूरा करने को तैयार है परन्तु मुगल सरकार ने अपना वायदा तोड दिया है। वह सात सप्ताह तक मुगल सरकार से प्रस्तावो के बारे मे निश्चित उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा। अब वह होल्कर को १२,०००–१५,००० सवारो के साथ मालवे मे छोडकर वापिस जा रहा है। यदि दिल्ली से सतोपजनक उत्तर आ जाता तो वह कुछ नही करता। अब जो आवश्यक होगा वह उसे करना पड़ेगा। पेशवा ने मुगल सरकार के पाच लाख रुपये पाच किश्तो मे देने के प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया। पेशवा ने लिखा कि एक तो भविष्य के लिए यह खराब परम्परा बन जाएगी, और दूसरे एक लाख रुपये से १५,०००–२०,००० सेना का एक सप्ताह का भी खर्चा नही निकलेगा।[1]

अन्त मे जब सितम्बर २९ को व्यर्थ सोच-विचार व अकारण विलम्ब से पेशवा के पास फरमान भेजा गया तो उसमे उसे जागीर, ७००० की मनसब व उसके वतन के महाल दिए जाने का उल्लेख था, परन्तु मालवा की सूबेदारी दिए जाने का कोई जिक्र नही था। इसलिए पेशवा को फरमान मे जो दिया जा रहा था[2] वह उसे स्वीकार नही था। यह स्पप्ट था कि मुगल सरकार ने जो वायदे किए थे, उनके पूरे किए जाने की कोई सभावना नही थी विशेप कर जबकि कमरुद्दीन खा, सादत खा, निजाम आदि का समझौते की वार्ता के प्रति विरोध बराबर बना हुआ था। बाजीराव ने सोचा कि इस मुगल गुट की, जो उसके व बादशाह के बीच समझौते मे मुख्य रुकावट है, डीगो का पर्दाफाश किया जाय और यह बता दिया जाय कि वे कितने पानी मे है। उपरोक्त तथ्यो से यह स्पष्ट है कि समझौते की वार्ता की असफलता के लिए जयसिंह व पेशवा जिम्मेदार नही थे।[3]

तूरानी गुट की अपकीर्ति के लिए बाजीराव द्वारा मराठा शक्ति का अद्भुत प्रदर्शन

मराठा शक्ति का अद्भुत प्रदर्शन कर मुगल गुट का मुँह बद करने के उद्देश्य से बाजीराव पेशवा अपनी सेना के साथ दिल्ली के दरवाजे तक जा पहुँचा। इस रोमाचकारी व अपूर्व कौशलयुक्त सैनिक सफलता का विस्तृत उल्लेख यहाँ सभव नही है। जब पेशवा के आगरा के ७० मील निकट तक आ जाने का समाचार दिल्ली पहुँचा तो मुगल दरबार मे घबराहट फैल गई और वजीर कमरुद्दीन खा व खानदौरा बडी सेनाओ के साथ झटपट पेशवा का मार्ग रोकने के लिए चल पड़े।

1. हिंगणे न, 6।
2 पेशवा दफ्तर, जि. 15, पृ. 86।
3. भिन्न मत के लिए देखिए, डफ, 1, पृ. 438–39, सरकार, फॉल, 1, पृ 154, दिवे, पृ. 129, पार्टीज, पृ. 228–29।

जयसिंह भी बादशाही आदेश पर १५,००० सेना व तोपखाने के साथ जयपुर से रवाना हुआ। महाराजा अभयसिंह १०,०००–१५,००० की फौज के साथ मौजाबाद मे था। अवध से सादत खा तेजी से आगरा की ओर बढा। सादत खाँ को रोकने के लिए पेशवा ने होल्कर के साथ १०,००० सवारो को दोआब लूटने के लिए भेज दिया। परन्तु यह फौज जलेसर के निकट १२ मार्च को पिट गई और मराठो को काफी हानि उठानी पडी। सादत खा ने अब आगरा के निकट जमुना पार की और खानदौरा को लिखा कि उसने बाजीराव की सेना को भगा दिया है और इसलिए वह (खानदौरा) मराठा वकील ढोंढो पत को निकाल बाहर करे।

इस समय पेशवा के लिए दिल्ली जाना अत्यन्त खतरनाक था। तीन बडी मुगल सेनाए उसके मार्ग मे पडी थी और उसे घेर लेने के लिए तत्पर थी। ऐसी स्थिति मे यदि वह वापस लौट जाता तो जो सैनिक प्रतिष्ठा और धाक मराठो ने स्थापित की थी, उसे भारी आघात पहुँचता और मुगल गुट की बन आती। पिछले कई वर्षो के प्रयत्नो व सफलताओ पर पानी फिर जाता। इसलिए पेशवा ने अपने लक्ष्य मे कोई परिवर्तन नही किया। वह कुछ पीछे हटकर, बाई ओर चक्कर काट-कर, जाटो के प्रदेश मे तेजी से निकलता हुआ और मुगल सेनाओ को तनिक भी आभास दिए विना दिल्ली के निकट जा पहुँचा। वह वहाँ २० घण्टे रहा। यदि वह चाहता तो दिल्ली के कुछ भाग को जला डालता। यद्यपि राजधानी मे काफी सैनिक थे, तथापि बादशाह व उसकी स्त्रियो के भागने के लिए महल के नीचे जमुना मे नावे तैयार कर ली गई थी। परन्तु किले के मुग़ल सैनिको के साथ एक झडप के बाद, जिसमे उन सैनिको ने अपनी कुशलता का हास्यास्पद प्रदर्शन किया, बाजीराव विना विलम्ब किए और मार्ग मे कम से कम रुकते हुए कोटपुतली, मनोहरपुर, लालसोट होता हुआ वापस लौट गया। जैसा बाजीराव ने लिखा, उसे ज्ञात था कि बादशाह व खानदौरा उसकी माग स्वीकार करने के लिए तैयार थे। परन्तु मुगल गुट इसके विरुद्ध था। उसने लिखा कि वह राजधानी को हानि पहुँचा कर अपने मित्रो की मुगल दरबार मे स्थिति बिगाडना नही चाहता था। वह कोई भी ऐसा कार्य नही करना चाहता था जो मराठो व मुगल सरकार के बीच समझौते मे बाधा बने।[1]

1 उपरोक्त वृत्तान्त के लिए देखिए ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित्र, न 27, पेशवा दफ्तर जि. 15, न 37, 47, इरविन, 2, पृ. 288–94। खानदौरा के कहने पर जयसिंह 15–16 हजार की फौज के साथ बसवा तक बढा परन्तु उसने पेशवा का मार्ग रोकने का कोई प्रयत्न नही किया क्योकि पेशवा के आक्रमण का उद्देश्य तूरानी गुट को चुप करना था, जो जयसिंह के मुगल सरकार व मराठो के बीच समझौते के सभी प्रयत्नों को असफल करने पर तुला हुआ था।

बाजीराव के अभियान की आंशिक सफलता; बादशाह द्वारा निजाम को दिल्ली बुलाना

बाजीराव के इस अभूतपूर्व अभियान का यह परिणाम हुआ कि सादत खा व कमरुद्दीन खा के मराठो को मुगल सेना द्वारा मालवा से खदेड देने के आश्वासन पर से बादशाह का विश्वास हट गया। परन्तु साथ ही वह पेशवा के आश्चर्यजनक सैनिक प्रदर्शन से इतना क्षुब्ध हुआ[1] कि वह निजाम को दिल्ली बुलाने के लिए तैयार हो गया। निजाम ने बादशाह को लिखा था कि साम्राज्य के सभी उपलब्ध साधनो का उपयोग करके वह मराठो को मालवा से निकाल देने मे समर्थ है।[2] निजाम को विदित था कि यदि पेशवा को दक्षिण की सरदेशपाडेगिरी या नायब सूबेदारी मिल गई तो दक्षिण मे उसकी स्थिति बिगड जाएगी। इसलिए उसने बादशाह के इस समय के चिन्तातुर मनोभाव का लाभ उठाकर अपने लिए निमत्रण मगवा लिया। जब २ जुलाई, १७३७ को वह दिल्ली पहुँचा तो उसका ऐसे स्वागत किया गया जैसे कोई मसीहा आ गया हो। उसे साम्राज्य की सर्वोच्च उपाधि (आसफजाह) दी गई व पाँच सूबे तथा एक करोड रुपये मराठो को नर्मदा के उस पार रोकने की शर्त पर दिए जाने का आश्वासन दिया गया। ३ अगस्त को जयसिंह को हटाकर निजाम के पुत्र गाजीउद्दीन खा को आगरा व मालवा का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। निजाम को अपनी सैनिक तैयारी के लिए ६० लाख रुपये दिए गए व अनेक प्रमुख अफसरो को उसके साथ जाने की आज्ञा जारी की गई।[3] निजाम इससे अधिक प्राप्त करने की कल्पना भी नही कर सकता था।

जयसिंह का ईश्वरी सिंह व अयामल को निज़ाम के पास भेजना निज़ाम की अपमानजनक पराजय

जयसिंह ने भी कुछ सेना अपने बडे लडके, ईश्वरी सिंह व राजा अयामल के साथ निजाम के पास भेज दी। बदन सिंह ने भी एक टुकडी अपने पुत्र, प्रतापसिंह, के साथ भेजी। क्योकि उज्जैन के आसपास के क्षेत्र मे मराठो की शक्ति अधिक समझी जाती थी, इसलिए निजाम ने भोपाल की ओर का मार्ग चुना। जब दिसम्बर मे वह भोपाल के निकट पहुँचा तो उसकी सेना मे ५० ००० से अधिक सैनिक हो गये थे। सादत खा, ओरछा व दतिया के शासको द्वारा भेजी गई फौजे भी शामिल हो गई थी। इसके बावजूद भी पेशवा बाजीराव ने अपनी अद्भुत सैनिक योग्यता से निजाम को भोपाल के निकट ६ जनवरी, १७३८ को दुराहासराय की अपमानजनक सधि पर हस्ताक्षर करने पर विवश किया। निजाम ने बादशाह से (१)

1 देखिए अशोब, 125 (ए), पार्टीज पृ. 232, नोट 49।
2. पेशवा दफ्तर जि 15, न. 26, 23, 33, जिल्द 10 न 27, माधवराव पृ 138-47।
3. इरविन, 2 पृ. 299-302, दिवे, पृ. 145।

मालवा की सूबेदारी (२) नर्मदा व चम्बल नदियों के बीच के क्षेत्र पर पेशवा का एक-छत्र अधिकार और (३) पेशवा के लिए पचास लाख रुपये प्राप्त करने का वायदा किया।[1]

निजाम की असफलता से जयसिंह की नीति की पुष्टि

जैसा स्पष्ट है, इन शर्तों में कुछ महीने पहले की अनेक प्रमुख मांगों का उल्लेख नहीं था, विशेषकर उन मांगों का जो दक्षिण से सबंधित थी। यह स्पष्ट था कि निजाम ने इस बार भी अपने आपको बचाने के लिये साम्राज्य के हितों को बेच दिया था। इस समझौते में उसने पेशवा को ऐसे अधिकार तक देने का वचन दे दिया था जो बादशाह की सार्वभौमिकता के विरुद्ध थे। परन्तु यह भी सभव है कि इस प्रकार की असम्भव व मुगल सरकार के लिए अपमानजनक शर्तें निजाम की ओर से प्रस्तावित कराकर बाजीराव मुगल गुट के प्रभाव को पूर्ण रूप से समाप्त कर देना चाहता था। उसे ज्ञात था कि समझौता जयसिंह व खानदौरा की मार्फत ही हो सकेगा। इसलिए यह सभव है कि पेशवा को दोराहासराय की संधि की शर्तों के पूरे किए जाने की कोई आशा नही थी। निजाम की असफलता से जयसिंह के तर्क की पुष्टि हुई, विशेष कर इसलिए कि जो शर्तें जयसिंह ने तय की थी, और जिनका उल्लेख पेशवा के पत्रों में मिलता है—जैसा कि हम पहले लिख चुके है—वे दोराहासराय की शर्तों से कहीं अच्छी थीं। इसके अलावा जयसिंह की शर्तों में पेशवा के मुगल सेवा स्वीकार करने की भी व्यवस्था थी।

निजाम की बाजीराव के साथ दोराहासराय की सधि करवाने में जयपुर के दीवान अयामल ने प्रमुख भाग लिया था। ऐसा करके उसने अपने स्वामी की अच्छी सेवा की। समझौते के बाद निजाम ने राजाओं व प्रमुख मनसबदारों को बाजीराव से मिलने भेजा। ईश्वरीसिंह २३ जनवरी को पेशवा से मिला। उसने पेशवा के अलावा होल्कर, पीलाजी, रानोजी सिन्धिया, जसवतराव, रामचन्द्र पंडित और सिन्धिया के मुंशी, श्यामराय व घाणेराय, को उपहार दिए।[2] भोपाल से निजाम दिल्ली की ओर लौटा जहाँ वह अप्रेल (१७३८) में पहुँचा। पेशवा दो सप्ताह के लिए भोपाल में ही रुक गया और वहाँ से वह कोटा आया, जहाँ उसने महाराव दुर्जनसाल से निजाम को सहायता पहुँचाने के प्रयत्न व अमैत्रीपूर्ण व्यवहार के लिए दस लाख रुपये देने का वचन लिया। तत्पश्चात् पेशवा पूना की ओर लौट गया, जहाँ वह १५ जुलाई को पहुँचा।[3] उसके बाद बाजीराव सालसेट अभि-

---

1. पेशवा दफ्तर, जि. 15, 53, 66, इरविन पृ. 299-302, ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित्र, परिशिष्ट 33-36, 116, दिघे, 148-49।
2. दस्तूर कोमवार, जि 24।
3. दिघे, पृ. 149-50।

यान मे व्यस्त हो गया, जो १२ मई १७३९ तक चला। इस आवश्यक परन्तु महगे अभियान मे लगभग २२,००० मराठा सैनिक काम आए।[1]

अभियान की समाप्ति के बाद ही पेशवा मुगल सरकार से पुन: बातचीत चलाने की स्थिति मे हुआ।

नादिरशाह का आगमन

परन्तु इसी बीच नादिरशाह जून १७३८ मे काबुल ले लेने के बाद नवम्बर मे पेशावर पहुँच गया। २ दिसम्बर को बादशाह ने कमुरूद्दीन खा, निजाम व खानदौरा आदि को आक्रमणकारी को रोकने के लिए जाने को कहा। जनवरी १७३९ के आरम्भ मे नादिरशाह ने लाहौर मे प्रवेश किया और तब मुगल सरकार ईरानी आक्रमण के खतरे की गम्भीरता से पूर्णरूप से अवगत हुई। दरबार से विभिन्न सूबेदारो, पेशवा व राजपूत राजाओ के नाम तुरन्त आने के आशय के फरमान भेजे गए। यह आम सदेह था कि नादिर को निजाम व सादत खा ने इस आशय से बुलाया है कि नया साम्राज्य स्थापित हो, जो मराठा विस्तार को भलीभाँति रोक सके।[2]

जयसिंह व पेशवा के बादशाह की मदद के लिए जाने मे संकोच के कारण

इस कारण जयसिंह व पेशवा का बादशाह की मदद के लिए जाने मे सकोच स्वाभाविक था। यह सभी को ज्ञात था कि मुगल अफमरो मे बहुत अधिक द्वेष की भावना है, जो युद्ध के दौरान वास्तव मे सामने भी आई। ऐसी स्थिति मे जयसिंह व पेशवा का बादशाह की मदद के लिए जाना मूर्खता थी, और यह अच्छा ही हुआ कि वे लोग नादिर के विरुद्ध युद्ध मे शामिल नही हुए। वरना सभवत: उनके साथ उसी प्रकार का धोखा होता जैसा खानदौरा व मुजफ्फर खा आदि के साथ किया गया। परन्तु जयसिंह व पेशवा के नादिरशाह के विरुद्ध बादशाह की मदद के लिए न जाने मे बादशाह को राजपूत व मराठा सहायता नही मिल सकी क्योकि राजपूत व मराठा शक्ति का ये ही नेतृत्व कर सकते थे।

१३ फरवरी, १७३९ को नादिरशाह ने कर्नाल के निकट मुगल सेना के एक छोटे से भाग (सादत खा के ५००० सवार, जो सभी की मर्जी के विरुद्ध बिना पूरी तैयारी हुए नादिर की सेना से उलझ गए, और ८००० खानदौरा के, जो कर्त्तव्य पालन की आन से बधे मादत खा के मूर्खतापूर्ण आक्रमण मे सहयोग देने शत्रु के विरुद्ध गए) को पराजित कर युद्ध जीत लिया। निजाम ने खानदौरा की मदद के

---

1 दिघे, पृ. 184 आदि।

2. इरविन 2, पृ 331–36, ढोढों गोविन्द-बाजीराव, ऐतिहासिक चर्चा, 4 (सरदेसाई, 2 पृ. 167), तारीख–ए हिन्दी, 559।

लिए अपनी कन अ गुली तक भी न हिलाई और वह अपनी सेना के साथ आराम से खडा रहा और कॉफी पीता रहा। जब खानदौरा की मृत्यु हो गई तो उसने बख्शी का पद अपने पुत्र के लिये लेना चाहा।

जब अजीमुल्ला खा ने इसका विरोध किया तो निजाम ने यह पद स्वय ले लिया। जब इसकी सूचना सादत खा को मिली, जो नादिर के शिविर मे बदी था, और इस पद को प्राप्त करने के लिये बहुत इच्छुक था, तो उसने निजाम व बादशाह से बदला लेने के लिये नादिरशाह को दिल्ली आने के लिए प्रेरित किया।[1]

मार्च १७३९ मे नादिर दिल्ली पहुँचा जहाँ वह अप्रेल तक रहा। उसका ५७ दिन का निवास दिल्ली के लिए विनाशकारी था। दिल्ली के लोगो को असख्य यातनाएं सहनी पडी। हजारो निर्दोष लोगो को मार दिया गया, और स्त्रियो का अपहरण किया गया। सक्षेप मे, ईरानी बादशाह व उनके सैनिको की पाशविक प्रवृत्ति उनकी सभ्यता व सस्कृति के ऊपरी आडम्बर से बाहर निकल कर अपने असली रूप मे दिखाई दी।

बाजीराव को उत्तर की घटनाओ के समाचार बराबर मिल रहे थे। जब कर्नाल के युद्ध मे दिल्ली की सेना की पराजय का विस्तृत वृत्तान्त उसे मिला तो वह बहुत चिन्तित हुआ। उसे लगा कि मुगल बादशाहत डूब रही है। उसने ९ फरवरी के पत्र मे अपने भाई चिमनाजी को लिखा कि ऐसी स्थिति मे समस्या बडी गंभीर हो जाएगी, और उसके (पेशवा के) मसूबे खटाई मे पड सकते है। यदि नादिर ने हिन्दुस्तान मे ही रहने का निश्चय किया तो वह (पेशवा) चम्बल के इस तरफ हिन्दुस्तान की सेना की सहायता से उससे सघर्ष करेगा। उसने चिमनाजी को लिखा कि वसीन अभियान को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करके वह फौज रवाना करदे, और राघोजी भोसले को अपनी ओर करने का प्रयास करे क्योकि आने वाले सघर्ष मे उसकी मदद बहुत उपयोगी रहेगी।[2]

नादिर से सघर्ष हो या न हो, परन्तु यह आवश्यक था कि उसके लिए तैयारी पूरी की जाय। ढोंढो पन्त ने उत्तर से समाचार भेजा था कि यदि पेशवा ने अपनी शक्ति का प्रभावशाली प्रदर्शन किया तो नादिर लडना नही चाहेगा। उसने विश्वास पूर्वक लिखा कि पेशवा, जयसिह व बु देलो की सम्मिलित सेना नादिर को पराजित कर सकेगी। उसने लिखा कि जयसिह पेशवा की पहल की प्रतीक्षा मे है। ढोंढो पन्त ने लिखा कि निजाम धूर्तता बरत रहा है और उसके कुछ जासूस जयसिंह

---

1. इरविन, 2, पृ 341-49, 352-55।
2. देखिए बाजीराव-चिमनाजी अप्पा, 29 फरवरी, 31 मार्च 1739, पेशवा दफ्तर जि 15, 71-72, 75-77, ऐतिहासिक चर्चा, 4।

के गुप्त मंत्रणा स्थलो के आसपास फिरते पकडे गए, जिनके नाक-कान काट कर विदा कर दिया गया।[1]

यद्यपि पेशवा मुख्यत. नादिर के आने से उत्पन्न राजनीतिक स्थिति के मराठा हितो पर प्रभाव के बारे मे ही चिन्तित था, परन्तु मेवाड को लिखे पत्र में उसने हिन्दू वीरता व धर्म के सम्मान की रक्षा के लिए ईरानियो से युद्ध करने की बात लिखी। पेशवा ने लिखा कि राजपूत व बु देलो आदि हिन्दू शक्तियो की सम्मिलित सेना की सख्या १,२५,००० तक हो जाएगी। पेशवा स्वय अपनी सेना और लाएगा। इस प्रकार करीब २,००,००० की सेना से वे शत्रु को पराजित करने का प्रयास करेगे।[2] सभवत: पेशवा को सदेह था कि निजाम आदि नादिर से मिल जाए गे। कुछ वर्ष बाद, १७६१ मे, निजाबतखा, शुजाउद्दौला आदि ने वास्तव मे अहमदशाह अब्दाली से मिलकर मराठो पर आघात किया।

पेशवा के चलने मे विलम्ब होना,
नादिर के पेशवा, जयसिंह आदि के नाम पत्र

जैसा हम लिख चुके है, पेशवा की सेना का बड़ा भाग १२ मई, १७३९ तक (वसीन के पतन तक) वही उलझा रहा। ५ मई को नादिर दिल्ली से वापस लौट पडा। जाने के कुछ दिन पूर्व उसने छत्रपति शाहू, पेशवा, जयसिह, महाराणा आदि को पत्र लिखकर उसके व बादशाह मुहम्मदशाह के बीच समझौते की सूचना भेजी।[3]

नादिर के जाने के बाद की राजनैतिक स्थिति, बादशाह का
जयसिंह के मार्फ़त पेशवा का निज़ाम के विरुद्ध समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न
बाजीराव की असामयिक मृत्यु

नादिर के प्रस्थान की सूचना मिलने पर बाजीराव बुरहानपुर से लौट पडा और २७ जुलाई को पूना पहुँचा। उसने महादेव भट्ट को नव उत्पन्न राजनीतिक स्थिति के बारे मे सवाई जयसिंह से विचार-विमर्श करने के लिए कहा।[4] नादिर के आक्रमण से मुगल बादशाह की प्रतिष्ठा को बडा धक्का पहुँचा था। कुछ दिन तक दिल्ली मे नादिरशाह के नाम का ही खुतबा पढा गया था और उसके नाम के सिक्के ढाले गए थे। बादशाह न केवल कुछ समय तक उसके शिविर मे नजरबन्द रहा था, वह नादिर के दिल्ली के लोगो के साथ अमानुषिक अत्याचारो को बिल्कुल नही रोक सका था। नादिर के आक्रमण से बादशाही दरबार मे विभिन्न गुटो की स्थिति मे काफी परिवर्तन हुआ। खानदौरा व उसके भाई मुजफ्फर खा की कर्नाल के युद्ध मे

---

1. ऐतिहासिक चर्चा, 4।
2. बाजीराव–धाभाई (मेवाड का), 23 मार्च, 1739, भारत इतिहास संशोधक मडल की पत्रिका, जून–अक्टूबर 1952, पत्र नं 6, पृ 85।
3 इरविन, 2, पृ. 375।
4. हिंगणे, जि. 1, न 15।

मृत्यु से जयसिंह को जो हानि हुई, उसकी पूर्ति संभव नहीं थी। हाल की घटनाओं में निज़ाम के रुख व आचरण के कारण बादशाह उससे बहुत नाराज था। वह कमरुद्दीन खां को भी बर्खास्त कर अमीर खां को वजीर बनाना चाहता था। बादशाह ने सवाई जयसिंह की मार्फत अमीर खां के लिए मराठों का समर्थन भी प्राप्त करना चाहा। उसने जयसिंह को कहलाया कि वह पेशवा से यह तय करले कि मराठे निज़ाम का समर्थन नहीं करेंगे। बाजीराव ने महादेव भट्ट को परिवर्तित राजनीतिक स्थिति के बारे में जयसिंह से सलाह करने को लिखा[1] और स्वयं भी नासिरजंग (निज़ाम का पुत्र) से नीमाड प्रदेश देने की शर्त मनवाकर उत्तर की ओर बढ़ा। परन्तु उसका अभूतपूर्व और अत्यन्त सफल जीवन का अन्त आगया था। नर्मदा पहुँचने पर उसे तेज बुख़ार हुआ और फिर गफलत की स्थिति में अजेय पेशवा ने अपने प्राण त्याग दिए।[2]

पेशवा की मृत्यु पर जयसिंह का गहरा दुःख, जयसिंह द्वारा स्थिति का सही मूल्यांकन

जयसिंह को महान् पेशवा की मृत्यु पर अत्यन्त दुःख हुआ।[3] पिछले वर्षों में उन दोनों में बड़े स्नेहपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गए थे। वे दोनों एक दूसरे का बड़ा आदर करते थे, और १७३६ के बाद दोनों समान उद्देश्यों की पूर्ति में लग गए थे। यह हम देख चुके हैं कि किस तरह जयसिंह ने बाजीराव को बिगड़ती हुई राजनैतिक अवस्था को सम्भालने में सहायक बनने के लिए तैयार कर लिया था। बाजीराव की मृत्यु से जयसिंह को यह संदेह हुआ कि नया पेशवा संभवतः दूसरी नीति अपनाए और इस प्रकार जयसिंह ने पिछले वर्षों में मुग़ल व मराठों के बीच समझौते के लिए जो आधार तैयार किया था, वह एकाएक ही ढह जाए। परन्तु शीघ्र ही महादेव भट्ट के मार्फत चिमनाजी अप्पा ने जयसिंह को यह आश्वासन दिया कि मराठे अपने वचन का पालन करेंगे और वही करेंगे जो बादशाह की इच्छानुकूल होगा। मराठों के मनोबल को बनाए रखने के लिए चिमनाजी ने इस पर बल दिया कि बाजीराव की मृत्यु से मराठों की शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। अनुभवी सेनानायक, फौज, दक्षकूटनीतिज्ञ व प्रशासनकर्ता तो वही हैं जो पहले थे, और वे स्वर्गवासी पेशवा के अधूरे कार्य को अवश्य पूरा करेंगे। चिमनाजी ने लिखा कि यह बात सवाई जयसिंह व अन्य बुद्धिमान व दूरदर्शी लोग जानते हैं।[4] जयसिंह को यह तथ्य अच्छी तरह ज्ञात था। मराठों के उद्भव का इतिहास इसकी सत्यता का साक्षी था।

1. पुरंदरे दफ्तर. पत्र 13, 15, सीअर (अनु.), 1, पृ. 318–20।
2. दिने. पृ. 201–03, डफ, 1, पृ 461–63।
3. हिंगणे, 1, नं. 17।
4. वही नं 19, 17।

मराठों की जयसिंह के समर्थन की कामना,
जयसिंह की चिमनाजी को निज़ाम का विरोध करने की सलाह

नादिर के जाने के बाद बदली हुई राजनैतिक स्थिति मे जब बाजीराव का अपूर्व नेतृत्व मराठों को उपलब्ध नही था, तब वे बादशाह के साथ समझौते के लिए जयसिंह पर अत्यधिक निर्भर करने लगे। चिमनाजी व नए पेशवा, बालाजी बाजीराव, ने जयसिंह के साथ सदभावपूर्ण सम्बन्धो को बहुत महत्व दिया और निजाम आदि के मध्यस्थता करने के सुझाव को ठुकरा दिया, यद्यपि उन्होने मराठो को जयसिंह की अपेक्षा कही अधिक लाभप्रद सुविधाए व अधिकार दिलवाने का वचन दिया था। मराठो का यह निश्चित मत था कि उन्हे बादशाह के हाथ मजबूत करने चाहिए और उसके साथ जयसिंह की मार्फत ही बातचीत करनी चाहिए। बादशाह की स्थिति को मजबूत करने के लिए जयसिंह को भी मराठो के समर्थन की आवश्यकता थी। इसलिए उसने समझौते की वार्ता जारी रखी।[1] निजाम आदि का दृष्टिकोण जयसिंह से भिन्न था। बाजीराज की असामयिक मृत्यु से उन लोगो को यह आशा बधी थी कि वे मराठा बाढ को रोक सकेगे। निज़ाम के कहने पर उसका भतीजा अजीमुल्ला खा मालवा का सूबेदार बनाया गया। यह स्पष्ट था कि निज़ाम समझौते की वार्ता को असफल करने का पूरा प्रयास करेगा। इस सभावना को रोकने के लिए जयसिंह ने चिमनाजी अप्पा को मालवे मे एक शक्तिशाली सेना भेजने को लिखा। चिमनाजी ने पहले ही विठोजी बुले को वहाँ भेज दिया था (जनवरी १७४२), और अब होल्कर व सिन्धिया के साथ १०-१५ हजार सवार वहाँ और भेज दिए। यह भी निर्णय लिया गया कि पेशवा स्वयं उत्तर की ओर जाए और सवाई जयसिंह से विचार-विमर्श कर स्वर्गीय पेशवा की इच्छा पूरी करे। जैसा चिमनाजी ने एक पत्र मे लिखा, मराठे सवाई जयसिह के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्धो को बहुत महत्व देते है। उन्होने इस बात पर भी गौर किया कि जयसिह जोधपुर व बीकानेर के झगडे मे बीकानेर का समर्थन कर रहे है और इस मामले मे उन्होने (मराठो ने) हस्तक्षेप न करने का निर्णय लिया।[2]

निज़ाम की मध्यस्थता का असफल प्रयत्न,
मराठो का समझौते के लिए जयसिंह पर ही निर्भर करना

इस समय निजाम ने फिर एक बार यह प्रयत्न किया कि पेशवा जयसिंह की मार्फत मुगल सरकार से बातचीत न करे। उसने कहा कि बादशाह राजपूतो से बहुत नाराज है क्योकि न तो उन्होने नादिर शाह के आक्रमण के समय कुछ भी सहायता भेजी, और दूसरे उन्होने बादशाही इलाके भी हथिया लिए है। उसने कहा

1. देखिए हिंगणे, 1, न. 17, 19।
2. हिंगणे, 1, न. 17।

कि वह मुगल सरकार बादशाह से पेशवा की बातचीत करवा सकेगा और उसने पेशवा को पन्द्रह लाख (जो बादशाह पहले देने को राजी हुआ था) की जगह बीस लाख रुपये, मालवा का सूबा, व चंबल के पूर्व का प्रदेश, जो आगरा के प्रशासन क्षेत्र मे था, प्रयाग मे लिए जाने वाले कर की वसूली की मनाही, कुछ अन्य अच्छे स्थान, व उतना रुपया जिससे पेशवा का उधार सुगमता पूर्वक निपट जावे–दिलवाने का वादा किया। परन्तु मराठो ने जयसिह के ही मार्फत मुगल सरकार से समझौता करने का निश्चय किया। महादेव भट्ट ने लिखा है कि वे आरम्भ से ही सवाई जी की मध्यस्थता स्वीकार कर रहे है, और पुनः श्री राधाबाई की जयपुर यात्रा के बाद तो स्वर्गीय पेशवा व सवाईजी के बीच भ्रातृत्व स्थापित हो गया है। बालाजी ने हिंगणे को लिखा कि वह सवाई जयसिह को मराठो की खर्चे, किले, व मालवा मे दिवानी अधिकार व उधार निपटाने के लिए पैसो की इच्छा से अवगत कराए। पेशवा ने जयसिंह से बीस लाख रुपये उधार देने का आग्रह किया। उसने लिखा कि बादशाह से पैसा मिलने पर वह यह राशि वापस लौटा देगा, और क्योकि निजाम इस समय दरबार से दूर है, इसलिए सवाई जी को बादशाह से यह राशि लेने मे कठिनाई भी नही पडेगी।[1]

पेशवा बालाजी यथा सभव जयसिह को नाराज नही करना चाहता था। जब निजाम के भतीजे व मालवा मे नियुक्त सूबेदार अजीमुल्ला खा ने अटेर से हिम्मत सिह को हटा दिया तो जयसिह ने अटेर हिम्मत सिह को दुबारा दिलवाने का निश्चय किया। पेशवा ने जयसिह के हिम्मतसिह का पक्ष लेने के निश्चय को ध्यान मे रखा। पेशवा ने होल्कर को रामपुरा व बूंदी मे बकाया राशि के देने मे विलम्ब के कारण वहाँ लूट मार करने पर फटकारा। २६ जनवरी, १७७० के पत्र मे पेशवा ने होल्कर को लिखा कि उसकी कार्यवाही से जयपुर मे बहुत क्रोध फैला है। क्या उसे (होल्कर) नही मालूम कि पेशवा व जयसिंह के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना आवश्यक है क्योकि उन्ही के मार्फत बादशाह से बातचीत चल रही है? पेशवा ने होल्कर को रामपुरा मे किसी प्रकार की गडबड करने से मना कर दिया।[2]

बादशाह का जयसिंह को मराठो के विरुद्ध तैयारी का आदेश

पेशवा इस समय उत्तर मे जयसिंह से बातचीत के लिए आ रहा था। जब जनवरी १६४१ मे होल्कर ने धार ले लिया, और उत्तरी मालवा मे काफी उपद्रव किया, तो बादशाह को इस पर बहुत क्रोध आया, और उसने जयसिंह को तुरन्त एक बडी सेना के साथ आगरा पहुँचने को कहा। यह सभव है कि बादशाह को दिल्ली

1. हिंगणे, 1, नं 19, 23।
2. हिंगणे, 1, न. 21, 24।

पर मराठों के दुवारा आक्रमण का भय था। इसने कोई संशय नही कि पिछले कुछ महीनो मे मराठो ने समझौते की वार्ता करते हुए भी जब तब मुग़ल प्रातो मे उपद्रव किया था। बादशाह ने इलाहबाद के सूबेदार अमीर खा व अवध के सूबेदार मसूर अली खा को भी अपनी फौजो के साथ जयसिंह से मिलने को कहा। ऐसी स्थिति मे पेशवा ने अमीर खा व मंसूर अली को जयसिंह से मिलने से रोकने के लिए एक हल्की घुडसवार सेना दोआब मे इलाहाबाद तक धूम-धडाका मचाने भेज दी। इस कारण दोनो सूबेदार आगरा नही पहुँच सके, और सवाई जयसिंह ने पेशवा से मिलने का स्थान व समय तय कर लिया।[1]

जयसिंह की पेशवा से धौलपुर मे भेंट

जयसिंह पेशवा बालाजी बाजीराव से फतेहाबाद, धौलपुर, के स्थान पर मिला। पेशवा के साथ सिंधिया व होल्कर भी थे। औपचारिकता निभाने के बाद दोनो एक आम के पेड के नीचे कालीन पर बैठे। शाम को पेशवा सिन्धिया, होल्कर, मानसिंह (उदाजी पंवार का पुत्र) के साथ जयसिंह के शिविर मे आया। वहाँ नवाब आजमखा, मुहम्मद सईद खा, राजा दलेलसिंह व समसमउद्दोला भी थे। पेशवा १८ मई तक धौलपुर मे रहा। चलते समय वह फिर जयसिंह से मिलने गया। पेशवा के साथ सिंधिया, होल्कर, पीलाजी जाधव, रामचद्र पडित, जसवन्त राव पवार, तुकोजी पवार आदि थे। उन सभी को जयसिंह ने उपयुक्त उपहार दिए।[2]

धौलपुर का समझौता

धौलपुर मे जो समझौता हुआ उसकी मुख्य शर्ते इस प्रकार थी: पेशवा को मालवा की सूबेदारी दी जाएगी, जिसके एवज मे वह अन्य मुगल सूबो मे मराठो की किसी प्रकार की भी गडबड नही होने देगा; ५०० मराठा मुगल सेवा मे रहेगे और यदि आवश्यकता पडी तो पेशवा ४००० सवार, जिनका खर्चा मुग़ल सरकार देगी, और भेज देगा; धन की और नई माग नही की जाएगी; पेशवा चम्बल के पूर्व व दक्षिण के जमीदारो से नजर व पेशकश लेगा; पेशवा एक अर्जी भी पेश करेगा जिसमे उसकी बादशाह के प्रति भक्ति व उसके मुगल सेवा स्वीकार करने का उल्लेख होगा। और अन्त मे यह भी तय हुआ कि सिंधिया, होल्कर आदि यह लिख कर देगे कि यदि पेशवा बादशाह के प्रति भक्ति से विमुख हो गया तो वे पेशवा का साथ छोड देगे।[3]

---

1. पुरंदरे, 1, न. 149, मालवा, पृ. 267, सरदेसाई, 2, पृ 201।
2. दस्तूर कोमवार, जि. 10, पृ. 1107–1112।
3. पेशवा दफ्तर, जि. 15, पृ. 97–98।

पेशवा को मालवे की नायब सूबेदारी मिलना

४ जुलाई, १७४१ को बादशाह ने पेशवा के नाम मालवा की नायब–सूबेदारी, और दो महीने बाद (७ सितम्बर को) पेशवा को सारे प्रान्त पर फौजदारी अधिकार प्रदान किए जाने के फरमान जारी कर दिए। फरमान मे लिखा था कि पेशवा सूबे मे शान्ति व व्यवस्था बनाने का प्रयत्न करेगा और लोगो के हितों का पूरा ध्यान रखेगा।[1]

समझौते की अस्थिरता के कारणों की विवेचना

ये शर्तें मराठा-मुगल सबधो के बारे मे जयसिंह के विचारों के अनुरूप थी। मुगल साम्राज्य की तत्कालीन अवस्था मे इनसे अच्छी शर्तें तय करना कठिन था। मराठो के लिए इनका पालन करना उन्ही के हित मे था। ऐसा करने से वे देश मे सर्वत्र फैली हुई अराजकता को कम कर पाते, और राजनीतिक स्थायित्व की शक्ति के रूप मे उनकी प्रतिष्ठा स्थापित होती। परन्तु यह समझौता मराठा सरदारो की असीम आकाक्षाओ की पूर्ति मे बाधक था, विशेषकर राघोजी भोंसले की, जो उडीसा व बगाल को अपना प्रभाव-क्षेत्र मानता था और जिसका, हाल की कर्नाटक मे सफलता के बाद, मराठा दरबार मे प्रभाव काफी बढ गया था। इस समय जब कि अवध, बगाल, दक्षिण व कर्नाटक मे कल के बादशाही नौकर अपने स्वतत्र राज्य बनाने के उद्देश्य से साम्राज्य के विस्तृत भागो को हडप कर बैठे थे, मराठा सरदार किसी समझौते की शर्तो से बधकर मृत प्राय मुगल साम्राज्य के अधिकाधिक भाग पर अपना अधिकार जमाने के लोभ को सवरण नही कर सकते थे। राजनीतिक स्थिति दिन पर दिन बिगडती जा रही थी और किसी भी समझौते की सीमाएं अस्थाई प्रतीत होती थी। यदि बाजीराव पेशवा जीवित होता तो वह इस समझौते को बचा लेता, परन्तु उसके पुत्र बालाजी मे न तो उसके पिता की सी सैनिक योग्यता थी, जिसके अभाव मे मराठा सरदारो को नियत्रण मे रखना असभव था, और न ही वह अपने वचन का पक्का था।

समझौते के अनुसार बालाजी को मुगल प्रान्तो मे मराठो के आक्रमणो को रोकना चाहिए था, परन्तु उसने मालवा, बुदेलखंड व इलाहबाद की चौथ मांगी।[2] बादशाह ने इसे भी स्वीकार कर लिया, और पेशवा को बगाल मे अलीवर्दीखा की, भौसले के विरुद्ध, सहायता के लिए जाने को कहा। पेशवा ३१ मार्च, १६४३ को प्लासी के निकट अलीवर्दी खा से मिला और खर्चे के बाइस लाख रुपये व छत्रपति शाहू के लिए बगाल की वार्षिक चौथ दिए जाने की शर्त पर उसने राघोजी भोसले के विरुद्ध अभियान मे भाग लेने का वायदा किया। १० अप्रेल को पेशवा व राघोजी

1. पेशवा दफ्तर, जि. 15, पृ. 86; सरकार, फॉल, 1, पृ. 115।
2. सरदेसाई, 2, पृ. 215।

मे पाचेट के पास एक झड़प हुई जिसमे कि भौसले की पीछे हटती हुई सेना का कुछ सामान पेशवा की फोज ने लूट लिया। परन्तु तीन महीने के बाद पेशवा ने भौसले से शाहू के समक्ष समझौता कर लिया जिसके अनुसार बरार से कटक तक का सारा प्रदेश, बगाल, व लखनऊ, भौसले का अधिकार क्षेत्र मान लिया गया, और इसके पश्चिम का प्रदेश–अजमेर, आगरा, प्रयाग, मालवा आदि पेशवा के प्रभावक्षेत्र स्वीकार कर लिए गए[1]। यह समझौता करके पेशवा ने धोलपुर के समझौतो को फाड कर फेक दिया। वैसे यह सही है कि १७४१ के बाद राजनीतिक स्थिति इतनी तेजी से बदल रही थी, और मुगल साम्राज्य का विघटन इतनी तीव्र गति से हो रहा था कि मराठो को अपने राजनीतिक उद्देश्यो मे परिवर्तन करना पडा, जिससे कि वे तत्कालीन स्थिति का अधिक से अधिक लाभ उठा सके। जयसिह ने पेशवा व मुगल सरकार के बीच जो समझौता करवाया था, वह इस बदलती हुई राजनीतिक स्थिति के दवाव, व पेशवा तथा शाहू के देश की सबसे सबल शक्ति के जिम्मेदार प्रतिनिधि के रूप मे व्यवहार न करने के कारण टूट गया। १७४२ मे जब जयसिह ने अयामल को सिधिया द्वारा कोटा से एक लाख बीस हजार की जगह दो लाख चालीस हजार खडणी के रूप में मांगने की शिकायत करवाई तो पेशवा ने उत्तर दिया कि कोटा राधोजी व महादजी के तालुके मे है, और यह उनका मामला है।[2] बाजीराव के समय मे इस प्रकार का उत्तर कभी नही दिया गया। परन्तु बाजीराव के बाद मराठा नीति का न स्वरूप, और न ही दिशा स्थिर रही, जिसकी मराठो को कुछ ही वर्ष बाद भारी कीमत चुकानी पडी।

●●●

1. वही, पृ. 219।
2. महाराव दुर्जनसाल–जयसिंह, 24 नवम्बर, 1742, ज. आ.।

अध्याय १०

अन्तिम तीन वर्ष (१७४०-४३)

१७३७ के बाद जयसिंह का मुख्यत: जयपुर में ही रहना, बादशाह के साथ उसके संबन्ध पूर्ववत् रहना

आगरा व मालवा के सूबे लिए जाने के बाद जयसिंह अपनी नवनिर्मित राजधानी जयपुर लौट आया। इस समय दिल्ली मे निजाम का पुन बहुत प्रभाव हो गया था। इसलिए जयसिंह अधिकाश समय अपने राज्य मे ही रहा। परन्तु निजाम के १७३७ के मराठा अभियान मे उसने अपने बडे पुत्र ईश्वरीसिंह को एक टुकडी के साथ भेजा जिससे कि किसी को यह कहने का अवसर न मिले कि वह (जयसिंह) मराठो के विरुद्ध बादशाही प्रयत्नो मे साथ नही दे रहा है। जयपुर का दीवान राजा अयामल भी ईश्वरीसिंह के साथ था। उसने दोराहा सराय की सधि करवाने मे जो भाग लिया, उसके बारे मे हम पहले लिख चुके है।

यद्यपि नादिरशाह के आक्रमण के समय जयसिंह मुहम्मदशाह की मदद के लिए नही गया था, उसके बादशाह के साथ घनिष्ट सम्बन्ध बने रहे, और आने वाले वर्षो मे उसने मुगल सरकार की मराठा नीति व अन्य राजनीतिक समस्याओ के प्रति सरकार के दृष्टिकोण को प्रभावित किया[1]। परन्तु अगस्त १७३७ से अप्रेल १७४० तक वह बहुधा जयपुर मे ही रहा। वह अक्टूबर १७४० मे आगरा गया। निजाम के अगस्त १७४० मे दिल्ली से जाने के बाद आगरा का सूबा पुन. जयसिंह को दे दिया गया था[2]। मार्च अप्रेल १७४१ मे वह अपने सूबे का काम देखने आगरा गया। अप्रेल १७४१ मे वह पेशवा से होने वाली वार्ता के बारे मे बादशाह से सलाह करने दिल्ली गया। परन्तु अब दरबार मे वह केवल कभी-कभी ही जाता था। इस समय राजपूताने की अनेक समस्याओ मे वह व्यस्त था। इन्ही दिनो वह अश्वमेध आदि श्रौत यज्ञ करने व वेधशालाओ के कार्य मे भी व्यस्त था। दिल्ली, बनारस, उज्जैन, मथुरा व जयपुर मे जो १७२४–३७ के बीच उसने वेधशालाए बनवाई थी, उनके यत्रो से, जिसमे से कुछ उसकी स्वय की कृति थे, असख्य आकडे मिल रहे थे, जिनके

---

1. यह जयसिंह के बालाजी बाजीराव के साथ 1741 के महत्वपूर्ण समझौते से स्पष्ट है।
2. लाहर परगना, सूबा अकबराबाद, के मुतसधी, चौधरी, कानूनगो के नाम मुगल दरबार से परवाना (कपटद्वारा न 699) ता. 5 जमादिउस्सानी (अगस्त 7, 1741)।

विश्लेषण के लिए काफी समय देना पडता था। जयसिंह की खगोल शास्त्र व ज्योतिष विद्या के क्षेत्र मे उत्कृष्ट सेवाओ का वृत्तान्त आगे दिया गया है।[1]

१७४० मे जयसिंह के अध्ययन मे आकस्मिक ही विघ्न उत्पन्न हो गया जब नादिरशाह के अजमेर मे दरगाह शरीफ की यात्रा के लिए आने की सभावना हुई। यदि नादिर अजमेर जाता तो निश्चय ही वह जयपुर भी आता। जयसिंह के लिए नादिर का मार्ग रोकना कठिन था। इसलिए उसने अपनी प्रजा को सुरक्षित स्थानो मे चले जाने की राय दी।[2] सौभाग्य से नादिर दिल्ली से ही लौट गया और उसके विनाशकारी क़दम जयपुर मे नही पड़े।

जोधपुर के बीकानेर का विरुद्ध अतिक्रमण, जयसिंह का हस्तक्षेप

१७३८ के बाद जयसिंह जोधपुर के बार-बार बीकानेर लेने के प्रयत्नो से उत्पन्न स्थिति मे उलझ गया। महाराजा अजीतसिंह अपने पूर्वजो की भाँति बीकानेर पर अपना अधिपत्य जमाने का इच्छुक रहा था। उसकी मृत्यु के बाद अभयसिंह व बख्तसिंह ने १७३३ और १७३४ मे बीकानेर हडप करने के असफल प्रयत्न किए। इनमे से दूसरा प्रयत्न तो हुरडा सम्मेलन के एक माह बाद ही किया गया था[3]। १७३६ मे महाराजा अभयसिंह व बख्तसिंह के सम्बन्ध बिगड गए। बख्तसिंह नागौर आ गया जहाँ जोधपुर की सेना ने उसे घेर लिया। इस पर बख्तसिंह ने बीकानेर के महाराजा जोरावरसिंह से पत्र व्यवहार आरम्भ कर दिया और मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए। १७३९ मे जब अभयसिंह ने बीकानेर पर आक्रमण किया तो बख्तसिंह ने बीकानेर पर दबाव कम कराने के लिए मेडता जीत लिया और वह जोधपुर की ओर बढने लगा। इस पर अभयसिंह बीकानेर जीतने का विचार छोड कर वापस लौट गया। बख्तसिंह ने जालौर की मरम्मत के लिए तीन लाख रुपये लेकर अभय सिंह को मेडता सौप दिया। १७४० मे जब महाराजा अभयसिंह ने बीकानेर को पुनः घेरा तो बख्तसिंह ने महाराजा जोरावरसिंह की, पूरी सहायता की, और यह सलाह

1. देखिए अध्याय 12, जदुनाथ सरकार का वंशभास्कर पर आधारित यह कथन (फाल, 1 पृ. 135) कि मालवा मे मराठों के विरुद्ध उसकी पूर्ण असफलता व बादशाह को मराठों के समक्ष आत्मसमर्पण की राय देने के बाद जयसिंह आबेर लौट गया और वहाँ भोग लिप्सा में डूब गया, तनिक भी सही नहीं है। हम यह देख चुके है कि 1736 के बाद भी जयसिंह राजनीति मे अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लेता रहा। दूसरे, 1737 के बाद साहित्य व विज्ञान के क्षेत्र मे जयसिंह के प्रयत्न चरम सीमा पर पहुंच गए। इन्ही वर्षो मे उसने श्रौत यज्ञ भी किए।
2. देखिए इरविन, जि. 2, पृ. 374।
3. जोधपुर के बीकानेर के प्रयत्नों के बारे मे देखिए पाउलेट, गजेटियर ऑव् बीकानेर स्टेट; ओझा, बीकानेर, जि. 2 पृ 302, 304।

दी कि बीकानेर के विरुद्ध जोधपुर के आक्रमणों को सर्वदा के लिए समाप्त करने के लिए सवाई जयसिंह से सहायता ली जाय[1]।

हम यह देख चुके है कि १७२८ तक जयसिंह व अभयसिंह के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे थे। जयसिह की ही सहायता व समर्थन से अभयसिह अजीतसिह की हत्या के बाद उत्पन्न स्थिति पर नियत्रण पा सका था। परन्तु १७२७ के बाद उनके सम्बन्ध बिगडने लगे। इसका एक कारण तो अभयसिह की प्रकृति था जिसके कारण उसका अन्य राजपूत राजाओं के साथ निभाव नही हो पाता था। वह हठी, क्रोधी व अविश्वासी प्रकृति का व्यक्ति था। हम यह देख चुके है कि १७२५ मे उसने गुजरात जाने के प्रश्न पर बादशाह व जयसिह को कितना क्रुद्ध किया था। अभयसिह व जयसिंह मे विरोध का सभवत. एक कारण उनका मराठा समस्या के प्रति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण था। महाराणा व जयसिंह सदा एक दूसरे की सलाह से मराठा समस्या से निपटाने का प्रयास करते थे, परन्तु अभयसिंह कमरुद्दीन खा के साथ था। कमरुद्दीन खाँ, सादत खा मुहम्मद खा, बगश आदि जयसिंह के विरोधी पार्टी मे थे। साथ ही जोधपुर के बीकानेर लेने के प्रयत्न सारे राजपूताने के लिए एक समस्या बनते जा रहे थे।

नवम्बर १७३० मे हम अभयसिह को उसके दिल्ली स्थित वकील भडारी रघुनाथ को लिखते हुए पाते है कि वह जयसिंह के झुन्झुनू, फतहपुर, थराड आदि को जागीर मे लेने के प्रयत्नो को सफल न होने दे। अभयसिंह ने लिखा कि ये उसे जागीर मे मिल जाएं तो सबसे अच्छा है, और यदि यह सभव न हो तो ये इजारे मे उसे मिल जाए; परन्तु किसी भी स्थिति मे ये क्षेत्र जयसिंह को न मिलने पावे।[2] इसी भाँति १५, जनवरी, १७३१ को जयसिंह व मराठों के बीच समझौते की एक शर्त यह थी कि महाराजा जयसिह व महाराजा अभयसिंह के तनावपूर्ण सम्बन्धो के देखते हुए मराठे जोधपुर से अपने पडित को वापस बुलवा ले।[3] १७३३ के बाद राव इन्द्रसिह का, जिसकी नागौर प्राप्त करने की आकाक्षा बराबर बनी हुई थी, जयसिह के साथ पुन पत्र व्यवहार बढ गया था।[4] १७२४-३० के बीच इन्द्रसिह को जयसिह से कोई प्रोत्साहन नही मिला था।

---

1. ओझा. बीकानेर, जि. 1, पृ 310, 313-14, ओझा, जोधपुर, जि. 2 पृ 648-52; टॉड. जि. 2, पृ 84।
2 अभयसिंह-भंडारी अमरसिंह व पुरोहित वर्धमान. 10 नवम्बर 1730 (रेउ, ग्लोरीज, पृ. 153)।
3. कौलनामा. आषाढ वदि 7, सं 1788 (4 जून 1732), कपटद्वारा कागजात, नं 1319।
4. जैसे इन्द्रसिह-जयसिंह [?] सं 1790 ज आ जिसमें वह जयसिंह से आर्थिक मदद के लिए व महाराजा सुजानसिंह को उसके बारे में पत्र लिखने के लिए निवेदन करता है। 174 मे किए गए अश्वमेध यज्ञ में राव इन्द्रसिंह भी आमन्त्रित अतिथिगणों मे था।

जब-बीकानेर का दूत सहायता मांगने के लिए जयपुर आया तो जयसिंह ने अपने ठाकुरो व सलाहकारो से उनकी राय पूछी। अन्त मे यह तय हुआ कि जोधपुर के बीकानेर पर अधिकार करने के दावो को सर्वदा के लिए समाप्त कर दिया जाय।[1] जयसिह ने अभयसिह को लिखा कि सभी राजपूत राजा एक दूसरे के भाई है। वे एक ही परिवार के है और इसलिए उसे (अभयसिह को) बीकानेर का घेरा उठा लेना चाहिए। परन्तु अभयसिह ने जयसिह के जोधपुर के निजी मामले मे हस्तक्षेप करने के अधिकार को अस्वीकार कर दिया।[2] इस कारण जयसिह का बीकानेर के पक्ष मे हस्तक्षेप आवश्यक हो गया।

अभयसिह द्वारा कड़ी शर्ते स्वीकार करना (जुलाई १७४०)

जोधपुर के विरुद्ध जाने के पूर्व बख्तसिंह के सही रुख की परीक्षा लेने के लिए उसे मेडता जीतने के लिए कहा गया। बख्तसिंह ने यह कार्य तुरन्त कर दिया। जयसिंह ने अब राजा अयामल को २०,००० सेना के साथ बीकानेर का घेरा उठवाने के लिए भेजा, और स्वय एक बडी सेना के साथ जोधपुर के लिए रवाना हुआ। उसके कहने पर महाराणा जगतसिंह भी ८०,००० सेना के साथ अजमेर के निकट जयसिह से मिलने के लिए रवाना हो गया। कोटा का महाराव दुर्जनसाल व प्रतापगढ व डूगरपुर के रावल भी महाराणा के साथ थे[3]। इस स्थिति मे अभयसिह को बीकानेर का घेरा तुरन्त समाप्त कर जोधपुर की रक्षा के लिए लौटना पडा। परन्तु उसने अनुभव किया कि वह जयपुर, मेवाड, कोटा आदि की सम्मिलित सेनाओ को रोकने की स्थिति मे नही है, और इसलिए उसने समझौते के बारे मे बातचीत करने के लिए जयसिंह के पास अपने दूत भेजे। जयसिंह ने अभयसिह के साथ कडी शर्ते रखी, जिन्हे अभयसिह को स्वीकार करना पडा।[4] २५ जुलाई, १७४० को अभयसिंह ने बादशाह को एक लाख रुपये, २५,००० रुपये के जवाहिरात व एक हाथी पेशकश के रूप मे देना, व जयसिह को फौज खर्च के बीस लाख रुपये देना स्वीकार किया। अभयसिंह ने इस सब राशि के लिए चार सप्ताह मे गारटी देना, अथवा बीस हजार रुपये प्रतिदिन (जबतक कि कुल राशि अदा नही हो जाती) देना स्वीकार किया। इसके अलावा बीकानेर को वे सब गाव, जो अभयसिंह ने अभी जीते थे, व बख्तसिह को मेडता, देना तय हुआ। अभयसिंह ने अजमेर के उन परगनो के मामलो मे,

1. देखिए ओझा, जोधपुर, जि 2, पृ. 653-54। कुछ ठाकुर, जैसे भंसको का, हस्तक्षेप के विरुद्ध थे। देखिए टॉड, जि 2, पृ 85।
2. टॉड, जि. 2, पृ. 84-5।
3 ओझा, जोधपुर, जि 2, पृ. 652-53, ओझा, बीकानेर, जि. 1, पृ. 315, वीर विनोद 2, पृ. 848, वंशभास्कर, 4, पृ 3298-3301।
4. ओझा, जोधपुर, 2, पृ. 654।

जो जयसिंह को इजारा अथवा मंसब मे मिले थे, किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने का वचन दिया। इन परगनो मे भिवाई, केकडी, राजगढ, परवतसर, पीसनगढ, सारोठ, बमवाली, हरसौर, देवगाव, मासूदो, धावली, पीपलाड, साभर, व डीडवाना थे। अभयसिंह ने जयपुर दरबार मे अपना पुत्र, ठाकुर व, कर्मचारी भेजना स्वीकार किया। यह तय हुआ कि दिल्ली से जोधपुर का वकील बुला लिया जावेगा और भविष्य मे जोधपुर का शाही दरबार मे कोई अलग वकील नही रहेगा, और न ही अभयसिंह मुगल सरकार व मराठो से अलग बातचीत करेगा। यह भी तय हुआ कि जोधपुर के ठाकुर उपरोक्त शर्तों के पूरा किए जाने की गारटी देगे और शर्तों के पालन मे भूल अथवा कमी होने पर जोधपुर के पाच ठाकुर जयपुर राज्य की सेवा करेगे।[1]

शर्तों की कठोरता; बख्तसिंह का अभयसिंह से पुनः मिल जाना

अन्तिम दो शर्तें, जो काफी अपमानजनक थी, जोधपुर के मुग़ल सरकार व मराठो के साथ सम्बन्धो को नियत्रित करने के उद्देश्य से सधि मे शामिल की गई थी। पिछले बीस वर्षो मे जोधपुर की नीति राजपूताने के अन्य राज्यो की नीति से अलग रही थी, और इस कारण जोधपुर पर इस प्रकार का नियत्रण उचित था। परन्तु जयसिंह इस दिशा मे बहुत दूर तक बढ गया। प्रकृति, दीर्घ अनुभव व स्वाभाविक सूझबूझ के कारण जयसिंह अन्य राज्यो के साथ अपने व्यवहार मे सर्वदा सयम बरतता था, परन्तु इस बार जोधपुर को पाठ सिखाने की इच्छा ने उसकी सतुलित बुद्धि व सावधान प्रकृति पर काबू पा लिया। सन्धि की अन्तिम दो शर्तें जोधपुर के लिए अपमानजनक थी, और इस कारण, तथा बख्तसिंह को इस अभियान मे कुछ विशेप न मिलने के कारण, वह जयसिंह से अलग हो गया। उसने अपने भाई के पास पहुँच कर शत्रु का साथ देने के लिए क्षमा और जोधपुर के अपमान का बदला लेने के लिए आज्ञा मागी। अभयसिंह ने दोनो ही प्रार्थना स्वीकार करली। इस समय बख्त सिंह के क्रोध, दुख, व क्षोभयुक्त मनोस्थिति का आभास उसके महाराव दुर्जनसाल को १२ अप्रेल, १७४१ को लिखे पत्र से ज्ञात होता है। उसने लिखा कि वह महाराजा अभयसिंह से पुनः मिल गया है, और यह जानकर महाराव को प्रसन्नता होगी। उसने लिखा कि जयसिंह ने राठौडो के साथ घोर अन्याय किया है और इससे उसके साथ युद्ध आवश्यक हो गया है। ईश्वर की कृपा से वे जयसिंह पर विजयी होगे। उसने कोटा के महाराव को राठोडो का साथ देने को कहा। पत्र के हाशिये मे उसने स्वय अपने हाथ से लिखा कि उनके राजघराने हमेशा एक दूसरे के निकट रहे हैं और इस लिए महाराव वही करेगे जो इन सम्बन्धो के अनुकूल होगा। संसार आश्चर्य चकित

1. याददाश्त, 25 जुलाई 1740 (कपटद्वारा कागजात नं. 46 के/1094); वंशभास्कर, 4, पृ. 3299, 3301।

होकर देखेगा कि वे कछवाहो की क्या दुर्दशा करते है ।[1] यद्यपि कोटा ने राठौडों का साथ नही दिया परन्तु बख्तसिंह ने अपनी फौज से कही अधिक बडी जयपुर की सेना का अपूर्व साहस व वीरता से सामना किया ।

बख्तसिंह का जयसिंह के विरुद्ध अकेले जाने का निर्णय

महाराजा बख्तसिंह व अभयसिंह की सम्मिलित सेनाए मेडता पहुँची । परन्तु अजमेर के निकट पहुँचने पर एक अप्रिय प्रसग छिड जाने के कारण बख्तसिंह ने अपने भाई से अलग होकर अकेले ही जयसिंह से युद्ध करने का निश्चय किया । उस दिन महाराजा अभयसिंह ने अपने ठाकुरो को बख्शीश मे पुष्प प्रदान किए, परन्तु दुवानगर के कुशलसिंह चापावत ने यह कह कर पुष्प स्वीकार नही किया कि राठौडो ने नाक व पाग दोनो ही गवा दिए है, और इसलिए वह पुष्प लेकर क्या करेगा । बख्तसिंह उस समय उपस्थित था और वह समझ गया कि ताना उसी को दिया गया है । उसने आवेश मे कहा कि उसके जयसिंह से मिलने के कारण ही राठौडो का अपमान हुआ है, और इसलिए वह जोधपुर की सेना से अलग होकर अपने ही ५००० सैनिको के साथ जयसिंह से लडेगा । ऐसा कहा जाता है कि बख्तसिंह को जानबूझ कर उत्तेजित किया गया था, क्योकि अभयसिंह को अपने व अपनी सन्तान के लिए बख्तसिंह से डर था ।[2]

गंगवाना का युद्ध

जयसिंह इस समय धौलपुर मे पेशवा बालाजी बाजीराव के साथ महत्वपूर्ण राजनैतिक वार्ता मे व्यस्त था (१२–१८ मई) । वहाँ उसे राठौडो की सैनिक तैयारी का समाचार मिला । पेशवा व मुगल सरकार के बीच समझौता करवाने के बाद वह तेजी से अजमेर की ओर चला । मार्ग मे शाहपुरा का राजा उम्मेदसिंह व करोली का राजा गोपालसिंह भी साथ हो गए ।[3] ११ जून, १७४१ को गगवाना (किशनगढ के निकट) पहुचने पर उसे सूचना मिली कि बख्तसिंह अपनी फाज के साथ आ पहुंचा है । कुछ दूर तक तो जयसिंह अपनी पालकी मे ही रहा और तब हाथी पर सवार हो गया । थोडी ही देर बाद बख्तसिंह व उसके ५००० घुडसवार जयपुर की विशाल सेना पर टूट पडे । दो बार वे शत्रु सेना को चीरते एक ओर से दूसरी ओर तक निकल गए । परन्तु अब बख्तसिंह के साथ केवल साठ सवार बचे थे । बख्तसिंह के एक तीर

---

1. बख्तसिंह–महाराव दुर्जनसाल, वैशाख वदि 13, स. 1797 (2 अप्रेल 1741) ज. आ. । पत्र के जयपुर अभिलेख सग्रहालय मे प्राप्त होने से स्पष्ट है कि महाराव ने बख्तसिंह का पत्र जयपुर भेज दिया था ।
2. वशभास्कर, 4, पृ 3303, ओझा, जोधपुर, 2, पृ. 655–56 मे थोडा भिन्न विवरण है, वीर विनोद, 2 पृ. 848 भी देखिए।
3. ओझा, जोधपुर, 2, पृ. 655, 557 ।

व गोली भी लग चुकी थी। यद्यपि वह युद्ध-क्षेत्र छोडना नही चाहता था, तथापि आग्रह करने पर वह मेडता नागौर की तरफ मुड गया और अभयसिंह से जाकर मिल गया।[1] जयसिंह एक दिन गगवाना रुक कर १३ जून को अजमेर पहुँचा।[2] तीन सप्ताह बाद महाराजा अभयसिंह ने भडारी रघुनाथ को अभयसिंह के कुल देवता श्री गिरधारी की मूर्ति लेने, जो युद्ध मे जयपुर की फौज के हाथ मे आ गई थी, जयपुर भेजा। जयसिह ने मूर्ति बडे आदर पूर्वक लौटाई।[3] सितम्बर १७४१ मे बादशाह ने जयसिंह के पास बख्तसिह पर विजय के उपलक्ष्य मे एक हाथी (शमशेर जग) भिजवाया।[4] अभयसिंह ने दिखाने के लिए यह प्रदर्शित किया कि हाल की घटनाओ के कारण उसके मन मे जयसिह के प्रति कोई मैल नही है। महाराणा जगतसिंह ने, जो अपने पिता व पितामह की तुलना मे न बुद्धिमान था और न दूरदर्शी, और जो वास्तव मे जयपुर के विरुद्ध था, जयसिंह व अभयसिंह मे सद्भावना स्थापित करने का प्रयास किया। ६ जून को अभयसिंह ने जयसिंह को लिखा कि महाराणा की आज्ञानुसार वह जयपुर के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध पुन स्थापित कर रहा है और वह किसी भी हिन्दू अथवा मुस्लिम के कहने पर इन सम्बन्धो के प्रतिकूल कार्य नही करेगा।[5] परन्तु राठौड़ अपने अपमान को भूले नही और उन्होने बादशाह पर हस्तक्षेप करने के लिए दबाव डाला। ५ अगस्त, १७४३ के फरमान मे बादशाह ने जोधपुर व आबेर के बीच तनावपूर्ण सम्बन्धो पर चिन्ता व्यक्त की और इस बारे मे बातचीत के लिए जयसिंह को बुलाया।[6] परन्तु जयसिंह की २१ सितम्बर (आसोज सुदि १४) को मृत्यु हो गई।

अश्वमेध

सवाई जयसिंह ने हुरडा सम्मेलन के एक माह बाद ही प्रथम अश्वमेध किया था परन्तु उस महत्वपूर्ण घटना के बारे मे कोई विस्तृत जानकारी उपलब्ध नही है। यज्ञ २६ मई, १७३४ को सम्पूर्ण हो गया था। यज्ञ की समाप्ति की सूचना राज्य के सभी भागो मे भेज दी गई थी और लोगो को सामूहिक स्नान के लिए जयपुर आमन्त्रित किया गया था।[7] १७४२ मे अश्वमेध अधिक बडे पैमाने पर

1. स्याह वकाया नं 105, कपटद्वारा कागजात। युद्ध के वृत्तान्त के लिए देखिए टाड, 2 पृ. 86, वशभास्कर, 4, पृ. 3310–11, जोधपुर ख्यात, 2 पृ. 153; वीर विनोद, 2. पृ. 848।
2. स्याह वकाया नं 105, श्रावण सुदि 6, सं 1797 (पडाव गाव गलती), कपटद्वारा कागजात।
3 कपटद्वारा कागजात नं 1/6, 105 (आषाढ सुदि 15, स 1797)।
4 वही, आसोज सुदि 9, सं 1798 (सवाई जयपुर)।
5. अभयसिह-जयसिह, अषाढ सुदि 7, सं. 1799 (वीर विनोद, 2, पृ. 1229) व जयसिह का भाद्रपद वदि 7, सं. 1798 (21 अगस्त, 1741) का पत्र, कपटद्वारा कागजात न 913।
6. फरमान, 5 अगस्त, 1743 ज आ.।
7 स्याह हकीकत, परगना टोंक, भाद्रपद सुदि 5 सं. 1791 (2 अगस्त 1734) ज. आ.।

किया गया ।[1] आषाढ वदि २ स० १७६६ को महाराणा जगतसिंह, महाराव दुर्जन साल, राजा छत्रसिंह, राजा गोपालसिंह (करौली), राजा इन्द्रसिंह, राजा जैतसिंह, राजा विक्रमाजीत आदि को निमन्त्रण-पत्र भेजे गए ।[2] अषाढ सुदि १३ को जयसिंह के बडे पुत्र ईश्वरीसिंह ने दीक्षा ली । श्रावण सुदि ३ को यज्ञ सम्पूर्ण हुआ ।[3] शताब्दियो बाद अश्वमेध किए जाने का हिन्दूओ मे स्वागत हुआ । जयसिंह को दूर पास से, राजाओ, पडितो तथा धर्मशास्त्रियो के जो सदेश मिले उनमे से कुछ उपलब्ध है । १० जुलाई को राव राजा इन्द्रसिंह ने लिखा कि केवल महाराजा ही यह पवित्र कार्य कर सकते है । महाराजा ने इस कलियुग मे भी सतयुग स्थापित कर दिया है । श्री जी दीर्घायु हो ।[4] इसमे कोई सदेह नही कि अश्वमेध करने से हिन्दू समाज को बडा सन्तोप हुआ होगा ।[5] इससे पूर्व जयसिह अनेक श्रौत यज्ञ कर चुका था । उसकी मृत्यु के समय ईश्वरीसिंह राजसूय यज्ञ कर रहा था ।

अश्वमेध करने के बाद जयसिंह पुन: अजमेर गया । वहाँ १८ जून, १७४२ को जसवंतराव पवार व शिवसिंह (छत्रपति शाहू का कर्मचारी) उससे मिलने के लिए आए ।

१७४३ में जयसिंह की संतोषजनक स्थिति

१७४३ मे, जो जयसिंह के जीवन का अन्तिम वर्प था, राजपूताने मे स्थिति सतोपजनक थी । अभयसिंह को एक बार तो नियन्त्रित कर दिया गया था । मेवाड व कोटा के साथ उसके (जयसिह के), अच्छे सम्बन्ध थे और वे उसकी सलाह अथवा समर्थन के बिना कुछ नही करते थे । बीकानेर हाल ही मे दी गई मदद के कारण बहुत अनुग्रहित अनुभव कर रहा था । बूंदी मे दलेलसिंह की स्थिति दृढ प्रतीत होती थी । बदनसिंह जाट जयसिह के प्रति पहले की ही भाँति वफादार था । करोली व शाहपुरा के राजा उसके अत्यन्त निकट थे और उसकी कृपा की आकाक्षा रखते थे । जयपुर का राज्य इससे पहले कभी इतना समृद्ध व विस्तृत नही था, और यह विस्तार, आम्बेर की परम्परा के अनुसार, किसी पडौसी राज्य की कीमत पर नही किया गया था । राज्य मे शान्ति व व्यवस्था थी और प्रशासन अत्यन्त सुचारू रूप से चल रहा था ।

राजस्थान के बाहर भी जयसिह के अन्य शक्तियो के साथ सतोपजनक सम्बन्ध थे । बादशाह के साथ उसके घनिष्ठ सम्बन्ध पूर्ववत थे । हाल ही मे बादशाह की ओर

1. देखिए ईश्वरविलास महाकाव्य. सर्ग 4, 5 ।
2. निमत्रण पत्रो की प्रतिलिपिया, ज. आ. ।
3. वही ।
4. वही, दलेलसिह–जयसिंह, श्रावण वदि 13, सं 1799, ज आ. ।
5. इस अश्वमेध के बारे मे पी. के. गोडे के लेख भी देखिए पूना ओरिएन्टेलिस्ट, 2, 1937 पृ. 176, जर्नल आफ इ डियन हिस्ट्री, जि 15, 1937 पृ 364-67 मे ।

से उसने पेशवा के साथ महत्वपूर्ण समझौता किया था। अपने चवालीस वर्ष के शासन काल मे जयसिह पाँच बादशाह तीन महाराणाओ, व तीन पेशवाओ के सम्पर्क मे आया था। पेशवा बाजीराव के साथ दीर्घकाल तक उसके घनिष्ट संबध रहे थे। १७१४ के बाद केन्द्रीय राजनीति मे उसने महत्वपूर्ण भाग लिया था। १७२८ के बाद मुग़ल सरकार की मराठा नीति को उसने अत्यधिक प्रभावित किया था। उसकी लगभग सभी आकाक्षाएँ पूर्ण हो चुकी थी। उसने न केवल एक विशाल राजधानी का निर्माण पूरा कर लिया था, अपितु उसने कई वेधशालाएं, मन्दिर व सैकडो सराएं भी बनवाई थी, और जयपुर नगर को उसने देश का सबसे व्यस्त सांस्कृतिक केन्द्र बना दिया था।

जयसिंह का ईश्वरीसिंह के उत्तराधिकार को सुरक्षित करने का प्रयत्न

जब जयसिह का स्वास्थ्य गिरने लगा तो उसने धीरे-धीरे शासन का भार ईश्वरीसिंह को सौप दिया।[1] अपनी मृत्यु से पूर्व उसने ईश्वरीसिंह के उत्तराधिकार को यथा संभव सुरक्षित कर दिया। १७४२ मे जब उसने अश्वमेध करवाया तो दीक्षा ईश्वरीसिंह को दिलवाई। मार्च १७४१ मे उसने मेवाड़ के प्रमुख सरदारो से, जिनमे रावतबुद्ध सिंह, रावत कुवेरसिंह, पदमसिंह, रावत जसोतसिंह, नाथजी, साह भीम आदि थे, लिखवा लिया था कि वे माधोसिह के लिए बादशाह या मराठो से मदद नही मागेगे, और यदि माधोसिंह ने ईश्वरीसिंह पर आक्रमण किया तो वे उसकी कोई सहायता नही करेगे।[2] १७३५ मे महाराणा जगतसिंह ने अपनी पुत्री की सगाई ईश्वरीसिंह से कर दी थी।[3] १७४३ मे जयसिंह ने ईश्वरीसिंह से राजसूय यज्ञ भी आरम्भ करवा दिया था। परन्तु इसके सम्पूर्ण होने के पूर्व ही २१ सितम्बर १७४३ को जयसिंह की मृत्यु हो गई।[3] उस समय तक जयसिंह ने ५५ वा वर्ष भी पूरा नही किया था।

असामयिक मृत्यु ने जयसिह के अत्यन्त सफल व देश के लिए उपयोगी जीवन को बीच मे ही समाप्त कर दिया। अपने जीवन काल मे व आने वाले समय मे वह अपने समय के सबसे प्रतिभाशाली व विभिन्न विषयो मे पारगत विद्वानो मे गिना गया जो कूटनीति मे भी उतना ही पडित था जितना कि खगोल शास्त्र, गणित व धर्म-शास्त्र मे। वह उच्च कोटि का विद्वान, प्रशासक, समाज-सुधारक, कूटनीतिज्ञ व सैनिक था। उसकी बहुमुखी प्रतिभा उतनी ही आश्चर्यान्वित कर देती थी जितनी कि विभिन्न क्षेत्रो मे उसकी असाधारण उपलब्धिया। वह अपने समय के सबसे बुद्धिमान व्यक्तियो

1 ईश्वरविलास महाकाव्य, सर्ग 10, श्लोक 5। जेष्ठ शुक्ल 13, स. 1790, को ही ईश्वरी सिंह को युवराज घोषित कर दिया गया था।

2. कपटद्वारा कागजात।

3 द. को 24, पृ. 83।

4. ईश्वरविलास महाकाव्य, सर्ग 10, श्लोक 11-14, वंशभास्कर, 4, पृ 3223।

मे गिना जाता था । यह सभव है कि यदि जयसिंह कुछ वर्ष और जीवित रहता तो वह अ ग्रेजी शक्ति के बढते हुए प्रभाव के खतरे को भलीभाति आक लेता, जैसा कि उसने मराठो के प्रसार से उत्पन्न समस्या को समझा था, और वह उसे रोकने के लिए आवश्यक उपाय करता । तीस वर्ष तक देश मे ऐसी कोई महत्वपूर्ण घटना नही हुई, जिसमे उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाग नही रहा हो, अथवा जो उसकी तीव्र दृष्टि व प्रखर बुद्धि से छिपी रही हो । इस कारण १७४३ मे उसकी मृत्यु सारे देश की हानि थी । यदि मराठे उसकी सलाह मानकर मुगल साम्राज्य को बादशाह की नाम मात्र की अध्यक्षता मे बनाए रखने का प्रयत्न करते, और देश की राजनीति मे अधिक रचनात्मक भाग अदा करते, जैसा कि पेशवा बाजीराव अपने जीवन के अन्तिम वर्षो मे करने को तैयार हो गया था, तो देश का भिन्न इतिहास होता । परन्तु १७४० मे मुगल साम्राज्य व मराठा शक्ति दोनो को ही भारी आघात सहने पडे जिससे जयसिंह का कार्य और कठिन हो गया ।

भारी कठिनाईयो व निरन्तर विरोध के बावजूद भी जयसिंह देश मे शान्ति व स्थायित्व स्थापित करने तथा अराजकता व राजनैतिक विघटन रोकने, अथवा उनकी गति धीमी करने के लिए अथक प्रयत्न करता रहा । अन्त तक जयसिंह उस परिवर्तन व अराजकता पूर्ण काल मे, जिसमे देश के भाग्य का नियत्रण मुगलो के हाथ से निकलकर मराठो के हाथ मे आ गया था, स्थायित्व शक्ति के रूप मे रहा । जयसिंह शान्ति का समर्थक था और शान्ति, व्यवस्था, तथा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रो मे प्रगति के महत्व को भलीभाति समझता था । यदि राजनीति व प्रशासनिक कार्यो मे उसका इतना अधिक समय न जाता तो उसकी इन क्षेत्रो मे और भी अधिक महत्वपूर्ण देन होती । परन्तु जो कुछ वह निरन्तर युद्धो व गिरते हुए मुगल साम्राज्य के मलवे के बीच कर सका, वह उसे भारतीय इतिहास के विलक्षण पुरुषो मे स्थान दिलवाने के लिए पर्याप्त है ।

०००

अध्याय ११

राज्य-विस्तार व शासन-प्रबन्ध

जयसिंह की १७४३ मे मृत्यु से पहले आबेर हिन्दुस्तान के सबसे बड़े अर्ध-स्वतत्र राज्यो मे से एक हो गया था। इसका क्षेत्रफल २०,००० वर्ग मील से अधिक था जिसमे 'वतन' भाग लगभग ६,००० मील, ५,२०० वर्ग मील शेखावाटी के, लगभग ३,००० हजार वर्ग मील माचेरी के, १,८०० वर्ग मील टोक के, व गाजी का थाना, कमाऊ, खोरी व पहाडी, जो सिंधिया ने जाटो को दे दिए थे और जो उन्होने अपने पास रख लिए, तथा नारनोल और कानोर थे जो दिवाय ने मुर्तजा खा को दे दिए थे-शामिल थे[1]। इनके अलावा वे परगने भी थे जो जयसिंह ने १७४० ई० मे जोधपुर से लिए थे, और जो बाद मे आबेर के हाथ से निकल गए थे। इन परगनों मे भिणाय, केकडी, परबतसर, पीसनगढ, पीपलाद आदि थे[2]। जयपुर की आबादी भी अन्य राज्यो से अधिक थी। १८३२ मे कर्नल टॉड ने जयपुर की आबादी १८,५६,७०० व १८७५ मे मेलेसन ने १६,००,००० बताई। १८७१ मे प्रथम जनगणना मे जयपुर की आबादी २५ २८,७३० व १९३१ मे २६,३१,७७५ थी[3]। इस समय ऐसे कई इलाके जयपुर राज्य से अलग हो चुके थे जो जयसिंह के समय मे जयपुर का भाग थे। उपरोक्त तथ्य व १८३२-१९३१ के बीच जनसख्या मे लगभग ७,००,००० की वृद्धि को देखते हुए जयसिंह के समय मे आबेर राज्य की जनसख्या १८ लाख मानी जा सकती है।

आबेर राज्य की आय भी अन्य राजपूत राज्यो से अधिक थी। यद्यपि इस बारे मे १८०२ के पहले के आकडे प्राप्त नही हो सके, परन्तु आय सभवतः एक करोड रुपये वार्षिक के लगभग थी। टॉड ने लिखा है कि गाजी का थाना, खोरी, पहाडी, नारनोल आदि के जयपुर राज्य से अलग होने के पूर्व आबेर राज्य

---

1. देखिए टॉड, 2, पृ. 349-50। उपरोक्त आकडे लगभग सही है, परन्तु परगनों की संख्या व उनका क्षेत्रफल बदलते रहने के कारण जयपुर राज्य का क्षेत्रफल अधिक बारीकी से बताना कठिन है। यद्यपि कागजातो से यह ज्ञात होता है (याददाश्ती 1740 ई.) कि 1740 मे जयपुर राज्य मे परगनो की सख्या सबसे अधिक (36) हो गई थी जो अगले तीन वर्षों में भी इतनी ही रही, परन्तु परगनों की सीमा के बारे मे निश्चयात्मक रूप से बताना कठिन है क्योंकि नक्शे मे सभी मौजे बताना कठिन है, विशेषकर दाखिली मौजे (गाव)।
2. देखिए पृ 170।
3. टॉड, 2, पृ 347, सेन्सस रिपोर्टस् 1881, 1931।

की राजस्व से आय एक करोड रुपया थी। १८०२–३ मे राज्य की वार्षिक आय ८०,००,००० रुपये थी। यह हमे उस वर्ष के आय व राजस्व के आंकडो से ज्ञात होता है[1]।

जैसा कर्नल टॉड ने, और बाद मे विल्सन ने लिखा है, और इसकी तत्कालीन पत्रो से पुष्टि भी होती है, आवेर राज्य का 'वतन' भाग जयसिंह के समय तक भी बहुत छोटा था[2]। वास्तव मे यह केवल तीन हजार वर्ग मील के लगभग था। आवेर राज्य दक्षिण की ओर चाकसू व निवाई तक, पश्चिम की ओर साभर, और पूर्व मे दौसा व बसवा तक फैला था[3]। इस प्रकार जो भाग वशपरम्परानुगत आवेर के कछवाहा राजघराने के हाथ मे था, उसका क्षेत्रफल काफी कम था। इसे मुगल प्रशासन शब्दावली मे 'वतन जागीर' कहते थे, और इस प्रकार के राज्यों के शासको को जमीदार कहा जाता था। परन्तु इन अर्ध-स्वतन्त्र राज्यो के नरेशो व साधारण जमीदारो मे बहुत अन्तर था। यह उल्लेखनीय है कि राजपूत राजा अपने पत्रो मे अपने राज्यो के लिए 'वतन जागीर' शब्द के स्थान पर 'देश' अथवा 'राज' और कभी-कभी 'मुल्क' लिखते थे। उनके पत्रो मे एक दूसरे के लिए 'ज़मीदार' शब्द का कही उल्लेख नही मिलता है। टॉड व विल्स के विचार मे जमीदार शब्द जानबूझ कर राजाओं की हीनता प्रदर्शित करने के लिए लिखा जाता था। इसमे कोई सदेह नही कि यह शब्द भ्रमात्मक था और इससे राजपूत राजाओ की वास्तविक स्थिति व अधिकारो के बारे मे सही बोध नही होता था[4]।

कई परगने जो सवाई जयसिंह ने १७१२ के बाद आवेर राज्य मे मिला लिए, और जिनसे राज्य का विस्तार हुआ, काफी समय से उसके पूर्वजो के पास जागीर तनख्वाह के रूप मे रहे थे। जैसे मिर्जा राजा जयसिंह के पास चाटसू, फागी, मौजाबाद, पचवारा, खोहरी, देवली, सचेरी, बावल आदि जागीर मे थे, और लावा, पापरड़ा, सन्नेरी गिरवी तौर पर थे। उनके पुत्र रामसिंह को वहात्री, फागी, हिंडौन, बसवा, निवाई आदि जागीर मे मिले थे। जनवरी १७०८ के एक पत्र मे हम जयसिंह को यह लिखते पाते हैं कि लालसोट, झक, तारण, हसनपुर उसकी जमीदारी मे बहुत समय तक रहे है, और उसका वतन का विस्तार टोक परगने तक है,

1. टॉड, 2, पृ. 350–51।
2. टॉड, 2, पृ. 294; विल्स रिपोर्ट।
3. देखिए असद खां व जुल्फिकार खा के परवाने की प्रतिलिपि, 25 रबीउस्सानी (1707), ज. आ।
4. 'वतन जागीर' शब्द की अन-उपयुक्तता के बारे में देखिए टॉड, 1, पृ. 288 की टिप्पणी 4, 291, विल्स रिपोर्ट, पंचपना सिंघाना पर, पृ. 8, इर्फान हबीब, पृ. 183 नोट 5 व डॉ. जी. एन. शर्मा, 'राजस्थान स्टेडीज़', पृ. 207–212।

तथा दौसा, मौजाबाद, चाटसू, निवाई, नरेना उसके वतन के महाल है[1]। संभवतः जयपुर के आसपास के कई परगने जो १५२६ तक आमेर के अंतर्गत थे, उसके बाद वहाँ फैली अव्यवस्था का लाभ उठाकर अलग हो गए थे। मुगल सरकार केवल उसी क्षेत्र को वतन स्वीकार करती थी जो कई पीढियो से किसी वंश के अधिकार मे रहा हो। परन्तु आबेर की भौगोलिक स्थिति, राजपूताने के राज्यों में आबेर द्वारा ही सर्वप्रथम मुगलो की अधीनता स्वीकार करना, व १५२७ के बाद राज्य की आन्तरिक स्थिति बिगड़ने पर आबेर के निकट के कई परगनो के अलग हो जाने के कारण आबेर का 'वतन' क्षेत्र जोधपुर व उदयपुर के 'वतन' क्षेत्रो से बहुत छोटा रहा।

परन्तु १७०७ के बाद देहली की प्रभुता व उसका प्रभाव कम होने लगा और सूबो की खालसा भूमि पर उसका नियंत्रण कम हो गया। मुग़ल सरकार के लिए प्रजा की सुरक्षा व शासन-व्यवस्था बनाए रखना कठिन हो गया। मुगल अफसरो को 'जागीर तनख्वाह' के रूप मे मिली जागीरो से राजस्व वसूल करना दिनो दिन कठिन होने लगा। राजपूत, बुंदेले व अन्य शक्तियो के साथ मुगल सरकार के बिगडते हुए संबधो, उनकी निकट के परगनो को अपने नियंत्रण मे लाने की प्रवृत्ति, व मराठो के बढते हुए प्रसार से उत्पन्न स्थिति मे मुगल मनसबदारो के लिए उनकी जागीरों से राजस्व वसूल करना और भी अधिक असाध्य हो गया, विशेष कर उस स्थिति मे जबकि जागीरे ऐसे क्षेत्रो मे थी, जहाँ राजपूत, बुंदेले आदि अपने राज्यो के विस्तार के लिए प्रयत्नशील थे। ऐसी स्थिति मे इन मनसबदारो के लिए अपनी जागीरो का पैसा वसूल करने के लिए सबसे सुविधाजनक मार्ग जागीरो को उस क्षेत्र की प्रमुख क्षेत्रीय शक्ति को इजारे पर देना था। जब बडे मनसबदार राजस्व वसूल करने मे बढती हुई कठिनाइयो के कारण अपनी तनख्वाह जागीरें इजारे पर देने लगे तो यह स्वाभाविक था कि छोटे मनसबदार भी ऐसा ही करते क्योकि उनके लिए अपनी जागीरो से पैसा वसूल करना और भी कठिन था। जयसिंह ने आबेर राज्य के आसपास बडी सख्या मे जागीरे इजारे पर लेना शुरू कर दिया[2]। इन मनसबदारो मे अधिकांश मुसलमान थे।

---

1. जयसिंह के चगताई खा (22 शव्वाल 1119 हि.), माहिर खां (5 जमादिउस्सानी 1122 हि.), बक्शीउलमुल्क शाहनवाज खां (13 रजब 1123 हि), बक्शी उल मुमालिक महाबत बक्शी खा (18 रज्जब 1122 हि.) को फारसी पत्र (प्रतिलिपि) व भिखारीदास दीवान को परवाने की प्रतिलिपि (21 मुहर्रम 1123 हि.) व खेमसी भंडारी को परवाना (27 शव्वाल, सन् जुलूस 5) ज. आ।
2. यह उल्लेखनीय है कि 1707 में ही जयसिंह ने अपने वकील को वतन के पास के महालों की पायबाकी लेने के लिए लिखा था। 'जिन राजपूतों को वहां रखा जावेगा, वे वहां पहले से ही रह रहे हैं' उसने लिखा (देखिए, विल्स रिपोर्ट, परिशिष्ठ ई)।

१७१२ के आरम्भ मे आबेर के वकील जगजीवनदास ने कई जागीरे इजारे पर लेकर उनके पट्टे प्राप्त कर लिए। इनमे शुजात खा की जागीर जिसमे अमरसर, मौजाबाद, भैराना व नगीना परगने (सरकार तिजारा के अन्तर्गत), परगना लालसोट मे ७०,००,००० दाम की जागीर (घीघड खा की), परगना गाजी का थाना (इखलास खा की जागीर मे), परगरा मौजपुर (घासीराम वाकिया-निगार कुल का), परगना जेतपुर (मुल्तफितखा की जागीर), परगना वेनेटा (जमाल मुहम्मद की जागीर), मेवात मे खान-ए-जहाँ बहादुर व उसके संवधियो की जागीरे थी[1]। फर्रुखसियर के समय से तो जयसिंह ने तनख्वाह, इनाम, व इजारे मे बडी संख्या मे जागीरे लेना शुरु कर दिया। १७१४ मे उसने भानगढ परगना, १७१५ मे शुक्रुल्ला खा की परगना टोक मे २,५९,८२,२२२ दाम की जागीर, परगना खोरी मे मुहम्मद खा की १,६७,०९,६०९ दाम की जागीर। १७१७ मे परगना मालपुरा मे १,३३,३०,८८३ दाम की जागीर व परगना मुहम्मदपुर (सूबा मालवा) मे १,६०,००,००० दाम की जागीरे प्राप्त की। उसने परगना मालपुरा मे भी कई जागीरे व आगरा सरकार के कुछ गाव, जो चूडामरण व नरुकाओ के हाथ मे थे, प्राप्त कर लिए। १७१८ मे अमरसर परगने मे ३२,००,००० दाम, वली मुहम्मद की परगना भानगढ मे २,६५,००० दाम की जागीर और किश्रारा (भानगढ) की जमीदारी अपने नाम करवा लिए। १७२२–२५ के बीच परगना भानगढ (सूबा आगरा), अमरसर, परगना खोरी, हिन्डौन व टोडा परगने (जो सादत खा के पास थे) मे विस्तृत जागीरे इजारे पर ले ली। १७२४ मे उसने ३१,३०० रुपये पर रणथम्भोर की फोजदारी इजारे पर ले ली। १७२५ मे परगना अलवर मे अमजद खा कोका की जागीरे इजारे पर प्राप्त कर ली। १७२८ मे जयसिंह ने हवेली को छोडकर बाकी का अजमेर सूबा एक वर्ष के लिए इजारे पर ले लिया और साभर व डीडवाना भी प्राप्त कर लिए। उसने अमरसर परगने मे १५,१३,७२० दाम की जागीर भी प्राप्त की। कुछ ही समय बाद उसने मुजफ्फर खां से पाच महाल (गाउनरी, बबाई, झुन्झुनू; उदेपुर, नरहर) इजारे पर लिए। १७३२ मे उसने उदेपुर के सारदूलसिंह व सीकर के ठाकुर शिवसिंह को भेजकर दक्षिणी फतेहपुर से कायमखानियो को निकाल दिया और फतेहपुर की चारो पट्टियो (जुलियासर, सिहोत पटोदिया, कटाथल) पर अधिकार कर लिया। १७३६ मे जयसिंह ने कायमखानी जमीदार से बाकी का भाग भी छीन लिया। जयसिंह ने फतेहपुर कस्बे को छोड कर बाकी का आधा भाग शिवसिह व आधा भाग कासली के रामसिंह को दे दिया। १७३३ मे उसने उनियारा, एव बनेठा आदि मे ८५,६०,३३६ दाम की पायबाकी ज़मीन इजारे पर ली। १७४१ मे उसने ईश्वरीसिह के लिए परगना मनोहरपुर मे

---

1. पंचोली जगजीवनदास—जयसिंह, (अर्जदाश्त), 1712 ई, विल्स रिपोर्ट परिशिष्ठ।

एक बडी जागीर प्राप्त कर ली और देवली व राजोर (जो बाद मे माचेरी का भाग बने) बडगूजरों से छीन कर जयपुर राज्य मे मिला लिए[1]।

तनख्वाह, इनाम, व इजारे मे ली गई जागीरो का उपरोक्त वृत्तान्त पूर्ण नही है[2]। परन्तु इससे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार सवाई जयसिंह ने आंबेर राज्य का विस्तार किया। कई परगने धीरे-धीरे पूर्ण रूप से आंबेर राज्य का भाग बने। इसका कारण यह था कि पूरे परगने (दर-ओ-बस्त) जागीर मे नही दिए जाते थे और कुछ मौजे खालसा मे रख लिए, जाते थे। ये अन्य मनसबदारो को दे दिए जाते थे। इसलिए पूरा परगना प्राप्त करने मे विलम्ब होना स्वाभाविक था। इन इलाको को जयसिंह ने पहले इजारे पर लिया, और जब मुगल सरकार की स्थिति बिगडती चली गई तो इन्हे उसने आंबेर राज्य मे मिला लिया। इससे इन परगनो मे रहने वालो को लाभ ही हुआ, क्योकि बादशाही इलाको की अपेक्षा जयपुर राज्य मे कही अच्छा शासन-प्रबन्ध था, तथा शान्ति व व्यवस्था थी। बादशाही अफसर, इस आशका से कि उनसे जागीर लेकर उनका स्थानान्तर न कर दिया जाय, अपनी जागीरो से अधिकाधिक पैसा वसूल करने का प्रयत्न करते थे, चाहे किसानों को उससे कितनी ही अधिक हानि हो[3]।

१७२७ के बाद जयसिंह ने कई परगने, जो उसने इजारे पर लिए थे, पुनः दूसरो को इजारे पर दे दिए। परन्तु इन छोटे इजारदारो का अधिकार परगनो से राजस्व वसूल करने तक ही सीमित था। इन इजारे मे दिए गए परगनो मे प्रशासन-कार्य राज्य के अधिकारी ही करते थे। ये परगने बहुधा एक से तीन वर्ष के लिए इजारे पर दिये जाते थे। अधिकाश इजारदार व्यापारी वर्ग के थे यद्यपि कभी-कभी पटेल भी परगना अथवा कुछ मौजे इजारे पर ले लिया करते थे। इन इजारदारो को परगने की सभावित आय के अनुपात मे रुपया जमा कराना पड़ता था। जैसे १७२७ मे हरगोविन्द नाटाणी ने परगना वजीरपुर के गांवो को तीन वर्ष के ठेके पर लिया था और उसकी ओर से साहूकारो ने ४३, ३८४ रुपये १० आने, जो एक वर्ष की इजारा राशि थी, जमा करवाए थे। १७२९ मे विजयसिंह ने

1 उपरोक्त वृत्तान्त कपटद्वारा संग्रह में रखे परवानों की प्रतिलिपियों की सूची व विल्स रिपोर्ट, उनियारा (परिशिष्ट ए, पृ. 10), पंचानन सिंघाना, पृ. 12–13, सीकर, पृ. 15–20, पाटन पृ. 8, उनियारा पृ. 6, टॉड, 2, पृ. 295–96, व दीवान-ए-हजूरी दफ्तर के कुछ पत्रों पर आधारित है।

2. पूर्ण वृत्तान्त के लिए परवानों, फरमानों, वकील रिपोर्ट्स व अन्य कागजातों में तथा जयसिंह के समय के सभी परगनों के अडसट्टों में जागीर व इजारे मे लिए गए इलाको के बारे में विस्तृत खोजबीन की आवश्यकता है, जो इस पुस्तक के लिए आवश्यक नहीं है।

3. बादशाही अफसरो का अपनी जागीर व वहा के किसानों के प्रति दृष्टिकोण के लिए देखिए इर्फान हबीब, पृ. 319।

गोजगढ, टोडा, थाना, अजबगढ, पिडायण, अमरसर, खडेला, मनोहरपुर, जेतपुरा, नरेना व मौजाबाद के लिए १०,००,००० रुपया इजारे के रूप मे देने का कोल दिया। लिखतंग कागजातों मे समय-समय पर इस प्रकार जो परगने आदि इजारे पर दिए गए, उनका विवरण अ कित है। इससे ज्ञात होता है कि यह प्रथा बहुत प्रचलित थी। जयसिंह मुग़ल सरकार से परगने व मौजे इतनी बडी सख्या मे इजारे पर ले रहा था कि इन्हे पुनः दूसरो को इजारे पर देना ही सर्वोत्तम रास्ता था। जैसे ही इन पर राज्य का सीधा नियंत्रण सभव हुआ, उन्हे इजारे पर नही दिया गया। राजनीतिक स्थिति की अस्थिरता वढने, व मुग़ल साम्राज्य के तीव्र गति से टूटने के कारण जयसिंह ने जयपुर राज्य के निकट के परगनो को, जो उसने इजारे पर लिए थे, अपने राज्य मे मिला लिया।[1]

जैसे ऊपर कहा गया है, जो क्षेत्र इन इजारदारो को दिए जाते थे, उन पर प्रशासन राज्य का ही होता था। परन्तु ठिकानो (जैसे चौमू, अचरोल, ईसरदा, सरसोप, सीकर, डिग्गी आदि) मे राज्य के प्रशासकीय कर्मचारी नियुक्त नही किए जाते थे[2]। ठिकानो का प्रशासन ठाकुरो के हाथ मे ही रहता था। यद्यपि ठिकानो का कोई अलग राजनीतिक अस्तित्व नही था, और न ही वे अर्ध-स्वतत्र राज्यो की भाति थे, इनके आन्तरिक प्रशासन मे राज्य हस्तक्षेप नही करता था। इन ठिकानो के ठाकुर राजा के विरुद्ध मुग़ल बादशाह से शिकायत नही कर सकते थे। ठाकुरो को चाकरी करनी पडती थी, और राज्य की राजस्व व चु गी की दरे स्वीकार करनी पडती थी[3]।

राज्यो और मुग़ल सरकार के बीच सबधों के बारे मे अधिक विस्तार से लिखने की आवश्यकता नही है। १७०७ के बाद इन अर्ध-स्वतत्र राज्यो व मुगल सरकार के बीच सबंधो मे काफी अन्तर आ गया था। १७३० के बाद तो इन राज्यो पर मुगल सरकार का बहुत ही कम नियत्रण रह गया था। मुग़ल व्यवस्था मे जयपुर राज्य पाच मुगल सरकारो के अन्तर्गत आता था–मनोहरपुर, अमरसर, कासली और फतहपुर सरकार नागौर मे; खडेला, कोट बवाई, सिंघाना, झुन्झूनू आदि सरकार नारनोल मे; बसवा, देवती, नदावर आदि सरकार अलवर मे; चाटसू, लालसोट, मलारणा, निवाई आदि सरकार रणथम्भोर, व आबेर, जोबनेर,

1. उपरोक्त विवरण दीवान-ए-हजूरी मे रखे इकरारनामों पर आधारित है। विल्स रिपोर्ट, पंचपना–सिंहाना, पृ 13 भी देखिए।
2 यह इससे भी स्पष्ट है कि तत्कालीन कागजातों मे इन ठिकानों में राज्य के कर्मचारियो की नियुक्ति का उल्लेख नहीं मिलता है। परगने संबंधी कागजातों से भी यह सिद्ध होता है।
3. देखिए विल्स रिपोर्ट, सीकर, पृ. 26, चाकरी के लिए देखिए टॉड, (2, पृ. 356) द्वारा दी गई तालिका।

सांभर, मौजाबाद, लाम्बा आदि सरकार अजमेर मे[1]। अन्य राज्यों की भाति जयपुर राज्य का इलाका भी मुगल प्रान्तो के महालो की तरह समझा जाता था और मुग़ल साम्राज्य के बाहर इसका कोई अस्तित्व नही था[2]। इन वशपरम्परानुगत राज्यो को पूर्ण आन्तरिक स्वतत्रता थी। यद्यपि इनका शासन व्यवस्था मे मुगल शासन-व्यवस्था के अनेक तत्व मिलते है, परन्तु ये स्वेच्छा से स्वीकार किए गए थे। राज्य के शासक को पूर्ण न्यायिक अधिकार थे और ऐसा एक भी उदाहरण नही मिलता जबकि किसी दीवानी अथवा फौजदारी मुकद्मे मे राजा के निर्णय के विरुद्ध बादशाह से शिकायत की गई थी। परन्तु यह बात उन परगनो के लोगो के लिए लागू नही होती जो तनख्वाह, इजारा, अथवा इनाम मे मिले थे। परन्तु जब जयसिंह ने इन्हे अपने राज्य मे मिला लिया तो वहा उसका पूर्ण प्रशासकीय व न्यायिक नियत्रण स्थापित हो गया। उत्तराधिकार के मामले मे मुगल सरकार को अकारण ही व मनमाने ढग से हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नही था। जब भी मुगल सरकार ने इस प्रकार का प्रयत्न किया (जैसे १६७९ मे जोधपुर व १७०७ मे आंबेर के मामले मे) तो उसका कडा विरोध किया गया, और अंत मे उसे अपना निर्णय वापस लेना पडा। राजा की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी, जो बहुधा बडा पुत्र ही होता था, गद्दी पर बैठता। यदि वह राज्य मे ही होता तो बिना बादशाह से अनुमति व टीका प्राप्त किए ही उसे गद्दी पर बिठा दिया जाता था। टीका, जो इस बात का द्योतक होता था कि बादशाह ने उसके उत्तराधिकार को स्वीकार कर लिया है, बाद मे आता रहता। कई बार टीका कई महीने बाद पहुँचता था। राजपूत नरेशो का मुगल सरकार के साथ सीधा सम्पर्क रहता था। प्रान्तीय सूबेदारो के साथ उनका केवल यह सबध होता था कि वे सूबे के खजाने मे वार्षिक पेशकश जमा करते थे जिसकी राशि राज्य के राजस्व के अनुपात मे निश्चित की जाती थी[3]। परन्तु पेशकश जमा कराने मे यदि कोई भूल होती तो सूबेदार अपनी स्वेच्छा से राज्य के विरुद्ध कोई कार्यवाही नही कर सकता था।

इन राज्यो के मुगल सरकार के मातहत होने के कुछ स्पष्ट लक्षण थे। राजपूताने के सभी राजाओ ने मुगल सरकार से मनसबे स्वीकार की थी और इस प्रकार वे सभी मुगल सेवा मे थे। उन्हे वार्षिक पेशकश देनी पडती थी। सभी राज्यो को मुगल सरकार का सरक्षण प्राप्त होने के कारण कोई राज्य दूसरे राज्य से युद्ध अथवा सीमा उल्लघन नही कर सकता था। यद्यपि मुग़ल सरकार राज्यो को भूमि-

---

1 यह विभाजन आइन-ए-अकबरी मे दी गई 1594 मे अजमेर सूबे की सरकारों की सीमाओं के आधार पर किया गया है।

2. आंबेर और उसके आसपास के कुछ इलाके (दौसा, चाटसू) व परगना मोमिनाबाद सरकार अजमेर के अन्तर्गत थे।

3 पेशकश निर्धारित करने के बारे मे देखिए इर्फान हबीब, पृ. 184, टिप्पणी 7।

राजस्व के बारे मे कोई निर्देशन नही देती थी, परन्तु वह आबवाब वसूल करने की मनाही कर सकती थी। ये राज्य मुग़ल सरकार की धार्मिक नीति के प्रभाव-क्षेत्र मे भी आते थे, यद्यपि इन राज्यो की प्रजा को मुग़ल साम्राज्य मे ग़ैर मुस्लिमो की अपेक्षा अधिक धार्मिक स्वतन्त्रता रहती थी।

प्रमुख पदाधिकारी

अब हम सवाई जयसिंह के समय मे आबेर राज्य की शासन-व्यवस्था के बारे मे देखेगे।

राज्य मे सबसे बडा पदाधिकारी प्रधान या दीवान होता था, जो सारे प्रशासकीय विभागो के कार्य पर निगाह रखता था। सभी विभागो की आमद व खर्च का हिसाब, परगनो के राजस्व सबधी कागजात, बक्शी के महकमे के कागजात व परगनो मे नियुक्त आमिलो व फौजदारो की रिपोर्ट्स उसके पास पहुँचती थी। उसके दफ्तर, दीवान-ए-हजूरी, मे ये सब कागजात सुरक्षित रखे जाते थे। वह इन कागजातो के आधार पर राजा को राज्य की स्थिति से अवगत कराता था। वह जागीर सबधी कागजात राजा को पेश करता और आवश्यक कागजात, विशेषकर खजाने, खालसा, व जागीर सबधी स्वय निपटाता। उसकी कचहरी मे जागीर संबंधी झगडो व विभिन्न पदाधिकारियो की शिकायतो व प्रार्थनाओ पर विचार होता था। आमिलो द्वारा आय व खर्च के कागजातो की वह जॉच करवाता। राजनीतिक पत्र-व्यवहार भी उसके ज़िम्मे रहता था। दीवान के ही मार्फत खरीतो, परवानो व अर्जदाश्तो की नकले उसके दफ्तर मे रखी जाती थी, जो आज भी उपलब्ध है। उसके विस्तृत कार्यक्षेत्र का अनुमान उसके पास पहुँचने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के कागजातो से ज्ञात होता है। उसके दफ्तर मे रखे जाने वाले कागजात निम्न हैं—

१. खरीता व ड्राफ्ट खरीता
२. खतूत महाराजगान
३. खतूत दीवानान
४. खतूत अहलकारान
५. स्याह हकीकत
६. स्याह महाराजा
७. स्याह हजूर
८. स्याह वकाया
९. दस्तूर कोमवार
१०. चिठ्ठीयात खजाना
११. रोजनामा खजाना
१२. सफायत खजाना
१३. खजाना हजूर
१४. पु जा
१५. सीगा इमारत
१६. जागीर
१७. खर्च न्याग सभा
१८. स्याह अदालती
१९. नुस्खा उदक, इनाम
२०. खर्डा जमा खर्च खजाना

परगनों से उसके पास पहुँचने वाले कागजातो में निम्न प्रमुख थे—

१. निर्ख बाजार
२. रोजनामा पोतदार
३. दस्तूर-उल-अमल
४. अडसट्टा
५. बारात
६. मापाराहदारी, कोतवाली चबूतरा, व पुण्यार्थ सबधी कागजात
७. याददाश्ती बाकी हवालगी

बक्शी द्वारा भेजे जाने वाले कागजात—

१. जमा खर्च दाग घोड़ा मुलाजिम
२. रोजनामा दफ्तर बक्शी
३. सियाहा दफ्तर बक्शी
४. किलेजात
५. जमा खर्च फौज के, आदि

निम्न के स्याहा व आवारिजा दीवान के पास भेजे जाते थे—

१. तोशाखाना
२. कोषगृह
३. किरकिरी खाना
४. कोठ्यार हजूरी
५. कागज
६. पोथीखाना
७. रतनगृह
८. अवधगृह
९. अग्निगृह
१०. नगाडखाना
११. गुनीजनखाना
१२. रथखाना
१३. सिलेहखाना
१४. फीलखाना
१५. खसबोईखाना
१६. शतुरखाना
१७. रगखाना
१८. तावूलखाना
१९. जीनखाना
२०. पालकीखाना
२१. जरगरखाना
२२ शिकारखाना
२३. छापाखाना
२४ मशालखाना
२५. फर्राशखाना
२६. कारखाना पुन्य
२७. सुरतिखाना
२८. ख्यालखाना
२९. मोदीखाना
३०. बरफखाना
३१. रसोई[1]

1. उपरोक्त विभागो, कारखानो आदि के कागजात जयपुर राजकीय अभिलेख सग्रहालय, (बीकानेर) मे सुरक्षित हैं जिनका कुछ वर्णन जी. एन. शर्मा की 'ए बिबलियोग्राफी आव मिडाइवल राजस्थान' मे उपलब्ध है।

प्रमुख दीवान के कार्यो मे दीवान देश व दीवान हजूर उसकी सहायता करते थे। दीवान देश जागीर व परगना प्रशासन को देखता था। वह परगनो के अफसरों को राजस्व की दरे, बकाया की वसूली, परगनो के खजानो की जमा, खजाना हजूरी मे भेजी जाने वाली रकम, परगनो की कोई महत्वपूर्ण घटना आदि के बारे मे आवश्यक निर्देशन भेजता था। वह परगनो मे पहुँचने वाले बाहर के सामान व अनाज दबाने से सबधित निर्देशन भेजता था। वह खजाना देश व परगनो के खजानो की जमा व खर्च का सक्षिप्त ब्योरा तैयार करता और परगनो मे दौरे करके प्रमुख दीवान व राजा को परगनो की स्थिति से अवगत कराता। दीवान हजूर जागीरो व राजसी कारखानो का कार्य देखता था[1]।

दीवान के बाद दूसरा प्रमुख अफसर बक्शी होता था। वह सेना की भर्ती, रसद व अन्य आवश्यकताओ की देखभाल करता था। वह सैनिको का वेतन भी निश्चित करता था। सैनिको के कार्य मे त्रुटि होने पर वह उन्हे आवश्यक दड दे सकता था। निरीक्षण के लिए, अथवा बुलाने पर हाजिर न होने पर वह उनकी जागीर का पट्टा तक रद्द कर सकता था। बक्शी को उसके कार्यो मे बक्शी जागीर, बक्शी देश व बक्शी परगना सहायता करते थे। मुशरिफ जखीरा, दारोगा तोपखाना, तहवीलदार जखीरा आदि उसके मातहत होते थे। बक्शी अपने विभाग की आमद व खर्च का स्याहा व आवारिजा दीवान के पास भेजता था। किसी भी अभियान के व्यय का पूरा हिसाब भी दीवान के पास भेजा जाता था।

विभिन्न दीवान व बक्शी राज्य के उच्च श्रेणी के अफसरो मे थे और ये राजा व प्रमुख दीवान के सीधे नियन्त्रण मे कार्य करते थे[2]।

परगनों का प्रशासन

प्रशासन की सुविधा के लिए अन्य राज्यो की भाँति जयपुर राज्य भी परगनो मे बटा हुआ था। प्रत्येक परगने मे बीसियो मौजे (गाव) होते थे। मौजे दो प्रकार के होते थे : असली (पहले के) व दाखिली (नए वसे मौजे)। परगनो मे मौजो की सख्या घटती बढती रहती थी। उदाहरणार्थ १७१५ मे आवेर परगने मे ५०० मौजे थे और १७३७ मे ६६८ थे। यह वृद्धि मुख्यत: परगनो के निकट के प्रदेश को परगनो मे मिलाने से हुई थी। परगना प्रशासन सबधी तत्कालीन पत्रो से परगनो की शासन व्यवस्था के बारे मे हमे पर्याप्त जानकारी मिल जाती है।

---

1 दीवान हजूर व दीवान देश का विभिन्न कागजातों मे उल्लेख मिलता है जिनमे उनके कार्य आदि के बारे मे ज्ञात होता है। नरायनदास, (दीवान देश) व विद्याधर (दीवान हजूर) के इनाम व पुण्य जागीरो के बारे मे आमिलो के नाम कई पत्र भी मिलते हैं।

2 देखिए रोजनामा दफ्तर बक्शी कागजात, फिलेजात व फौज खर्च कागजात।

'तनखादार परगना' कागजातो से ज्ञात होता है कि परगना अधिकारियो की तीन श्रेणिया थी—अलुफदार, महीनदार व रोजीनदार। प्रथम श्रेणी मे केवल आमिल आते थे। दूसरी श्रेणी मे फौजदार, नायबफौजदार, कोतवाल, खुफिया-नवीस, पोतदार, तहवीलदार, मुशरिफ, आवारजा-नवीस, विभिन्न खजानो के दारोगा, वूतायत आदि होते थे। महीनदारो मे हाजरी-नवीस, चोबदार, निशानबरदार, दफतरबन्द, दफतरी आदि भी होते थे जो नीची श्रेणी के कर्मचारी होते थे। रोजिनदारो मे साधारण मजदूर व नौकर आदि थे जिन्हे वेतन प्रतिदिन मिलता था। आमिल, कोतवाल व खुफियानवीस प्रत्येक परगने मे नियुक्त किए जाते थे, परन्तु अन्य अफसर परगने की आवश्यकतानुसार नियुक्त किए जाते थे।

तत्कालीन कागजातो से ज्ञात होता है कि परगने मे आमिल को सबसे अधिक वेतन मिलता था। सवाई जयसिह के समय मे जबकि पोतदार, कोतवाल, खुफियानवीस आदि को १२ से ३० रुपये प्रतिमाह तक वेतन मिलता था, आमिलो का वार्षिक वेतन १२०० से १५०० रुपये अथवा १०० से १२५ रुपये प्रतिमाह था[1]। आमिल का मुख्य कार्य परगने मे राजस्व की वसूली करना था। भूमि राजस्व की दरे लागू करने व वसूली मे अमीन, कानूनगो, पटेल, पटवारी आदि उसकी सहायता करते थे। आमिल को कई मद के कागजात व हिसाब रखने पडते थे। जैसे रबी व खरीफ की फसलो मे राजस्व की दरे (दस्तूर अमल), जमा व हासिल (जब्ती व जिनसी दोनो प्रकार से), इजारे मे दी गई भूमि की नगद जमा, सायर, चुगी आदि से प्राप्त हासिल, मोहर, सोना व चादी से लेकर दाले, तेल, गुड, शक्कर आदि तक के प्रतिदिन के बाजार भाव (निर्खबाजार), जमा-खर्च खजाना (परगने का), परगने का रोजनामा, अडसट्टा आदि। आमिल के अन्य प्रमुख कार्यो मे किसानो के हितो का ध्यान रखना, परगने मे कृषि को बढाना, सूखा पडने पर तकावी बाटना आदि थे। वह अपनी कचहरी मे दीवानी व फौजदारी मामले सुनता, पटेल व पटवारियो की शिकायतो और विवाह सबधी झगडे भी सुनता, जिनकी पचायतो मे पहले ही सुनवाई हो चुकी होती थी। स्याहखुफिया कागजातो से ज्ञात होता है कि खुफियानवीस अपनी रिपोर्ट मे इसका अवश्य उल्लेख करते थे कि आमिल ने कचहरी मे मुकद्मे सुने अथवा नही।

अब हम परगने के अन्य अधिकारियो के बारे मे सक्षेप मे देखेगे। पोतदार परगने के खजाने का खजाची होता था। वह परगना खजाने मे आमद व खर्च का

---

1. परगनो मे नियुक्त पदाधिकारियों के बारे मे उपरोक्त विवरण निवाई, चाटसू, टोडाभीम, टोडा रायसिंह, नारनोल, बहात्री, मलारणा के तनखादार परगनावती कागजातो व परगना खोरी की याददाश्त, ज. आ पर आधारित है। पदाधिकारियो के पद बहुधा उसी भाति लिखे गए है जैसे समकालीन कागजातो मे दिए गए है।

हिसाब रखता था। उसका मासिक वेतन १२ से २८ रुपये तक होता था। यद्यपि लगभग सभी परगनो मे कोतवालो का उल्लेख मिलता है तथापि फौजदार कुछ ही परगनो मे नियुक्त किए गए थे। फौजदार नायव-फौजदार व थानेदार की भी नियुक्ति करते थे। थानेदार थाने का अधिकारी होता था। फौजदारो व नायब-फौजदारो का प्रमुख कार्य अपने क्षेत्र मे शान्ति व व्यवस्था बनाए रखना था। आवश्यकता पडने पर वे राजस्व वसूल करने मे आमिलो की भी सहायता करते थे। तत्कालीन पत्रो से ज्ञात होता है कि फौजदारो को फौजदारी अधिकार प्राप्त थे और वे चोरी, डकेती, व्यभिचार व उपद्रव करने के अपराधो की जॉच कर अपराधियो को दण्ड दे सकते थे। वास्तव मे कानून व व्यवस्था बनाए रखने के कार्य मे आमिल व फौजदारो के अधिकार स्पष्ट रूप से बटे हुए नही थे, क्योकि आमिल भी फौजदारी मुकद्दमो मे दण्ड दे सकते थे। कोतवाल का मुख्य कार्य कस्बो मे कानून व व्यवस्था बनाए रखना था। कोतवाल नकली बाट, तोल, व खाद्यान्न के सचय करने पर नियत्रण रखते थे। कोतवाली चौत्रे पर सायर जिहात वसूल किए जाते थे। प्रत्येक परगने मे एक खुफिया-नवीस रखा जाता था जो परगनो के प्रशासन व अन्य समाचार दीवान के पास भेजता था। खुफियानवीसो के बारे मे पर्याप्त विवरण आगे दिया गया है।

परगनो मे जिन अन्य कर्मचारियो का उल्लेख मिलता है उनमे अवारजानवीस, हाजरीनवीस, रोजनामानवीस, निशानवरदार, मुहर्रिर, तहवीलदार, मुशरिफ, दारोगा आदि प्रमुख है[1]। प्रत्येक परगने मे एक दफ्तर होता था (दफ्तर परगना) जिसमे आमिल, पोतदार व अन्य कर्मचारी बैठते थे और वही पर उनके कार्य सबधी कागजात रखे जाते थे। इन कागजातो का विशाल सग्रह राजस्थान राज्य आर्काइव्ज, बीकानेर, मे सुरक्षित है। इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जयसिंह के समय मे जयपुर राज्य मे परगना स्तर पर शासन प्रबन्ध बहुत सुव्यवस्थित था।

भूमि-राजस्व

भूमि राजस्व (माल जिहाती अथवा माल-ओ-जिहात) राज्य की आय का सबसे प्रमुख साधन था। यह अडसट्टो मे भूमि राजस्व की 'जमा' के आकडो से स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि सवाई जयसिंह के समय मे विभिन्न साधनो से होने

---

1. आमिल व अन्य पदाधिकारियो के कार्य व अधिकार क्षेत्र के बारे मे बिखरी हुई जानकारी राजस्व संबंधी पत्रों, दीवानो के आदेश, स्याह अदालती कागजात, स्याह खुफिया कागजात, आदि मे मिलती है। राजपूत राज्यो मे आमिल, फौजदार, कोतवाल आदि के कार्य व अधिकार क्षेत्र मुगल शासन व्यवस्था मे आमिल, फौजदार आदि से बहुत मिलते जुलते थे यद्यपि इन राज्यो की सीमित व विशिष्ट आवश्यकताओ के कारण थोडा बहुत अन्तर होना स्वाभाविक था।

वाली आय के आकडे उपलब्ध नही हो सके है, परन्तु १८०० ई० के आंकड़ो की तालिका से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। जयसिंह के समय मे भूमि राजस्व से राज्य की आय कही अधिक रही होगी क्योकि १८०० ई० तक अनेक इलाके जो जयसिंह के समय मे जयपुर राज्य मे थे, अब अलग हो चुके थे, और १७४८ के बाद दीर्घ-काल तक राज्य मे अराजकता की स्थिति रही थी।

जयसिंह के समय मे जयपुर राज्य की भूमि राजस्व व्यवस्था के अध्ययन मे एक कठिनाई यह है कि इस सबध मे आवश्यक आंकड़े केवल खालसा भूमि व राज्य द्वारा इजारे पर ली गई भूमि के बारे मे ही उपलब्ध है, जागीर, इजारे मे दी गई भूमि, व इनाम आदि मे दी गई भूमि के बारे मे नही। दूसरे, राज्य के कई क्षेत्रो मे भूमि कभी राज्य के पास और कभी इजारे पर रही, और उसका स्वामित्व बदलता रहा। राजस्व व्यवस्था के अध्ययन मे इस कारण कठिनाई होना स्वाभाविक है।

दस्तूर-उल-अमल व अडसट्टो से यह स्पष्ट है कि एक ही परगने मे ज़ब्ती (नाप कर), बटाई (उपज का निश्चित भाग लेना), व कनकूंत प्रणालिया चलती थी। सन, कपास, नील, तम्बाकू, अफीम, गुदगरीन् आदि फसलो पर राजस्व ज़ब्ती प्रणाली द्वारा निश्चित किया जाता था और नगदी मे वसूल किया जाता था। परन्तु अन्य वस्तुओ की उपज मे कृषक को जब्ती अथवा जिनसी, किसी भी भाति राजस्व तय करवाने की स्वतत्रता थी। जब कृषक को लगता कि कूंत से राजस्व अधिक तय हो गया है, तो वह लटाई द्वारा राजस्व निश्चित करवा सकता था।

जब्ती-प्रणाली मे विभिन्न फसलो पर प्रति बीघा राजस्व की दरे दस्तूर-उल-अमल मे दर्ज कर दी जाती थी। दर निश्चित करते समय उस क्षेत्र मे बाज़ार-भाव व भूमि की उत्पादन-क्षमता आदि का ध्यान रखा जाता था। रबी व खरीफ़ की फसलो के अलग-अलग दस्तूर प्रतिवर्ष फ़सल के लगभग अंत मे बनाए जाते थे। इस कारण दस्तूर मे दरें प्रतिवर्ष बदलती रहती थी। फिर अलग-अलग परगनो के अलग-अलग दस्तूर होते थे, क्योकि विभिन्न परगनो मे प्रति बीघा उपज व वस्तुओ के बाजार भाव भिन्न होते थे। हमे लगातार कई वर्षों के दस्तूर न मिलने के कारण प्रति बीघा राजस्व की दरे व वस्तुओ के मूल्यो मे उतार-चढाव की प्रवृत्तियो के बारे मे पर्याप्त जानकारी नही है। परन्तु यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस्व कृत्रिम रूप से बढ़ाई हुई जमा के स्थान पर उपज—क्षमता व भावो को ध्यान मे रख कर निश्चित किया जाता था।

तत्कालीन कागजातो से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि राजस्व दर निश्चित करते समय भूमि की किस्म (पीवल-पहली अथवा पाछिली, रामी धरती, बंजर आदि), सिंचाई का साधन (नदी, नहर, कुआ, चरसवाला कुआ, बावडी, वर्षा), ज़मीन की स्थिति (माचिल, पेडी आदि) बोई गई फसल, व भूमि पर मलिकयत को

ध्यान मे रख कर निश्चित की जाती थी। कागजातो से यह भी स्पष्ट होता है कि राजस्व की दरें रैयत, पटेल, पटवारी व कानूनगो के लिए भिन्न-भिन्न थी। पटेल, पटवारी आदि के लिए राजस्व की दरें कम थी। बँटाई मे राजस्व की दरो मे कम हेर फेर था और बहुधा राज्य के हिस्से का अनुपात भूमि की किस्म अथवा उपज आदि को ध्यान मे रखे विना ही निश्चित कर दिया जाता था। बहुधा राजस्व व अन्य कर, व कानूनगो, पटेल, चौधरी, पटवारी आदि का हिस्सा देने के बाद, किसान के पास उपज का २/५ भाग ही रह पाता था।

उपरोक्त तथ्य कस्बा सागानेर के १४ जमादिउस्सानी १११४ हि० के खरीफ फस्ल के दस्तूर से स्पष्ट हो जावेंगे।

प्रति बीघा जब्ती दरें—सन १।), मेहदी खूंटा १।।।); तम्बाकू ४।।); नील नंती ४।।), नील जेठी किस्म १।।।); सावनी ककडी, करेला, टिडा, शकरकन्दी आदि १।) जब सिंचाई नदी से हुई, और १) प्रति बीघा जब कुए से सिंचाई हुई, पान ७) गुदगरीन (गन्ना) ७), कपास (पीवल) २।); कपास (पीवल दूसरी श्रेणी) २), कपास (सिंचाई जब नदी अथवा कुए से) १।।); मक्का, ज्वारी १।।।); मेथी, मूली, तोरई, बेंगन, तरकारी आदि २)। दस्तूर मे लिखा है कि यदि किसी वस्तु का दस्तूर मे उल्लेख नही है तो हाकिम प्रति बीघा राजस्व की दर निश्चित करे।

इसी भांति परगना सन्नेरी के सं० १७६५ के खरीफ फसल के 'बटाई तोल ३०' की दरें इस प्रकार मिलती है—रैयत से वर्षा से सिंची उपज पर आधा; पुराने कुओं से सिंची भूमि से १।३, नए कुए से सिंची भूमि पर १।४, पटेल से १।३; कानूनगो से १।४; राजपूतो से १।३; मीणा गूजर से २।५ आदि[1]। कुल सभावित उपज व सभावित राजस्व (जमा) के आकडे अडसट्टो मे दर्ज कर लिए जाते थे। कागजातों से ज्ञात होता है कि राजस्व का बडा भाग उपज के रूप मे (जिनसी) प्राप्त होता था। जो जिनसी प्राप्त होती थी उसका कुछ भाग तो परगने मे ही व्यापारियो को बेच दिया जाता था (बिचोती) और बाकी का अम्बारो मे भर दिया जाता था। जिनसी बडी मात्रा मे प्राप्त होती थी इसका प्रमाण १७३६ ई० के एक पत्र मे मिलता है। इसमे लिखा है कि मराठो के मुकुंदरा पर आने का समाचार मिलते ही सरकारी हाकिमो ने २०,००० मन जिनसी तुरन्त बेच दी और ६००० मन अनाज, जो पटेलो के पास था, वह भी बिकवा दिया[2]।

जैसा कि अडसट्टो से ज्ञात होता है, किसान रूई, तम्बाकू, मेहदी, नील, गन्ना, दालें, चोला, मोठ, मूंग, उर्द, निरणी, गेहूँ, अजवाइन आदि की फसलो पर

---

1. उपरोक्त वृत्तान्त कस्बा सागानेर के सं. 1760 व सनेरी के सं 1765 के दस्तूर-उल-अमल पर आधारित है। इनके अलावा टॉड 2, पृ 429, 433–34 व सं 1659 के कोटा के दोवर्की कागजात, वस्ता नं 20, (बीकानेर) भी इस वृत्तान्त के लिए प्रयुक्त किए गए है।
2. फाल्गुन सुदी 15 सं 1796 (1748 ई) आबेर कागजात (बीकानेर) का एक अपूर्ण पत्र।

जब्ती के अनुसार राजस्व देना पसन्द करते थे और बाजरा, ज्वार, मक्का, जौ, चना आदि की फसलों पर बटाई द्वारा[1]। छोटे किसान बहुधा बटाई पसन्द करते थे क्योंकि एक तो यदि उनके पास साल भर की जरूरत का अनाज बच जाता तो वे उससे सन्तुष्ट रहते थे, और दूसरे बटाई मे सूखा पडने अथवा कोई अन्य प्राकृतिक बाधा पडने पर सरकार उसकी हानि बराबर बटाती थी।

यद्यपि कागजातो मे गाव मे काश्त की गई भूमि का क्षेत्रफल, व प्रत्येक गाव से 'हासिल' के आकडे मिलते है, इनमे कोई सशय नहीं कि किसानो की भूमि का राजस्व अलग-अलग निकाला जाता था। परन्तु जब गाव इजारे पर दे दिए जाते थे तो पूरे गाव से राजस्व की एक निश्चित राशि ली जाती थी। कृषको की भूमि पर अलग अलग राजस्व भार निकालने मे पटेल, पटवारी, कानूनगो व चौधरी आमिल की सहायता करते थे। इसके एवज मे उन्हे उपज का कुछ हिस्सा व जमीन मिलती थी। चौधरियो को जो भूमि दी जाती थी वह नानकार, पटवारी को दी गई भूमि विरसा, व पटेल को मिली भूमि विसोध कहलाती थी। इसके अलावा इन्हे गांव के हासिल मे से 'दस्तूर' के प्रति मण चौथाई सेर अनाज मिल जाता था[2]।

कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए नई जोत मे लाई गई भूमि व नए कुओ से सिंचित भूमि की उपज पर भूमि राजस्व की दरें कम रखी जाती थी। जगल काट कर जो भूमि कृषि योग्य बनाई जाती थी, उस पर कुछ वर्ष तक राजस्व माफ कर दिया जाता था। पटेलो से सबधित कागजातो से ज्ञात होता है कि उनका एक प्रमुख कर्तव्य विशेष सुविधाए दिलवाने का आश्वासन देकर नए काश्तकारो को अपने क्षेत्रो मे बसाना था। आमिल व जागीरदारो को परगने मे शान्ति व व्यवस्था बनाए रखने को कहा जाता था जिससे कि काश्तकार परगना छोडकर न जाए और परगने के हासिल मे कमी न आए। सूखा पडने पर राज्य कर्मचारी काश्तकारो को रोजगार देते, और राजस्व माफ कर दिया जाता था। १७३२ ई० के एक कागज़ मे सूखा पडने पर कमजोर व अपाहिजो को मुफ्त अनाज देने और स्वस्थ काश्तकारो को मजदूरी के एवज मे प्रति व्यक्ति एक सेर (२८ टके तोल का) चना, मोठ, बाजरा, ज्वार, इनमे से जो भी सस्ता हो, प्रतिदिन दिए जाने के आदेश मिलते है[3]। पटेलो की सिफारिश पर कृषि के लिए ऋण भी दिए जाते थे। जब राज्य सरकार द्वारा उनकी सिफारिश स्वीकार कर ली जाती, तो ऋण की राशि उन्ही की मार्फ़त वितरित की जाती थी।

---

1 इस विषय पर विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए निरख मडी के कागजात, ज. आ.।

2. इनके लिए देखिए दस्तूर व स्याह अदालती कागजात (सं. 1787) व याददाश्ती परदाख्ती, परगना मलर (स 1812)।

3. दीवान नारायणदास किरपाराम—विद्याधर, कार्तिक सुदी 1 सं 1789, ज. आ।

भूमि राजस्व के अलावा किसानो को कुछ अन्य कर भी देने पडते थे जैसे हालोती (प्रति हल पर), मवेशियो पर कर, घास चराई (५ टका प्रति भैंस, २ टका प्रति गाय, ६ टका प्रति १०० भेड या बकरी का), अनाज, लकडी, घास से लदी गाडियो पर कर जो बाजार मे बिकने आती थी, और कानूनगो, पटवारी, पटेल की भेंट आदि। इन सबने किसान पर आर्थिक भार बढना स्वाभाविक था।

अरहट्टे, दस्तूर, विभिन्न परगनो व कस्बो के निर्ख बाजार से हमे कृषको की फसल चुनने की प्रवृत्ति के बारे मे महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। सक्षेप मे खरीफ की फसल मे प्रमुख रूप से मक्का, ज्वार, गुदगरीन, तिल, मोठ, ग्वार, उर्द, मू ग, चौला, कपास, नील, तम्बाकू व सन आदि बोए जाते थे। जैसा हम पहले लिख चुके हैं, इनमे से गन्ना, नील, तम्बाकू व सन आदि पैसे वाली फसले थी। रबी मे मुख्य रूप से गेहूँ, जौ, चना, बेजड, गोजऊ, गोचनी, सरसो, अजवाइन, धनिया, अरहर आदि बोए जाते थे। गेहू, चना, जौ की उपज पर कृषक बहुधा बटाई द्वारा राजस्व देना पसन्द करते थे। पिछले दिनो जयपुर राज्य के निकटवर्ती चार परगनो (सवाई जयपुर, मलारणा, बहात्री, व चाटसू) मे कई वर्ष के विभिन्न फसलो से प्राप्त राजस्व के आंकडो के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि खरीफ के मौसम मे जब्ती फसलो की (जयपुर, बहात्री व चाटसू मे गेहूँ; चाटसू व मलारणा मे कपास व इन चारो परगनो मे चौले की) काश्त बढी और बाजरा व दालो की काश्त मे कमी हुई।[1] कृषको द्वारा जब्ती फसलो की अधिक काश्त करना महत्वपूर्ण था क्योकि इससे ज्ञात होता है कि मुद्रा-प्रणाली के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण बन रहा था।

सायर जिहात

अन्य राज्यो की भाति जयपुर मे भी वस्तुओ के विक्रय, उन्हे बाजार मे बेचने के लिए लाने पर कर, चु गी, राहदारी आदि ली जाती थी। इनके अलावा विभिन्न व्यवसायो पर भी 'फरोही' ली जाती थी। कुछ विशेष त्योहारो पर विभिन्न जातियो के लोगों को कुछ दाम अथवा टके देने पडते थे। इन सब को 'सायर जहाती' (सायर जिहात) कहते थे। यदि इनका वितरण इस प्रकार हो कि किसी एक वर्ग पर इनका अनावश्यक भार न पडे तो राज्य द्वारा इन्हे लेने मे कोई हानि नही है। यह अनुचित होता है कि कर का भार मुख्य रूप से किसान ही वहन करते और दलाल, तेली, कलाल, रगरेज व थोक तथा खुदरा व्यापारी व ठेकेदार कर के भार से बचे रहते। इनमे से अनेक कर, महसूल आदि जो "शरा" के विरुद्ध थे और "आबवाब" कहलाते थे, मुगल बादशाहो ने बार-बार बन्द किए थे, परन्तु

---

1. प्रो इडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1966, पृ. 247-48 देखिए।

ऐसा करने मे उन्हे आंशिक सफलता ही मिली थी[1]। इन करो व चुंगी, महसूल आदि की दरे भिन्न-भिन्न परगनो मे भिन्न-भिन्न थी, और न ही ये स्थायी थी।

यद्यपि सायर जिहात के बारे मे काफी जानकारी उपलब्ध है परन्तु यहा उनका सक्षेप मे ही उल्लेख करना सभव है। निम्न वृत्तान्त मे इनकी जो दरे दी गई है वे परगना सन्नेरी के स० १७६५ के दस्तूर, कस्बा सागानेर के स० १७६० के दस्तूर, वि स० १७८४ के 'सफायत खजाना' के 'रोजनामचा चोत्रा ड्योढी बाजार जयपुर' पर आधारित है। ये दरे जिहात की आम दरो के बारे मे काफी सही अनुमान दे सकेगी।

वस्तुओ के उत्पादन व विक्रय पर ली जाने वाली चुगी; कलाडी (कलालो से) प० सन्नेरी मे माह मे १० टका प्रति भट्टी; घाणी (प्रति घाणी, खली पर भी), छापा (कपडा छपाई पर, दर कपडे की किस्म के अनुसार, जैसे सागानेर मे इकतारा, मलमल, तनसुख, व खासो के प्रति थान पर १ टका १६ १।२ दाम; घाघरा मेहर के प्रति थान कपडे पर २५ दाम, वाछायत व छीपो द्वारा छपा हुआ कपडा बेचने के लिए लाए गए कपड़े पर १२ १।२ दाम प्रति रुपये मूल्य के कपड़े पर); तरकारी भाजी पर चुगी (बैलगाडी, गाडा चौखडी, भार अथवा पोट, बैल अथवा घोडे पर भार की भिन्न दरे व विभिन्न तरकारियो की विभिन्न दरें); कुम्हार द्वारा बेचने के लिए लाए गए मिट्टी के बर्तन (प्रति भार ८ दाम सागानेर मे), चारा, खाखला, पाला, कडबी, (१ टका २५ दाम प्रति गाड़ी वाछाइत से, व १ टका प्रति गाडी गाव से आने वाली बैलगाडी पर), कोयला (१ टका २५ दाम प्रति गाडी वाछाइत से, ८ दाम प्रति भार, १२ १।२ दाम प्रति बैल), रसोई के लिए ईंधन (१ टका प्रति गाडी); पत्थर (६ दाम प्रति गाडी सागानेर मे); चमडा (९ टका प्रति पट्टी)। चमड़े का काम करने वालो से अघोडी नामक कर भी लिया जाता था। लोहे के बर्तनो व अन्य चीजो पर तथा कुम्हारो के उपयोग की चिकनी मिट्टी पर साधारण चुगी थी।

चावल, खाड, गुड, घी, तेल, बाजरा, मोठ, ज्वार, आदि पर व किराना (मिर्च, लोग, केसर, कपूर, हल्दी, अजवाईन आदि) पर १२ १।२ दाम से १ टके तक प्रति रुपये की बिक्री पर व ३७ १।२ दाम प्रति रुपये नमक की बिक्री पर। सूत, बान, मूज (१–२ पीडी प्रति भार), २ कौडी प्रति जेवडी (रस्सी), व ६ दाम प्रति चरखा। अठवाडे मे ऊट घोडे, बैल, बकरी (१ टका प्रति बकरी या भेड) की बिक्री पर; पेडो की बिक्री पर चुगी, व पान की पत्ती पर (प्रति १००० पत्तियो के

---

1 मुगल बादशाहो की 'आबवाबों' को बंद करने मे असफलता के लिए देखिए सरकार, 'मुगल एडमिनिस्ट्रेशन' पृ. 77–80, इर्फान हबीब, पृ. 66 व नोट 25, 26, पृ 67 व नोट 35, पृ 68 व नोट 36। आषाढ बदि 1, स 1790 (1733 ई.) को प्र. निवाई मे 1 रुपये के 14 टके का भाव था।

के हिसाब से); कपडे के दलालो से १ टका २० थान की दलाली पर, "वर्दा फरोसी" पर (लडके, लड़की के मूल्य का चौथाई), नरडी या चामडी (जूते बनाने वालो व चमडे की पट्टिया तैयार करने वालो पर)।

दलालो से विभिन्न वस्तुओ की दलाली पर भिन्न-भिन्न दर से जिहात लिया जाता था। हठवाड़े मे बैठने वाले पिनारो, छीपा, सुनार, कुम्हार, रगरेज, तम्बाकू बेचने वाले, मोची आदि से दुकान जमाकर बैठने की अलग-अलग दरे थी। जैसे पिनारो से एक दिन के १२-२५ दाम तक लिए जाते थे। रगरेज, छीपा आदि से १२½ दाम, तम्बाकू बेचने वाले से ६ दाम। एक आदेश मे लिखा है कि हाट की स्थिति देखकर दरे तय की जाए।

बाजार मे जो अनाज, किराना, तेल, गुड, शक्कर आदि थोक मे बिकते थे, उन पर हासिल तुलाई ली जाती थी। इसकी दर भिन्न वस्तुओ के लिए अलग थी। भैसबराड व छालीबराड प्रति भैस व बकरी पर लिए जाते थे। बैसख सारे गाव से सामूहिक चारागाह पर लिया जाने वाला कर था। ऊट व ऊट-गाड़ियां भाडे पर देने पर भी कुछ दाम लिए जाते थे। जो वस्तुए बाहर के गाँवो से लाई जाती थी उन पर प्रति गाडी व बोल राहदारी ली जाती थी। जैसे परगना सनेरी मे नमक के १०० बोल पर एक रुपया, गुड के प्रति बोल पर १२½ दाम, तम्बाकू के प्रति बोल पर १ टका, किराना के प्रति बोल पर १२½ दाम। साहूकारो से हुंडी पर हुडवी ली जाती थी और इसी भाँति मुख्तार अर्जीनवीसो से।

कुछ त्योहारो पर समाज के कई वर्गो से "लाग" भी ली जाती थी। दिवाली के दिन शहर व कस्बो आदि मे रोशनी के लिए प्रत्येक घानी से एक सेर तेल लिया जाता था। "त्यौहारी" के सुनार, खटीक, चमार, रैगर, पनीगर, कोली, मेवाती, खाती, जाट, पटावा, भरावा, कुम्हार, कलाल, मणियार, माली, ठठेरा, दर्जी, काछी, अहीर, राठडा व भडभूंजा से प्रति परिवार १ टका २५ दाम दीवाली पर, २५ दाम होली पर व २५ दाम राखी पर लिए जाते थे। खटीक, रैगर, चमार, तेली, कोली, कुम्हार, पिनारा, राठडा, नीलगर, मणियार, पनीगर, न्यारा, परिवारो से सगाई पर टका, व लडकी के विवाह पर बनिया, छीपा, माली, मेवाती, तेली, राठडा, कोली, खाती, तम्बोली, सुनार, भरावा, ठठेरा, दर्जी, छीपा, कलाल, भडभूजा, नीलगर, मणियार, पिनारा, खटीक, कागदी, चमार, रैगर, न्यारा से २ टके ४ कासा लिए जाते थे। ब्राह्मणो को छोडकर अन्य लोगो से विधवा के विवाह पर या "नाता" अथवा "कागडी" करने पर कुछ टके लिए जाते थे। "घरेचा" या "घरिजना" (किसी स्त्री को बिना विधिवत विवाह के रखना) के कोली, चमार, बलाई, छीपा, जाट व गूजरो से २ रुपया व धोबी से १ रुपया लिया जाता था।

कुछ अन्य कर व शुल्क सुगन भेट, जफायत, कामखीद, आमदनी राहपानी आदि थे। इनमे से अधिकाश कर, चुगी, अथवा शुल्क अन्य राजपूत राज्यो मे भी लिए जाते थे और मुगल साम्राज्य के बड़े भाग मे शाही आज्ञा के विरुद्ध लिए जाते रहे। परन्तु जैसा उपरोक्त वृत्तान्त से स्पष्ट है, जयपुर राज्य मे करो के भार का वितरण इस प्रकार था कि किसी भी वर्ग पर इनका अधिक बोझ नही था।

जागीर, राजस्व अनुदान

सर्व प्रथम हम चौमूं, कासली आदि ठिकानो, उनकी शाखाओ, व शेखावाटी के ठिकानो की जयपुर राज्य के प्रशासनतत्र मे स्थिति देखेगे। ठाकुरो को सीमित आंतरिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। राज्य को ठाकुरो की सेवा प्राप्त करने व उनके ठिकानो का राजस्व कूतने का अधिकार था[1], यद्यपि बाद मे ठिकाने राजस्व के क्षेत्र मे राज्य के नियंत्रण से मुक्त हो गए। ठिकानेदार व जागीरदार अपने कामदारो द्वारा और अपने ढंग से राजस्व वसूल करते थे जो मोटेतौर से राज्य मे राजस्व वसूली के लिए निर्धारित सिद्धान्तो के अन्तर्गत होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि राजस्व के आंकने में वे बंटाई प्रणाली का ही उपयोग करते थे क्योकि जब्ती व्यवस्था मे उपज, कीमत आदि के विस्तृत आकड़े रखने पडते थे और इस कार्य मे काफी व्यय होता था। जिनके पास बडी जागीरे (तनख्वाह के एवज मे) होती थी, वे कुछ भूमि-खड अन्य लोगो को वेतन व सेवा के एवज मे दे देते थे[2]। ठाकुरो व जागीरदारो का मुगल सरकार से कोई सम्पर्क नही रहता था, यद्यपि कभी-कभी राजा की सिफारिश पर कुछ ठिकानेदारो को मनसब मिल जाती थी। ठाकुरो को उनके ठिकानो मे से गुजरने वाले व्यापारियो, बजारो आदि को सुरक्षा प्रदान करनी पडती थी। वे अपने ठिकाने की प्रजा को नही सता सकते थे। उन्हे वर्ष मे निश्चित अवधि के लिए दरबार मे प्रस्तुत रहना पडता था और बुलाने पर पूर्व निश्चित संख्या मे सवार लाने पडते थे। यदि वे काश्तकारो के साथ अन्याय करते तो राज्य की ओर से उन्हे चेतावनी दी जा सकती थी, और राजा की अवज्ञा करने अथवा किसी प्रकार की अनधिकृत चेष्टा अथवा आपत्तिजनक आचरण व व्यवहार के लिए उन्हे दंड दिया जा सकता था। चाकरी मे कोई बडी त्रुटि अथवा कमी पर उनका पट्टा तक भी रद्द किया जा सकता था। ठाकुर व जागीरदार राज्य को प्रति वर्ष निश्चित राशि देते थे और ठाकुर की मृत्यु पर उसका उत्तराधिकारी राजा को नजराना देता था (जो ठिकाने के राजस्व का १।७वा हिस्सा होता था)। नजराना दिए जाने के बाद राजा ठिकाने के पट्टे को उसके नाम कर देता था। यद्यपि ऐसे उदाहरण मिलते हैं जबकि देशद्रोह अथवा चाकरी मे कोई बडी भूल पर ठिकाने

1. [illegible] रिपोर्ट, सीकर, पृ 46।
2. [illegible] राजा की आज्ञा के जागीर पीढी दर पीढी नहीं दे सकते थे।

अथवा जागीर का पट्टा रद्द कर दिया गया, परन्तु यथासभव ऐसा नही किया जाता था और ठिकाना एक ही कुल मे कई पीढियो तक रहता था।[1]

अब हम दूसरी प्रकार की जागीरो के बारे मे देखेंगे। इनमें पुण्य ऊदक, भोग, अलूफाती, भोम व तनखा जागीर मुख्य है। पुण्य ऊदक व भोग पुण्य स्वरूप ब्राह्मणो, मदिरो, पुजारियो तथा महन्तो को दी जाती थी। ये एक प्रकार से केवल भूमि राजस्व का ही अनुदान थी। १७३७ के एक आदेश मे ब्राह्मणो व ठाकरद्वारो को छोडकर अन्य लोगो के पास की पुण्य जागीरो के जब्त किए जाने का उल्लेख मिलता है। ये अनुदान पीढी दर पीढी अथवा चिरकाल तक के लिए दिए जाते थे, और प्राप्तकर्त्ता को भूमि खड से प्राप्त राजस्व मे से राज्य को कुछ भी नही देना पडता था, और न ही उसके साथ किसी प्रकार की सेवा की शर्त होती थी। पुण्यऊदक व भोग जागीरो मे रैयत के अधिकार पूर्ववत् बने रहते थे। ये जागीरें कुछ बीघा जमीन से लेकर एक या कुछ गावो तक भी बडी होती थी। अलूफाती जागीर राज्य परिवार की स्त्रियों को जीवनकाल मे उनके व्यय के लिए दी जाती थी। छोटे भूमिखड, जो पुश्तैनी तौर पर भूमियो को नाममात्र के भाड़े पर (भोम-बराड) दिए जाते थे, भोम कहलाते थे। भोम राज्य की सेवा करने, अथवा प्राप्तकर्त्ता के पूर्वजो द्वारा की गई सेवा, के उपलक्ष मे दी जाती थी। भूमिया व उसके वशज भोम की आय के हकदार होते थे। कई बार भोम के साथ कुछ विशेषाधिकार भी दे दिए जाते थे, जैसे गांव मे प्रतिमन अनाज मे से एक सेर, अथवा प्रत्येक विवाह पर कुछ पत्तल। क्योकि भूमिये की मृत्यु के बाद भोम उसकी सतान मे बराबर-बराबर बट जाती थी, इस कारण बहुत से भूमियो के पास बहुत छोटे भूमि-खड भोम के रूप मे रहते थे। युद्ध के समय भूमिये सहर्ष अपनी सेवा अर्पित करते थे। युद्ध अथवा अभियान के दौरान उन्हे पेटिया या खाना सरकार की ओर से मिलता था। भूमिये गाव मे स्थानीय मिलीशिया की भाँति होते थे। वे गाव की सुरक्षा व राहगीरो व गाव से गुजरने वाले राहगीरो की सुरक्षा के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ होते थे। इनाम जागीरे पंडितो, विद्वानो, पुरोहित, कवियो आदि को दी जाती थी। तनखा जागीर निश्चित सैनिको के साथ सैनिक सेवा करने की शर्त पर जीवनकाल के लिए दी जाती थी। औरस पुत्र के अथवा प्राप्तकर्त्ता के वश मे उपयुक्त उत्तराधिकारी के अभाव मे इनाम व पुण्य मे दिए गए अनुदान व जागीरे भी खालसा मे ले ली जाती थी। प्रशासन के दृष्टिकोण से जागीरे परगना प्रशासन के अधिकार क्षेत्र मे आती थी। परगना अधिकारी जागीर पाने वाले व्यक्ति,

---

1. देखिए, टॉड, 1, पृ 133–36। नजराना व रेख के लिए देखिए जी एन. शर्मा, सोशल लाइफ इन मिडीवल राजस्थान, पृ. 86। वार्षिक नजराने के कुछ उदाहरणो के लिए जैसे कासुली व खडेला के देखिए टॉड, 2, पृ. 323–24।

व जागीर के अन्तर्गत काश्तकार, दोनो के ही अधिकारो व हितो की रक्षा करते थे[1]।

न्याय-व्यवस्था

राज्य मे अंतिम अपील राजा के समक्ष हो सकती थी। राज्य का कोई व्यक्ति किसी भी मामले मे उसके निर्णय के विरुद्ध बादशाह से अपील नही कर सकता था। जयसिंह के समय के कागजातो मे न्याय-सभा का उल्लेख मिलता है। न्याय-सभा संभवतः सर्वोच्च अदालत थी। कागजातो से यह स्पष्ट है कि यह चलित सभा थी। उदाहरणार्थ, आषाढ वदी १ स. १७८६ से वैशाख वदी ३ स० १७८३ (१७३० ई०) तक न्याय-सभा मथुरा मे थी और वैशाख वदी ११ को पावटा मे। इससे प्रतीत होता है कि न्याय-सभा राजा की अदालत थी। न्याय-सभा कागजातो मे सम्पत्ति व संविदा संबंधी झगडे, पटेल व पटवारियो के विसोद के बारे मे दावे, ऋण की वसूली से संबंधित महाजनो के दावे, राज्य कर्मचारियो की राजस्व वसूली संबंधी शिकायतो के उल्लेख मिलते है। परन्तु जो वृत्तान्त मिलता है उससे यह स्पष्ट नही होता कि न्याय सभा मे पहुँचने से पूर्व इन मुकदमो की सुनवाई हो चुकी थी अथवा नही[2]।

यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि आमिल व फौजदारो को भी न्याय संबंधी अधिकार प्राप्त थे। प्रत्येक परगने का आमिल अपनी कचहरी मे प्रतिदिन मुकदमे सुनता था। समय-समय पर दीवान उन्हे विभिन्न प्रकार के अपराधो मे सजा के बारे मे आवश्यक निर्देश भेजते थे[3]। यद्यपि कोतवाल दीवानी मुकदमे नही सुनता था परन्तु फौजदारी मामलो मे उसे दण्ड देने का अधिकार था। आमिल व फौजदारो के विस्तृत न्याय संबधी अधिकार थे, यहाँ तक कि वे मृत्यु दण्ड व हाथ-पाँव काटने की सजा तक भी दे सकते थे। यह दीवान नारायण दास के ज्येष्ठ वदी ६ स० १७९४ (१७३७ ई०) के विद्याधर के नाम पत्र से ज्ञात होता है। दीवान नारायणदास ने लिखा कि विद्याधर सभी परगनो के आमिलो व फौजदारो को निर्देश भेज दे कि बडी चोरी के मामले मे अपराध सिद्ध हो जाने पर मृत्यु दण्ड दे, और यदि चोरी बाजार, राह अथवा घाट मे हुई है, और यदि अपराध सिद्ध हो जाता है, तो चोर का एक हाथ कटवा दे, और यदि साधारण चोरी है तो उसके दाग लगवा दे। कागजातो मे जिन अपराधो का बार-बार उल्लेख है उनमे चमचोरी,

1. जागीर कागजात, नुस्खा, ऊदक, इनाम कागजात, ज. आ। भोम के लिए देखिए टॉड, 1, पृ 133, 136। जी. एन. शर्मा, सोशल लाइफ इन मिडीवल राजस्थान, पृ 88–89।
2. न्याय सभा कागजात, सं. 1786–87, ज आ।
3. पत्र, ज आ।

राज्य के नियमो का उल्लंघन व खाद्यान्न-संग्रह है। चमचोरी के लिए अपराधी पर जुर्माना किया जाता था[1]।

न्याय सुगमता से उपलब्ध था और मुकदमो मे अधिक समय नही लगता था। गवाहो को शपथ लेकर बयान देना पडता था। मुकदमो के बारे मे जो तत्कालीन कागजात है उनमे केवल अपराध व अपराधी को दिए गए दण्ड का उल्लेख मिलता है। गवाहो के बयान आदि नही दिए गए है। गावो मे पचायते होती थीं जो भूमि व सपत्ति सबंधी झगडे तय करती थी। परन्तु पचायत के निर्णय के विरुद्ध अपील हो सकती थी, अथवा दोनो पक्ष दूसरे दो गावो के पचो के फैसले को स्वीकार करने का समझौता कर सकते थे। कागजातो मे जाति पचायतो के भी अनेक उल्लेख आते हैं। ये विवाह, चमचोरी व परिवारो के बीच झगड़े तय करती थी। कुछ कागजातो से ज्ञात होता है कि जमीन सबधी झगडो को निपटाने मे पटेल प्रमुख भाग लेते थे। आमिल भी कुए व भूमि संबधी झगडो को तय करने मे पटेलो की सलाह लेते थे। कई बार निकट के गावो के पाँच पटेल मिलकर भूमि संबंधी झगडा तय कर देते थे[2]।

खुफिया विभाग

जयसिह के समय के खुफिया विभाग के जो कागजात मिलते है, उनसे यह स्पष्ट हो जाता हे कि यह विभाग बडी कुशलता से कार्य कर रहा था, और इससे जयसिह को न केवल अपने बढते हुए राज्य की स्थिति व प्रशासन के बारे मे पूर्ण जानकारी मिलती रहती थी, अपितु उसे मुगल सरकार व मराठो के प्रति अपनी नीति-निर्धारित करने मे भी सहायता मिलती थी। खुफिया विभाग की सतर्कता व कार्य-कुशलता के कारण जयसिह उस अराजकता के युग मे भी अपने विस्तृत राज्य मे पूर्ण शान्ति व व्यवस्था बनाए रख सका।

'तनखादार परगना' कागजातो से ज्ञात होता है कि राज्य के प्रत्येक परगने मे एक खुफिया-नवीस नियुक्त किया जाता था जो परगने मे प्रशासन व वहाँ की स्थिति के बारे मे दीवान को बराबर सूचित करता रहता था। 'स्याह खुफिया' कागजात (स० १७७१) देखने से ज्ञात होता है कि खुफ़िया-नवीस अपनी रिपोर्ट मे बहुधा निम्न प्रकार की सूचनाए भेजते थे :—

१. लगभग प्रत्येक रिपोर्ट मे खुफिया-नवीस यह सूचित करते थे कि आमिल ने अपनी कचहरी मे 'दरबार' किया या नही। कचहरी मे आमिल

1. न्याय-सभा कागजात, सं. 1786-87।
2. चिट्ठी आमिल को, परगना चाटसू, मार्गशीर्ष वदी, 10, स 1820 व कार्तिक वदी 8, स. 1808 ज आ.।

दीवानी व फौजदारी मुकदमे सुनते थे। खुफिया नवीस परगनों के आमिलो के कार्य के बारे मे सरकार को बराबर सूचित करते रहते थे।

२. परगने में वर्षा व उपज की स्थिति, और सूखा पडने की स्थिति मे सहायता कार्यों के बारे मे सूचना।

३. किसी भी राजकीय कर्मचारी, जागीरदार अथवा व्यापारी के बारे मे कोई सूचना अथवा अफवाह, जो उसके विचार मे सरकार के लिए महत्वपूर्ण हो।

४. परगने मे उच्च राजकीय कर्मचारियो के आगमन व प्रस्थान के बारे मे सूचना।

५ दीवानी व फौजदारी मुकदमो व आमिल द्वारा दिए गए फैसलो के बारे मे सूचना।

६. परगने मे झगडे, चोरी, हत्या आदि के बारे मे सूचना जिससे सरकार को परगने मे शान्ति व व्यवस्था की स्थिति के बारे मे ज्ञात होता था।

७. परगने मे किसी भी प्रशासकीय कर्मचारी व जागीरदार के आपत्तिजनक आचरण के बारे मे सूचना[1]।

यह स्पष्ट है कि खुफिया-नवीसो की इन रिपोर्ट्स के कारण परगनो मे पहुँचने वाले राज्य के बडे अफसर, जागीरदार, व परगना कर्मचारी सभी अपने आचरण, व्यवहार, व कर्त्तव्यपालन मे पर्याप्त सतर्कता व सयम बरतते थे।

राज्य के बाहर मुगल दरबार व सूबो मे राज्य के खुफिया कर्मचारी रहते थे। सभवतः इनकी नियुक्ति पुरो के अधिकारियो के रूप मे की जाती थी। आबेर के शासको के मुगल साम्राज्य के अनेक प्रमुख नगरो—जैसे, दिल्ली, आगरा, लाहौर, उज्जैन, औरगाबाद, आदि मे, पुरे थे[2]। इन खुफिया कर्मचारियो की कार्यकुशलता व दक्षता का प्रमाण उनका औरगजेब के अंतिम दिनो मे व बादशाह की मृत्यु के तुरन्त बाद की हलचल, १७१०–१२ और १७१२–१९ तक के बीच की प्रमुख घटनाओ व राजनीतिक गतिविधियो का सूक्ष्म वृत्तान्त है जो समकालीन इतिहासकारो को भी अपूर्ण रूप से ही ज्ञात था। यह वृत्तान्त हम पिछले अध्यायो मे दे चुके है। "खबर जुबानी खबरदार" कागजातो से ज्ञात होता है कि आबेर के खुफिया कर्मचारी बादशाह की प्रात. काल से रात्रि तक की पूरी गति-विधि के बारे मे पता लगा लेते थे। यह हम पहले ही लिख चुके है कि आबेर के वकील

1. स्याह खुफिया कागजात, सं. 1771, ज आ.।
2 इनके अनेक उल्लेख समकालीन कागजातों मे मिलने है।

आदि शाहजादो, बादशाही अफसरो व प्रमुख अहलकारों से अच्छे संबंध रखते थे और उनके मार्फत मुगल दरबार की गतिविधियो के बारे मे सभी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेते थे। आबेर राज्य के हरकारो की नियुक्ति व उनका कार्य-क्षेत्र मुगल हरकारो से भिन्न था। आबेर राज्य मे हरकारे न तो परगनो मे नियुक्त किए जाते थे और न ही उन्हे लिखित रिपोर्ट भेजनी पडती थी। यहाँ हरकारे मुख्य रूप से सदेशवाहक व चलित खुफिया रिपोर्टर की भाँति थे और ये साम्राज्य के विभिन्न भागो से द्रुतगति से समाचार भेजते थे[1]। राज्य की ओर से धावे भी नियुक्त किए जाते थे जो डाक लाने व लेजाने का कार्य करते थे। जयपुर अभिलेख सग्रहालय मे सभवतः १७१८ की कबूतर द्वारा लायी गई एक रिपोर्ट मिली है। उसमे लिखा है कि सूर्यास्त मे आधी घडी बाकी थी, अदालत का दीवान अभी उठा नही था, और मीरजुमला तबतक बादशाह के पास ही था[2]। सदेश उस समय का प्रतीत होता है जबकि बादशाह फर्रुखसियर व सैयद भाइयो मे तनाव बहुत बढ़ गया था, और मीर जुमला एकाएक ही लाहौर से दिल्ली आ गया था। उसका आना अत्यन्त महत्वपूर्ण बात थी और इसी कारण यह समाचार कबूतर द्वारा भेजा गया था, जो उस समय समाचार भेजने का तीव्रतम साधन था। खुफिया कर्मचारियों की तत्परता, कुशलता, व कर्त्तव्यनिष्ठा के कारण जयसिह को उचित समय पर सही निर्णय लेने मे बहुत सहायता मिली, और यह उसकी राज-नीतिक क्षेत्र मे अपूर्व सफलता का एक प्रमुख कारण था। इसी तरह परगनो मे स्थित खुफिया-नवीसो की रिपोर्ट्स जयपुर राज्य मे शान्ति व व्यवस्था बनाए रखने मे बहुत सहायक हुई।

सेना

जयसिंह की सैनिक व्यवस्था के बारे मे सक्षेप मे ही कहना पर्याप्त होगा। यद्यपि संकट के समय अथवा आवश्यकता पडने पर जयसिंह पचास हजार से अधिक की फौज बिना किसी विशेष कठिनाई के इकट्ठा कर सकता था, जैसा कि उसने सैयद भाईयो के साथ संघर्ष के समय (१७१९ ई०) अथवा १७४० ई० मे जोधपुर के विरुद्ध अभियान के समय किया था, परन्तु नगद वेतन अथवा तनख्वाह जागीर देकर रखे गए सैनिको की सख्या अधिक नही थी[3]। आवश्यकता पडने पर भोमियो को बुलवा लिया जाता था जिनके आने से फौज की सख्या मे काफी वृद्धि हो जाती थी। ठिकाने, जागीर, व तनख्वाह-जागीर वाले कितने सैनिक व सवार

1 हरकारो द्वारा भेजी गई रिपोर्ट्स का कई खरीतो मे व "खतूत अहलकारान" कागजातों में उल्लेख मिलता है।

2. यह भूरे कागज की पट्टी पर है और आबेर के अवर्गीकृत कागजातों मे मिली थी।

3 जागीर की फौज व नगदी की फौज के उल्लेख के लिए देखिए ड्राफ्ट परवाना राय शिवदास के नाम (1724 ई) व अन्य पत्र ज आ ।

लाए गे, यह दीवान (जागीर) व बक्शी निश्चित करते थे। यह सख्या ठिकाने, जागीर व तनख्वाह-जागीर की संभावित आय को ध्यान मे रख कर निश्चित की जाती थी। सेना की भरती व अन्य आवश्यकताओ का ध्यान बक्शी रखता था। उसके बारे मे हम पहले भी लिख चुके है।

सेना के मुख्य रूप से दो भाग थे—प्यादे, सवार। जिनके पास बन्दूके होती थी वे बदूकची कहलाते थे। यद्यपि चलाने मे बन्दूके सुविधाजनक नही थी परन्तु अठारहवी शताब्दी मे राजपूत सेनाओ मे बदूकचियो की सख्या काफी बढ गई थी। सवारो का वेतन घोडो की नस्ल को ध्यान मे रख कर तय किया जाता था। १७२९ ई० के करौली की ओर के अभियान मे सवारो के वेतन इस प्रकार मिले है—

घोडा	सवार का मासिक वेतन
काल्डा (घोडा)	रु० २०
ताजी	रु० १६
रस्मी	रु० १४
पडीर	रु० १३
जगली	रु० १०

तनख्वाह-जागीर व नगदी के घोड़े दागे जाते थे[1]। अमीन, दारोगा, तवाइची व मुशरिफ बक्शी की हुलिया रखने व निरीक्षण करने मे सहायता करते थे[2]। गोलन्दाजो (तोपची) को नगद वेतन मिलता था। तोपखाने के कर्मचारियो मे बक्शी-तोपखाना, दारोगा-तोपखाना व मुशरिफ-तोपखाना के उल्लेख मिलते है[3]। बडी तोपो (रामचगी, जो १२–२० सेर तक का गोला फेक सकती थी, और जिन्हे कई बैल खीचते थे) के अलावा गजनाल या हथनाल (जो हाथी पर ले जाई जाती थी), और शतुरनाल (ऊट पर ले जाई जाने वाली छोटी तोपे, जो ऊट को बैठा कर चलाई जाती थी और ½–१ सेर का गोला फेकती थी) भी थी। समकालीन कागजातो मे रहकला का भी उल्लेख मिलता है जो पहिए वाली गाडी पर लगी हल्की तोपे होती थी जिन्हे बैल खीचते थे[4]। यद्यपि जयपुर मे मारवाड की भाँति बडी सख्या मे शुतरसवार नही रखने पडते थे, परन्तु डाक के काम के लिए कुछ ऊट सवार रहते थे। जब शेखावाटी मे विस्तृत क्षेत्र व जोधपुर की पूर्वी सीमा के

1 जमा-खर्च खजानाई, तरफ करौली, पत्र 40-45, ज. आ.।
2 जमा-खर्च दाग घोड़ा मुलाजिम, व याददाश्त सं. 1791, शामलात कागजात, ज. आ.।
3. तनखादार-परगना कागजात, सं 1756, ज. आ.।
4. जमा-खर्च खजानाई, तरफ करौली, बंडल सं. 1786।

निकट के कुछ परगने जयपुर राज्य के अन्तर्गत आ गए तो ऊट सवारो की संख्या बढ़ा दी गई।

सवाई जयसिंह के समय मे जयपुर राज्य मे शासन-व्यवस्था की उपरोक्त रूपरेखा से यह अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि कछवाहा राज्य मे अत्यन्त व्यवस्थित शासन-प्रबन्ध था। जिस समय देश मे सर्वत्र अराजकता व्याप्त थी और मुगल साम्राज्य तीव्र गति से टूट रहा था, जयसिंह अपने राज्य मे शान्ति व सुरक्षा बनाए रख सका, और अपनी प्रजा को उस समय देश भर मे सबसे सुव्यवस्थित व कुशलतापूर्वक सचालित शासन व्यवस्था दे सका। यह उसकी एक प्रमुख उपलब्धि थी।

०००

अध्याय १२

जयसिंह की विज्ञान, कला व साहित्य के क्षेत्र में सेवाएं

सवाई जयसिह के अत्यन्त व्यस्त राजनीतिक जीवन को देखते हुए सांस्कृतिक क्षेत्र मे उसकी उपलब्धि असाधारण थी। उसके समकालीन प्रमुख व्यक्तियो मे किसी मे भी उसकी जैसी बहुमुखी प्रतिभा नही थी, और न ही वे सर्वत्र अराजकता के बीच सास्कृतिक प्रगति की कल्पना ही कर सकते थे। परन्तु जयसिंह मे अपने स्वप्नो को साकार करने की अद्भुत क्षमता थी, और जिन परिस्थितियो मे वह ऐसा कर सका वह उसे उसके समकालीन निजाम व महान पेशवा से भिन्न स्तर पर ले आते है। उसने अपनी राजधानी को देश मे विद्या का सबसे व्यस्त केन्द्र बना दिया जहाँ देश के विभिन्न विषयो के पडित, विद्वान् व कवि आकर बस गए, और जहा पुर्तगाल, फ्रास व जर्मनी के विद्वान खगोल-विद्या व गणित की नवीनतम कृतिया लाते थे। जिन दिनो मुगल साम्राज्य का तीव्र गति से पतन हो रहा था, और मराठे आधी की तरह उत्तर की ओर बढते चले आ रहे थे, जयसिंह एक के बाद एक वेधशालाएं बनाता रहा, और भारत मे उस समय तक के सबसे व्यवस्थित नगर का निर्माण करा सका। सभवत वह इस सत्य के महत्व को भलीभाँति समझता था कि ससार मे युद्ध व मार-काट प्राकृतिक प्रकोपो की भाँति कभी समाप्त नही होते, और मनुष्य की मूर्खता व अपनी ही जाति को हानि पहुँचाने की उसकी असीम क्षमता के बावजूद भी शान्ति, ज्ञान, व सास्कृतिक प्रगति के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए।

खगोल विद्या

यद्यपि जयसिह की विद्या के सभी अ गो मे रुचि थी, खगोल शास्त्र उसका प्रिय विषय था। यह उसने अपने गुरू जगन्नाथ से सीखा था। जगन्नाथ महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे और वे जयसिह को वेद पढाने के लिए नियुक्त किए गए थे। जगन्नाथ, जो 'सम्राट यज्ञ' करने के बाद सम्राट जगन्नाथ कहलाए, दीर्घकाल तक जयसिह के दरबार मे रहे, और उन्होने टॉलमी की 'अलमजेस्त' के अरबी अनुवाद के आधार पर "सिद्धान्त-कौस्तुभ" की रचना की और युक्लिड के रेखा-गणित का अरबी से संस्कृत मे अनुवाद किया।

आरम्भ से ही जयसिह की गणित व सिद्धान्त ज्योतिष मे अत्यधिक रुचि थी। निरन्तर अभ्यास से वह इस विद्या व गणित के सिद्धान्तो से पूर्णतया परिचित हो

गया था। उसने देखा कि नक्षत्रो की जो स्थिति प्रचलित अरबी व संस्कृत के पचांगो से निकलती है, वह उनकी प्रत्यक्ष स्थिति से बहुधा दूर होती है। उसके साथ कई हिन्दू, मुसलमान व यूरोपीय खगोल विद्या-विशेषज्ञ कार्य कर रहे थे। जयसिंह ने अनुभव किया कि उसके पास जो पीतल के यत्र है, उनसे प्राप्त आकडो मे त्रुटि रह जाती है। अ को के सूक्ष्म विभाजन की समस्या, यत्रो की धुरी हिलने व घिस जाने के कारण, तथा उनके तल मे परिवर्तन आ जाने के कारण दीर्घकाल तक इन यत्रो से बिल्कुल सही आकडे प्राप्त करने मे बहुत कठिनाई होती है। इस कमी को दूर करने के लिए उसने दिल्ली मे पत्थर के विशाल यत्र—जयप्रकाश, रामयत्र, सम्राट यत्र आदि बनवाए, और इन यत्रो से प्राप्त आकडो की सत्यता का पता लगाने के लिए उसने सवाई जयपुर, मथुरा, बनारस, व उज्जैन मे भी वेधशालाए बनवाई। ये वेधशालाए खगोल विद्या के सभी विद्वानो के लिए खुली रहती थी जिससे कि वे किसी भी समय जाकर नक्षत्रो की स्थिति व गति ज्ञात कर सकते थे।

सर्व साधारण की सुविधा के लिए जयसिह ने शुद्ध ग्रहगणित की आवश्यकता भी अनुभव की। उसकी सभी वेधशालाओ मे सात वर्ष तक विभिन्न नक्षत्रो की स्थिति व ग्रहो के उदयास्त सबधी आकडे एकत्रित किए गए। परन्तु अब जयसिह को ज्ञात हुआ कि यूरोप मे विशेषकर पुर्तगाल मे, पिछले कुछ वर्षो मे इस दिशा मे काफी प्रगति हुई है। १७२६ मे उसने अपने दिवान राजा अयामल के मार्फत पुर्तगाल के सम्राट के पास अनेक उपहार भेजे, और गोआ के पुर्तगाली गवर्नर को यूरोपीय खगोल विद्या विशेषज्ञ भेजने को कहा। ऐसा प्रतीत होता है कि जयसिह का पत्र मिलने पर 'पादरी मनवेलफिरगी' (पादरी मेन्युअल फिगुइरिडो) गोआ से भेजा गया। अगस्त १७२७ मे जयसिह ने पादरी मेन्युअल को सूरत भेजा। उसे यूरोप जाकर पिछले वर्षो मे वहाँ खगोल-विद्या मे हुई प्रगति के बारे मे जानकारी लाने को कहा गया। फादर मेन्युअल नवम्बर १७३० मे यूरोप से लौटकर आया। उसके साथ डाक्टर पेड्रो द सिलवा भी आया। कुछ समय बाद जयसिह ने फिगुइरिडो को खगोल शास्त्र सबधी रचनाए व यत्र लाने के लिए पुन. यूरोप भेजा। जयसिंह के ग्र थो मे जिन विदेशी खगोल-विद्या विशेषज्ञो का उल्लेख मिलता है उनमे युक्लिड, हिप्पारक्स, टॉलमी, डी. ला हेरे (१६४०–१७१८ ई) व अब्दुर रहमान इब्न उमर अब्दुल हुसैन अल सूफी, नासिर अल-दुई अत तूसी, ऊलुग बेग, मौलाना चाद आदि है। डी ला. हेरे की ग्रह-गणित की सारणी जो १७०२ मे पूरी हुई थी, व कई अन्य पुस्तके पादरी मेन्युअल फिगुइरिडो लाया था। जयसिंह ने इनके आकडो के आधार पर सूर्य, चन्द्रमा व विभिन्न नक्षत्रो की स्थिति को अपने यंत्रो से प्राप्त आकडो से मिलाया और देखा कि यूरोपीय गणना मे कई त्रुटिया हैं, जिसका कारण, उसके विचार से, वहाँ काम मे लाए गए यत्रो का छोटा व्यास व आकार था। इसलिए उसने अपने द्वारा अन्वेषित यत्रो से प्राप्त

आंकडो के आधार पर ग्रह-नक्षत्रो की सारणी बनाई, जिसका तत्कालीन बादशाह के नाम पर 'जीज-ए-मुहम्मदशाही' नाम रखा। यह १७३३ ई. मे प्रकाशित हुई।

जयसिंह के साथ जो यूरोपीय खगोल शास्त्री थे, उनमे दो फ्रांसीसी भी थे। इनमे क्लाड बोडियर जनवरी १७३४ मे चद्रनगर से चलकर जयसिह द्वारा निर्मित बनारस, मथुरा व देहली की वेधशालाओ मे आवश्यक आकडे इकट्ठा करता हुआ जयपुर पहुँचा था। १७३६ मे जर्मनी से फादर ऐन्टोइने गेवेल्स परगुइर व आद्रे स्ट्रोब्ल जयपुर पहुँचे। जयसिह ने उनकी यात्रा का सारा व्यय दिया। आद्रे स्ट्रोब्ल १७४६ ई. तक जयपुर मे रहा। डॉन पेड्रे द सिलवा जयपुर मे ही बस गया। कुछ वर्ष पूर्व तक भी उसके वशज जयपुर राज्य मे जागीर का उपभोग कर रहे थे[1]।

जयसिह के पास सम्राट् जगन्नाथ के अलावा दूसरा भारतीय सिद्धान्त-ज्योतिप विशेषज्ञ गुजरात का केवलराम था, जो १७२५ मे जयसिंह के दरबार मे आया था। केवलराम ने खगोल-विद्या सबधी आठ ग्रन्थ लिखे[2] जो नक्षत्रो की सही स्थिति व गति बताने मे बहुत सहायक है। जयसिह ने केवलराम को "ज्योतिप-राय" की उपाधि प्रदान की थी।

सवाई जयसिंह को अपने यत्रो पर गर्व होना स्वाभाविक था। १७२६ मे उसने रवि मार्ग की वक्र गति २३°२८' निकाली। यह अगले वर्ष यूरोप मे गोडिन द्वारा ज्ञात की गई गणना से केवल २८" कम थी। १७६३ मे जब डा० हन्टर ने उज्जैन की अक्ष रेखा पर अनेक खगोल विद्या सबधी आकडे इकट्ठे किए और उनकी तुलना जयसिह द्वारा लिए गए निष्कर्षो से की तो दोनो मे केवल २४" का अन्तर था। जयसिह ने अक्ष रेखा २३° १०' उतरा निर्धारित की थी व डा० हन्टर की गणना से अक्ष रेखा २३° १०' २४" निकली थी।

यहाँ जयसिह की वेधशालाओ के यत्रो का सूक्ष्म व विस्तृत वर्णन देना संभव नही है। इसके लिए हम गेरेट, के, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के ग्र थ व ऐशियेटिक रिसर्चेज मे डा० हन्टर का वृत्तान्त पढ सकते है। देश मे उस समय की राजनीतिक अस्थिरता व अराजकता, तथा उस समय मे देश-विदेशो मे ज्ञान के आदान-प्रदान की कठिनाइयो को देखते हुए जयसिंह की खगोल-विद्या के क्षेत्र मे उपलब्धियां असाधारण

1 उपरोक्त वृत्तान्त के लिए देखिए जीज-ए-मुहम्मदशाही मे जयसिह की प्रस्तावना, के, ऐस्ट्रोनोमिकल आवजरवेटरीज आव जयसिंह, बी एन टेमानी का एक अप्रकाशित लेख, ज. आ, टॉड, 2, पृ 289–91।

2. ये ग्र थ है : 'जय विनोद', 'राम विनोद', 'विभाग सारणी' (लॉगेरिथम की फ्रेंच सारणी के अनेक अ शो का सस्कृत अनुवाद), 'मिथ्या जीवछाया सारणी' (फ्रेंच ग्रंथ पर आधारित), 'दृक् पक्ष-सारणी' व 'दृक्-पक्ष-ग्रंथ' (डी ला हेरे की ग्रह-गणित की सारणी के आधार पर, जयपुर के 'रेखाश' पर), 'तारा सारणी' व 'ब्रह्म प्रकाश निरस'।

थी। इसका वास्तविक महत्व उस समय इंगलैंड मे खगोल-विद्या की स्थिति को देखने से और भी स्पष्ट हो जाता है। १७१९ मे फ्लेमस्टीड की मृत्यु हुई जो ग्रीनविच मे प्रथम एस्ट्रोनोमर रॉयल नियुक्त किया गया था। उसकी 'हिस्टोरिग्रा कोइलेस्टिस ब्रिटेनिका', जो प्रकाशित भी नही हुई थी, की प्रति जयसिंह ने अपने यहाँ मंगवाली थी। फ्लेमस्टीड के पास केवल छः फुट व्यास का लोहे का एक सेक्सटेन्ट (वृत्त का छठा भाग, कोण की दूरी नापने के लिए), दो घडी, एक तीन फुट का क्वाड्रेन्ट (कोण नापने के लिए वृत्त का चतुर्थ भाग), दो दूरबीने और एक म्यूरलआर्क था। फ्लेमस्टीड ने रवि मार्ग की वक्र गति व सम्पात ज्ञात किए थे। जयसिंह ने यह अपने म्यूरल क्वाड्रेन्ट अथवा भित्ति यंत्र से ज्ञात की थी। फ्लेमस्टीड के बाद ग्रीनविच वेधशाला का कार्य डा० हेली ने संभाला। उनके पास केवल एक छोटा ट्राजिट यंत्र और बाद मे ८ फुट का एक म्यूरल क्वाड्रेन्ट थे। १७४२ मे जब हेली की मृत्यु के बाद ब्रेडले रायल ऐस्ट्रोनोमर नियुक्त हुआ तो १७४७ तक उसके पास केवल एक यंत्र और था—१२ फुट व्यास का एक जनिथसेक्टर। जयसिंह ने भी पहले पीतल के अनेक यंत्र बनवाए थे और उनमे से कुछ यंत्र दिल्ली, कोटा, बूंदी व उदयपुर आदि कई अन्य स्थानो मे लगवाए थे[1]।

यद्यपि जयसिंह देश की राजनीति मे अत्यन्त व्यस्त रहा और विभिन्न प्रकार की समस्याएं सदा उसके सामने रही, फिर भी उसने ज्योतिष विद्या के क्षेत्र मे बडा काम किया। प्रमुख बात यह है कि इस बारे मे उसका बडा ही खुला दृष्टिकोण था और इसलिए भारतीय खगोल विद्या के साथ यूनान, मध्य एशिया व योरोप मे भी जो इस बारे मे ग्रंथ लिखे गए थे व यंत्र बनाए गए थे, उनको वह उपयोग मे लाया। एक प्रकार से उसका दृष्टिकोण अत्यन्त आधुनिक था। साथ ही भारतीय खगोल विद्या के क्षेत्र मे जितना कार्य पिछली अनेक शताब्दियो मे भारत मे नही हुआ था वह उसने किया और उसे समकालीन स्तर पर लाने का प्रयत्न किया। इस उद्देश्य मे वह बहुत कुछ सीमा तक सफल हो सका।

स्थापत्य कला

स्थापत्य कला के क्षेत्र मे भी जयसिंह की उपलब्धि प्रशंसनीय थी। यद्यपि उसके पूर्व भी आंबेर मे भव्य महल थे, जिनसे नीचे की ओर की झील व सुन्दर उद्यानो का रमणीय दृश्य दिखाई देता था, परन्तु जयसिंह ने आंबेर राज्य की स्थापत्य कला के इतिहास मे एक नया अध्याय जोड दिया। पहले तो उसने आंबेर मे ही वहाँ के महलो मे नए भवन जोडे, और महल के निकट पहाडी की ऊँचाई पर जयगढ बनाया, परन्तु उसने अनुभव किया कि उसके बढ़ते हुए राज्य के लिए

1. टॉड, 2, पृ 289-91, डा. हंटर का लेख, अकाउन्ट आव द एस्ट्रोनोमिकल लेबर्स आव जयसिंह, एशियेटिक रिसर्चेज, 5, पृ 177, टी. एच. हेन्डले, हेन्ड बुक द जयपुर कोर्ट।

एक नई राजधानी की आवश्यकता है। आमेर के [illegible] की ओर [illegible] मील लम्बा व तीन मील चौडा सीधा मैदान है जिसका लगभग [illegible] मान-सागर के पानी से ढका था, जिसके बीच में जयसिंह ने जलमहल बनवाया। [illegible] भाग मे, जहा-जहा पानी ठहरता था, वहा आज भी [illegible]। [illegible] निचला मैदान समाप्त होता है वहा से कुछ [illegible] ऊचा होता जाता है और फिर [illegible] [illegible] तीन ओर सुदूर मे पहाडो की शृखलाए है [illegible] एक ही नीचा होता जाता है। इस मैदान के उत्तरी भाग मे १७२० [illegible] बाद जयसिंह ने एक महल बनवाना आरम्भ किया था और [illegible] बनवाना आरम्भ किया। परन्तु कुछ ही समय बाद जब इसमे [illegible] का सोचा तो उसने वेधशाला, राजमहल व कुछ अन्य इमारतो के लिए [illegible] एक खड अलग निश्चित कर दिया। जयपुर के निर्माण मे [illegible] रियासत के विद्याधर नाम के एक बगाली उच्चाधिकारी से विशेष सहायता मिली। विद्याधर नगर निर्माण-कला का विशेषज्ञ था। जयपुर नगर की नीव १८ नवम्बर १७२७ को रखी गई। साथ ही झोटवाडा नदी से नव निर्मित नगर के लिए पानी लाने के लिए एक नहर पर काम आरम्भ कर दिया गया। [illegible] जुलाई १७२६ मे ही तैयार कर ली गई थी। १७२९ तक नगर [illegible], जिसमे बाजार, मदिर, मकान आदि सभी थे, बनकर तैयार हो गया। सवाई जयपुर अथवा जयनगर इस आकार का पहला नगर था जो नक्शे के आधार पर बनाया गया था और जिसकी इमारतो, सडको व बस्तियो मे [illegible]। जयपुर फतेहपुरसीकरी की भाति नही था जो मुख्य रूप से शाही आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए बनवाया गया था और जहा प्राकृतिक सुविधाओ का विशेष अभाव था, यहा नौ मे से सात खड जनसाधारण के मकानो व दुकानो के लिए निर्धारित किए गए थे।

नगर नौ आयताकार खडो मे बटा था जिनमे से उत्तर की ओर के दो खंड राज निवास, दफतरो, व वेधशाला के लिए सुरक्षित रखे गए थे। पूर्व मे सूरजपोल व पश्चिम मे चादपोल को जोडने वाला मुख्य मार्ग लगभग दो मील लम्बा व १२० फुट चौडा था। उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाली तीन सडके इस मुख्य मार्ग को काटती थी और इस प्रकार नगर को आठ खडो मे बाटती थी। नवा खड बाहर पूर्व की ओर था। अनेक सीधी लम्बी गलिया इन सडको को काटती और इस प्रकार नगर के मकान अनेक खडो मे बट जाते थे। फादर जोज टाइफेनथेलर, जो फादर स्ट्रोब्ल के साथ १७३९ मे जयपुर आया था, यहाँ की सीधी व चौडी सडको की अन्य नगरो के टेढे मेढे व सकरे मार्गो से तुलना करता है। वह लिखता है कि मुख्य मार्ग, जो सूरजपोल व चादपोल के बीच मे है, इतना चौडा है कि छै या

सात गाडियाँ इस पर आसानी से बराबर बराबर चल सकती है। जहाँ उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाली सडके मुख्य मार्ग को काटती हे वहाँ तीन विशाल चौपड़ है जिनके कारण नगर के व्यस्त क्षेत्र मे भी बडा खुलापन दृष्टिगोचर होता हैं।

नगर मे मकानो की एकरूपता अत्यन्त पमुख थी। अधिकाश मकान दो मज़िल के थे परन्तु कुछ तीन या चार मजिल के भी थे। मकानो के द्वार, खिडकिया आदि रगविरगे फूल, पशु-पक्षी, देवतागण, विवाह आदि के दृश्यो से सुसज्जित थे। कई मकानो मे पत्थर की जाली का सुन्दर काम था। सडक पर बने मकानो के बीच मे मदिर थे, परन्तु वे इस प्रकार बने थे कि भवन निर्माण-शैली की सगरूपता मे बाधक नही होते थे।

नगर के चारो ओर २०–२५ फुट ऊची व ६ फुट चौडी दीवार है, जिसमे सात प्रवेश द्वार हैं। नगर की सबसे सुन्दर इमारते राजमहल वाले खडो मे है। इनके चारो ओर ऊंची दीवारे है। यहा पूर्व की ओर से सिरह-ड्योढी व उदयपोल से होकर आना पडता है। उदयपोल महल मे प्रवेश करने का मुख्य द्वार है। ये भव्य द्वार व सुन्दर उप द्वार, आंगन व दालानो से जुडे कक्ष, सुन्दर कटाई की गई पत्थर की जालिया, वेदिकाओ से सुसज्जित प्रलिन्दे, अलकृत छते, स्तम्भ, उदम्बर, तोडे, छज्जे व महल का रचना विन्यास मूल रूप मे राजपूत वास्तु शैली पर आधारित है। इनमे चूने के काम के साथ सगमरमर का व्यापक प्रयोग किया गया है। सिरह-ड्योढी द्वार पहुँचने पर तीन दरवाजो से होकर चौथे दालान मे पहुँचते है जहाँ दीवान-ए-आम हे। यह तीन ओर से खुला सभा-मण्डप है जिसके तीन ओर कामदार किनारो वाली महरावो से सज्जित बरामदे है और एक ओर राज परिवार की महिलाओ के लिए जालीदार गैलरी है। इसके निकट ही पश्चिम की ओर के दालान मे दीवान-ए-खास है। इसमे भी सगमरमर के स्तम्भो की दोहरी कतारे है और कामदार किनारे वाली महरावे है। राजसी खडो की सभी इमारतो मे चन्द्रमहल सबसे भव्य है। महल की सबसे नीची मजिल, 'प्रीतम निवास', शरद ऋतु मे काम मे आती थी। दूसरी मजिल 'शोभा निवास' कहलाती हे जिसकी भीत पर सुन्दर फूल-पौधे चित्रित है। तीसरी मजिल 'सुख निवास' कहलाती है जिसमे शीशे, सीप, चादी तथा ताम्बे के पालिश के चमकदार टुकडे जडे है। चौथी मजिल 'छवि निवास' और पाचवी 'शीशमहल' है। सबसे ऊपर मुकुट है। नीचे के खड से आरम्भ होकर ऊपर के खंड छोटे होते जाते है। सगमरमर के बने मुकुट पर मेहराबदार गुम्बद के दोनों ओर लघु गुम्बद है। उनके छज्जे की नोके नीचे की ओर झुकी हुई है। महल के उत्तर की ओर बादल महल है और उन दोनो के बीच मे गोविन्ददेव का मन्दिर हे। मदिर व महल के बीच फव्वारो व पानी के लिए बनी क्यारिया, व उनके बीच की मुंडेरे, तथा आसपास की पुष्प वाटिका महल के लिए उपयुक्त वातावरण बनाती

है। महल के दक्षिण की ओर सिलेहखाना है। शरबता के दक्षिण की ओर एक बडा चौक है। इसके दक्षिण की ओर मे चादनी चौक मे प्रवेश करते हैं। पूर्व की ओर आनन्द कृष्ण बिहारी का मदिर है और उसके पास वेधशाला है। चादपोल व सूरजपोल को जोडने वाले मुख्य मार्ग पर त्रिपोलिया से, जो बाद मे बना था, चादनी चौक मे आ सकते है। महल के निकट ही चौगान का विशाल मैदान है। यहाँ बाद मे तीज व गणगौर के मेले भरते थे।

जयसिंह ने कुछ अन्य इमारते भी बनवाई जैसे मानसागर के बीच जलमहल, सिरह ड्योढी बाजार मे कलकीजी का मदिर, यज्ञ स्तभ के निकट की छोटी पहाडी पर विष्णु मदिर, और जयपुर से लगभग दो मील दूर सीसोदणी रानी का महल। जयसिंह ने जयगढ व नाहरगढ भी बनवाए। नाहरगढ के विशाल भवन जयपुर शहर मे सभी स्थानो से दृष्टिगोचर होते हे। जयपुर राज्य के बाहर भी जयसिंह ने अनेक मदिर व सराय बनवाईं। उसने मथुरा मे सीताराम का व गोवर्धन पर्वत पर गोवर्धन के मदिर बनवाए। इसके अलावा यात्रियो की सुविधा के लिए उसने अपने खर्चे से प्रत्येक सूबे मे सराय व बाजार बनवाए।

अपने जीवन काल मे जो कुछ जयसिह ने बनाया वह इतना अधिक था और उसकी अपनी निजी विशिष्टता थी कि राजस्थान के प्रमुख भवन निर्माताओं मे जयसिंह की गणना होना स्वाभाविक हे। उसकी इमारतो मे रगो का सामजस्य, सादगी, स्वाभाविक आकर्षण व मजबूती प्रचुर मात्रा मे मिलते है। उसकी अधिकाश इमारतो मे मेहराबनुमा गुम्बद, लम्बे नुकीले लटकते हुए छज्जे, जडाऊ के स्थान पर सादा व सजीला चूने का काम, व रगो से बाहरी सजावट, लाल पत्थर के स्थान पर सगमरमर का अधिक प्रयोग, तथा गुम्बद, छज्जो व मेहराबो मे पारम्परिक हिन्दू शैली का प्रयोग मिलते है।

साहित्य

सवाई जयसिंह के समय मे साहित्य के क्षेत्र मे भी उल्लेखनीय कार्य हुआ। उसके समय मे जो रचनाए लिखी गई उनमे से अनेक धर्मशास्त्र पर थी। इसका कारण यह था कि जयसिह की श्रौत यज्ञो मे अत्यधिक निष्ठा थी। जयसिह के दरबार के कई प्रसिद्ध व सम्मानित विद्वान् श्रौत स्मार्त कर्मानुष्ठानी व धर्मशास्त्र के ज्ञाता भी थे। जयसिह को केवल खगोल विद्या से ही प्रेम नही था, उसने अनेक कवि, साहित्यकार, दार्शनिक व तान्त्रिक अपने यहाँ आमन्त्रित किए थे, और उनके निवास के लिए ब्रह्मपुरी की स्थापना की थी। जयसिह के पिता बिशनसिह ने तेलगाना के शिवानन्द गोस्वामी को सम्मानित किया था। वे प्रसिद्ध तत्र-मत्र शास्त्री थे। पहले वे चदेरी के राजा के दरबार मे थे। कुछ समय जयपुर के निकट महापुरा मे रहने के बाद शिवानन्द बीकानेर चले गए। शिवानन्द की ४८ रचनाए

उपलब्ध है। इनमे से कई ग्रंथ धर्मशास्त्र, व्याकरण व ज्योतिष पर है, और कुछ टीकाए है। शिवानन्द गोस्वामी के छोटे भाई जर्नादन भट्ट गोस्वामी कुछ समय आबेर मे रहकर बीकानेर चले गए। इनके लिखे 'श्रृंगारशतक', 'वैराग्यशतक', मत्र चंद्रिका' (वि० स० १७३१ रचित) व 'ललिताची प्रदीपका' (तत्र शास्त्र पर सं० १७३० मे रचित) उपलब्ध है। शिवानन्द के दूसरे भाई चक्रपाणी तत्र शास्त्र के प्रसिद्ध पडित थे। इनकी लिखी 'पचायतन प्रकाश' उपलब्ध है। शिवानन्द गोस्वामी के बडे पुत्र निकेतन गोस्वामी भी आबेर मे रहे। इनका नायिकाओ की लीला सबधी 'समेदायी सप्तशती' उपलब्ध है।

जयसिंह के शासनकाल के प्रारंभिक वर्षो मे सबसे प्रसिद्ध विद्वान् रत्नाकर भट्ट पौण्डरीक थे। ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे और सुप्रसिद्ध वैयाकरण नागेश भट्ट के शिष्य थे। रत्नाकर धर्मशास्त्र के विद्वान् व श्रौत यागो के अनुष्ठान मे अत्यन्त कुशल थे। आबेर आने के पूर्व ही वे ज्योतिष्ठोम याग कर चुके थे। आबेर आने पर जयसिंह ने इन्हे बहुत वैभव प्रदान किया। आरम्भ मे इन्हे ४००० रुपये प्रति वर्ष राजस्व की भूमि प्रदान की। स० १७७१ मे इनके पास ३५०० रुपये प्रतिवर्ष आय की जागीर थी। पुण्डरीक नामक यज्ञ करने के बाद ये पौण्डरीक कहलाए। जयसिंह अश्वमेध करने के इच्छुक थे। रत्नाकर ने अनेक श्रौत याग सम्पन्न कर जयसिंह द्वारा व्रत्यस्तोम करवा कर (चैत्र वदी ३, सं० १७७१), क्षिप्रा नदी के तट पर यज्ञोपावीत सस्कार कर और अनेक इष्टिया करवा कर उसे श्रौत याग करने का अधिकारी बनाया। स० १७७६ मे पौण्डरीकजी की मृत्यु हो गई। इनका रचित 'जयसिंह-कल्पद्रुम' व्रतो की तिथियो पर महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जो उन्होने स० १७७० मे पूरा किया था। रत्नाकर के पुत्र सुधाकर पौण्डरीक ने रस-विवेचन, नायक-नायिकाओं का भेदाभेद व चेष्टाओ आदि से सबधित 'साहित्य सार सग्रह' की रचना की। इन्होने जयसिंह के समय मे पुरुषमेध यज्ञ भी करवाया था।

रत्नाकर भट्ट के भतीजे ब्रजनाथ भट्ट (प्रभाकर भट्ट के पुत्र) भी जयसिंह के समय के प्रसिद्ध विद्वानो मे थे। ये १७१९ ई० मे जयसिंह के सम्पर्क मे आए जब इन्हे प्रथम बार राजकीय सम्मान मिला था। अपने जीवन के अन्त (१७४० ई०) तक ये जयपुर मे ही रहे। ये १७३४ ई० के अश्वमेध यज्ञ के प्रमुख याज्ञिको मे से एक थे। इनके रचित 'ब्रह्म सूत्राणु भाष्यवृत्ति' (मरीचिका) व 'पद्यतरगिणी' (चौखम्बा सस्कृत ग्रन्थमाला, सन् १९०५ ई०, काशी से प्रकाशित) उपलब्ध हैं। दूसरी रचना स. १८०९ मे पूर्ण हुई थी। इसमे बारह तरगो मे सज्जन, गुणी, विद्वज्जन, लक्ष्मी, दाता, सन्मित्र, कवि व उद्योग की प्रशसा, सातवी तरग मे देवाख्यान है और नवी मे मूर्ख, दुर्जन आदि के दोष है, दशम मे अन्योक्ति की अभि-व्यंजना आदि है।

जयसिंह के समय के सबसे प्रसिद्ध विद्वानो मे 'कवि कलानिधि' श्री कृष्ण भट्ट थे। ये पहिले बूंदी के महाराव बुद्धसिंह के आश्रित थे। ये संस्कृत, प्राकृत, हिंदी व वृज भाषा के प्रकाड पडित थे। राम क्रीडाओं पर लिखे "राघवगीतम्" पर जयसिंह ने इन्हे "राम रसाचार्य" की उपाधि दी थी। उनके लिखे अन्य ग्रंथ 'पद्य मुक्तावली' (मुक्तक रचना) 'वृत्त मुक्तावली' (छन्द शास्त्र), 'ईश्वरविलास महाकाव्यम्' (ऐतिहासिक रचना), 'सुन्दरी स्तवराज' (स्तोत्र साहित्य), 'वेदान्त पंच विंशति:' (दर्शन), 'रामगीतम' (गीति काव्य), 'प्रशस्ति मुक्तावली' (गद्य साहित्य), 'सरस रसास्वाद' है। 'ईश्वरविलास महाकाव्यम्' मे १४ सर्ग है। इनमे जयसिंह वंश वर्णन, जयसिंह द्वारा किए गए अश्वमेघ, सर्वमेघ, पुरुषमेघ, सोम याग करने का उल्लेख, विभिन्न देशो के विद्वानो के लिए ब्रह्मपुरी नामक लघु नगरी का निर्माण व जयपुर का वर्णन है। तृतीय सर्ग मे जयपुर, जयगढ, व जय सागर बनवाने का उल्लेख है। चतुर्थ सर्ग मे जयसिंह के त्रिरग्नि चयन, सोमयाग, बर्हिस्पत्यासव व वाजपेय याग आदि श्रौत याग करने के कारण श्रौत स्मार्त कर्मनुष्ठान पंडितो का उसे अश्वमेघ करने की अनुमति दिए जाने व पंचम सर्ग मे अश्वमेघ का प्रारम्भ व समाप्त होने का और छठे सर्ग मे कल्कि अवतार के मंदिर की स्थापना तथा सप्तम मे जयसिंह द्वारा विष्णु मंदिरों के निर्माण का वर्णन है। आठवे व नवे सर्ग मे ईश्वरीसिंह का जन्म, विद्याध्यन व बाद मे मराठो के विरुद्ध युद्ध का वर्णन है। दशम सर्ग मे जयसिंह की मृत्यु व अंतिम समय मे गोविन्द देव के ध्यान मे लीन रहने का वृत्तान्त है। 'राघव गीतम्' अथवा 'रामगीतम्' जयदेव के 'गीत गोविन्द' की शैली पर है। इसमे छन्दो व अलंकारो का सुन्दर प्रयोग है और यह श्रीकृष्ण भट्ट की सर्वोत्तम रचना मानी जाती है। 'वृत्त मुक्तावली' मे कवि ने वैदिक छन्दो से लेकर उसके समय तक के सभी प्रचलित छन्दो के स्वनिर्मित छन्दो द्वारा उदाहरण दिए है। कवि ने अपने समय तक प्रचलित सम्पूर्ण छन्दो का विवेचन किया है। 'सुंदरी-स्तवराज' शंकराचार्य द्वारा रचित त्रिपुर सुंदरी की उपासनार्थ 'सौन्दर्यलहरी' स्तोत्र के आधार पर लिखी गई है और स्तोत्र साहित्य की एक महत्वपूर्ण रचना है। 'प्रशस्ति मुक्तावली' पत्र लेखन शैली संबंधी रचना है।

कवि कलानिधि के चचेरे भाई श्री हरिहर ने 'कुल प्रबन्ध' लिखा। यद्यपि यह तैलगभट्ट ब्राह्मणो के उस परिवार की वंशावली है जिसमे कवि कलानिधि, श्री कृष्ण भट्ट व श्री हरिहर आदि हुए, परन्तु काव्य मे प्रयुक्त क्रियाओ के प्रयोग से हमे कवि हरिहर के व्याकरण ज्ञान के बारे मे ज्ञात होता है।

जयसिंह के समय मे एक अन्य विद्वान् श्री हरिकृष्ण थे। ये कर्णाटक ब्राह्मण थे और इन्हे व्रजनाथ दीक्षित ने मथुरा से सवाई जयसिंह द्वारा अश्वमेघ करने के समय बुलवाया था। इनकी रचित 'वैदिक वैष्णव सदाचार' मे वैष्णवो के कर्त्तव्यो तथ धर्मशास्त्रीय नियमो का विवेचन है। एक दूसरे विद्वान् मायाराम गौड़ ने

'व्यवहार निर्णय,' 'व्यवहार सार,' 'मिताक्षरा सार,' 'व्यवहारांग स्मृति सर्वस्व' की रचना की।

सम्राट् जगन्नाथ व ज्योतिषराय केवलराम की खगोल विद्या व गणित सबधी रचनाओ का हम पहले ही उल्लेख कर चुके है। केवलराम की दो साहित्यिक रचनाए भी उपलब्ध है। ये है 'अभिलाष-शतकम' (मुक्तक रचना) व 'गगा स्तुति'।

इन सस्कृत रचनाओ के अलावा पिगल व डिगल मे भी अनेक ग्र थ लिखे गए। इनमे अनेक टीकाए है—जैसे गलता के कृष्णदास पयहारी के शिष्य प्रियादास द्वारा रचित 'भक्तमाल टीका' व 'भागवत भाष्य' और सूरत मिश्र की 'बिहारी सतसई' की टीका। सूरत मिश्र ने 'कविप्रिया की टीका' व 'रसिक प्रिया का तिलक' भी लिखे। श्रीकृष्ण भट्ट ने सस्कृत मे अनेक रचनाओ के अलावा 'साभर युद्ध', 'जाजव युद्ध', 'बहादुर विजय' नामक ऐतिहासिक काव्य भी लिखे। जयसिह के समय मे कुछ ख्याते भी लिखी गई परन्तु साहित्यिक दृष्टि से उनका विशेष महत्व नही है[1]।

जयसिह की सिद्धान्त-ज्योतिष व गणित मे विशेष रुचि देखते हुए साहित्य के क्षेत्र मे उसके समय मे उल्लेखनीय कार्य हुआ। उसने जयपुर को उस समय का विद्या व ज्ञान का सबसे व्यस्त केन्द्र और टॉड के शब्दो मे हिन्दू विद्या का शरण-स्थल बना दिया था। इस कारण इसमे कोई आश्चर्य नही कि कर्नल पोलिअर को वेदो की प्रथम पूर्ण पाडुलिपि जयपुर मे ही मिली (१७९९ ई०)।

देश मे व्याप्त राजनीतिक उथल-पुथल व अराजकता से हताश न होकर सवाई जयसिह विज्ञान, कला व साहित्य की प्रगति के लिए निरन्तर प्रयत्न करता रहा। यदि राजनीतिक समस्याओ को सुलझाने और प्रशासन कार्यो मे उसका इतना अधिक समय व्यय न होता तो वह निश्चय ही सास्कृतिक क्षेत्र मे और कार्य करता।

जयसिह को उसके समय का चाणक्य कहा गया है। परन्तु वह केवल अत्यन्त सफल राजनीतिज्ञ व प्रशासक ही नही था अपितु वह अपनी सूझबूझ, विद्वत्ता, उदारता, ज्योतिष एव नगर-निर्माण तथा शिल्पकला के ज्ञान के लिए देश भर मे

1. विस्तृत वर्णन के लिए देखिए, प्रभाकर शास्त्री का 'जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन (1699–1834)' (राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पी. एच डी की उपाधि के लिए 1964 मे स्वीकृत, पाडुलिपि, विश्वविद्यालय पुस्तकालय, डा. मोतीलाल मेनारिया, 'राजस्थान का पिगल साहित्य' व 'राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' आदि ग्रन्थ। जयसिह के समय में संस्कृत साहित्य मे प्रगति का वृत्तान्त मुख्य रूप से प्रभाकर शास्त्री की रचना पर आधारित है।

प्रसिद्ध था। उसने धार्मिक कार्यो मे करोडो रुपये व्यय किए और शताब्दियों बाद अनेक श्रौत यागो का अनुष्ठान कर वैदिक परम्परा के प्रति अपने प्रेम को मूर्त रूप मे उपस्थित किया। उसके समाज सुधार के प्रयत्न[1] उसके विचारो की आधुनिकता की पुष्टि करते है। उस ह्रासोन्मुख काल मे वह ज्ञान, शान्ति, प्रगति, व स्थायित्व का प्रतीक था और निरन्तर कठिनाइयो, कूटनीतिक चक्रो व युद्धो मे घिरा रहकर भी वह जो कुछ कर सका, वह उसे भारतीय इतिहास के अपूर्व व्यक्तियो मे ऊँचा स्थान दिलवाने के लिए पर्याप्त है।

०००

1. उसने ब्राह्मणो की अनेक उपजातियों मे भोजन-व्यवहार का अन्तर कम करने का प्रयास किया। यद्यपि वह इस उद्देश्य मे पूर्ण रूप से सफल न हुआ परन्तु उसके कहने पर छः उपजातियो के ब्राह्मणो ने एक साथ बैठकर भोजन करना स्वीकार किया। ये ब्राह्मण 'छन्यात' कहलाते है। राजपूतों मे विवाह आदि अवसरों पर अधिक व्यय होने से अनेक कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई थी, जिनमे 'कन्या हत्या' प्रमुख थी। जयसिंह ने व्यय कम करने के लिए नियम बनाए जो यद्यपि अधिक सफल नही हो सके तथापि समाज-सुधार के क्षेत्र मे उनका महत्वपूर्ण स्थान है। उसने महन्तो व वैरागियो से हथियार न रखने का वचन लिया, और सन्यासियो से सम्पत्ति सचय व स्त्रीगमन न करने का। साथ ही 1722 ई मे उसने बादशाह से यह आज्ञा निकलवादी कि भविष्य मे महन्तो, सन्यासियो व फकीरो की मृत्यु के बाद उनकी सम्पत्ति जब्त नही की जावेगी। वैरागी साधुओ मे व्यभिचार को मिटाने के लिए उसने उन्हे गृहस्थी बनाने का प्रयत्न किया और मथुरा मे उनके लिए वैरागपुरा बस्ती बनाकर उन्हें वहाँ बसाया। उसके सुधार सबधी अनेक पत्र व आदेश कपटद्वारा कागजातों मे है।

इस ग्रन्थ में प्रयुक्त ऐतिहासिक सामग्री

यह ग्रन्थ मुख्य रूप से समकालीन अभिलेखो पर आधारित है। ये अभिलेख भूतपूर्व जयपुर, जोधपुर, कोटा, उदयपुर आदि रियासतो के अभिलेख सग्रहालयो मे सुरक्षित थे और कुछ वर्ष पूर्व केन्द्रीय अभिलेख सग्रहालय, बीकानेर, मे भेज दिए गए थे। इस पुस्तक मे जयपुर के अभिलेख सबसे अधिक काम मे लाए गए है, विशेषकर 'खरीते', 'अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला', फरमान व निशान, फारसी व राजस्थानी वकील रिपोर्टस्, 'वकाया', 'दस्तूर कोमवार', 'खतूत अहलकारान', 'अर्जिया', 'इकरारनामे', 'परवान' आदि। ये कागजात राजनीतिक इतिहास के लिए अमूल्य है। प्रशासन सबधी जानकारी के लिए 'सनदे', परवानो की प्रतिलिपिया, विभिन्न विभागो के 'स्याहा' व 'आवारिजा', 'रोजनामा दफतरबख्शी', 'अडसट्टे', 'दस्तूर-उल-अमल', 'याददाश्ती परदाख्ती', 'तनखादार परगनावती' कागजात, 'याददाश्त', दीवानो के आदेश, 'स्याह अदालती' कागजात, 'स्याह खुफिया कागजात', 'रोजनामचा चौत्रा ड्योढी बाजार', जागीर कागजात, नुस्खा, ऊदक, इनाम कागजात, 'न्याय सभा कागजात', आमिलो द्वारा भेजे गए पत्र, व हरकारो की रिपोर्ट्स, 'जमा खर्च खजानाई' आदि उपयोग मे लाए गए है।

जोधपुर अभिलेख सग्रहालय मे सुरक्षित 'खरीता बहिया' व उदयपुर अभिलेख सग्रहालय के कुछ खरीते उपयोगी सिद्ध हुए है। कोटा सग्रहालय के 'दो वर्की कागजातो' को भी पुस्तक मे प्रयुक्त किया गया है। अनेक 'फरमान', 'निशान' व पत्र, जो वीरविनोद मे उपलब्ध है, बहुत सहायक सिद्ध हुए है। टॉड द्वारा दिए गए कुछ पत्र, जो अन्यत्र उपलब्ध नही है, काम मे लाए गए है। इन सभी कागजातो के आधार पर ही जयसिंह की नीतियो व कार्यो के बारे मे कुछ भी लिखना सभव था।

मराठो से सबधित घटनाओ के लिए 'सिलेक्शन्स फ्रॉम पेशवा दफ्तर' (पुरानी व नई सिरीज), 'हिंगणे दफ्तर' (भाग १) के पत्र व 'ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित्र' विशेष उपयोगी रहे है। अन्य ग्रथो का उल्लेख यथास्थान टिप्पणी मे दिया गया है।

कविराजा श्यामलदास कृत 'वीरविनोद' के अलावा सूर्यमल्ल मिश्रण कृत 'वशभास्कर' (स० १८९७ मे रचित) भी बहुत सहायक रहा, विशेषकर जयसिंह व बुद्धसिंह के सबधो के बारे मे। 'नैणसी की ख्यात' (जि० १, जोधपुर १९६०)

प्रथम अध्याय के लिए, बाकीदास की 'ऐतिहासिक वाते' (जोधपुर, १९५६), 'जोधपुर की ख्यात', 'पुस्तक प्रकाश री जूनी वही' (बीकानेर आरकाइव्ज) भी उपयोगी रही है। 'दयालदास की ख्यात' (अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर), 'महाराजा अजीतसिंह जी की ख्यात' (बीकानेर आरकाइव्ज), मानकवि कृत 'कूर्म विलास', 'सूरज प्रकाश' (पुस्तक प्रकाश, जोधपुर) उपयोगी रही।

फारमी ग्रन्थो मे कामराज कृत 'आजम-उल्-हर्व' (अलीगढ विश्वविद्यालय इतिहास विभाग लाइब्रेरी, पाडुलिपि सेक्शन स० १४५), कामराज कृत 'इवरत-नामा' (अलीगढ स० १९९), भीमसेन कृत 'नुस्खा-इ-दिलकुशा' (अलीगढ स. ४३), इरादत खा कृत 'तजकिरा' (अनु० स्कॉट, लदन, १७८६), 'अजाइव उल्-अफाक' (अलीगढ स० २७), शिवदास कृत 'मुनव्वर उल-कलाम' (अलीगढ स १३९), मुहम्मद कासिम लाहोरी कृत 'इवरतनामा (अलीगढ, ०६), बालमुकुन्द कृत 'बालमुकुन्द-नामा' (अनुवाद डा० सतीशचन्द्र द्वारा, पाडुलिपि), खफी खा कृत 'मुन्तखबुल्लुबाव' (बिब्लियोथिका इडिका), कामवर खा कृत 'तजकिरा-उस-सलातीन-इ-चगताई' (अलीगढ), गुलाम हुसैन कृत 'सियार-उल-मुताखिरीन' (अनुवाद), मुआसिरुल्उमरा, वाका-इ-रणथम्भोर वा अजमेर (अलीगढ न १५–१६), रुस्तम अली कृत 'तारीख इ-हिन्दी' (अलीगढ पाडुलिपि न. २८), अहवाल-उल्-खवाकीन (अलीगढ न० ३६) मिर्जा मुहम्मद कृत 'इबरतनामा', यह्या खा कृत 'तजकिरात-उल्-मुलूक (अलीगढ न ८१), मिर्जा मुहम्मद बक्श अशोब कृत तारीख-इ-शहादत-इ-फर्रुखसियर (अलीगढ न. ६९) आदि ग्रथ प्रयुक्त किए गए है। अन्य ग्रंथो का उल्लेख टिप्पणियो मे दिया गया है।

आधुनिक हिन्दी ग्रन्थो मे ओझाजी के राजपूताने की रियासतो के इतिहास सबधी ग्रन्थ, रेऊ कृत 'मारवाड का इतिहास' (जोधपुर १९३८) यत्र-तत्र काम मे आए हैं। डा० मथुरालाल शर्मा का 'कोटा राज्य का इतिहास' (कोटा, १९३९), जयसिंह के कोटा-बूदी के साथ सबधो, व डा० भगवानदास गुप्त का 'महाराजा छत्रमाल बुदेला' (आगरा, १९५८) बुंदेले शासको के साथ जयसिंह के सबधो को समझने मे सहायक रहे है।

आधुनिक अग्रेजी ग्रन्थो मे विलियम इरविन का 'दि लेटर मुगल्स', जि० १–२ (कलकत्ता १९१८), डा० दिघे द्वारा रचित पेशवा बाजीराव प्रथम एण्ड मराठा एक्सपेन्शन' (बम्बई १९४४) डा० सतीशचन्द्र कृत 'पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स एट दि मुगल कोर्ट' (१७०७–४०), (अलीगढ १९५९), व जेम्स टॉड का 'एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑव् राजस्थान' (जि० १ लदन १९६० रीप्रिंट, जि० २, लदन १९५७ का रीप्रिंट), विशेष उपयोगी रहे है। परन्तु जैसा लिख चुके है, यह पुस्तक मुख्य रूप मे समकालीन कागजातो पर ही आधारित है।

ग्यारहवे अध्याय मे इरफान हबीब कृत 'दि एग्रेरियन सिस्टम ऑव् मुगल इंडिया' (लदन, १९६३), सरकार कृत 'मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन' (पाचवा सस्करण, कलकत्ता, १९६३), डा० जी० एन० शर्मा कृत 'सोशल लाइफ इन मिडीवल राजस्थान' (आगरा १९६८), पी० सरन कृत 'दि प्रोविन्शियल गवर्नमेन्ट ऑव् दि मुगल्स' (१५२६–१६५८) (इलाहाबाद, १९४१), सी० यू० विल्स की रिपोर्ट्स, आदि उपयोगी रहे है।

सस्कृत रचनाओं मे जगजीवन भट्ट कृत 'अजीतोदय' (पुस्तक प्रकाश लाइब्रेरी, जोधपुर), श्री कृष्णभट्ट कृत 'ईश्वरविलास महाकाव्यम्' (जयपुर १९५८), श्री कृष्णभट्ट कृत 'कच्छवश महाकाव्य', सीताराम भट्ट पर्वणीकर कृत 'जयवश महाकाव्य' (जयपुर १९५२) उपयोगी है। जयसिंह के समय मे सस्कृत साहित्य के क्षेत्र मे प्रगति के लिए प्रभाकर शास्त्री का 'जयपुर की सस्कृत-साहित्य को देन १६९९–१८४४' (पाडुलिपि, राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय मे उपलब्ध) विशेष उपयोगी रहा है।

अन्य प्रयुक्त ग्रन्थो व लेखो का उल्लेख पुस्तक मे दी गई टिप्पणियो मे दिया गया है। इनमे उल्लेखनीय डफ कृत 'ए हिस्ट्री ऑव् दि मराठाज' जि० १ (कलकत्ता १९१८), गेरेट कृत 'जयपुर ऑब्जरवेटरी एण्ड इट्स बिल्डर', यूसुफ हुसैन कृत 'दि फर्स्ट निज़ाम' (१९६३ का सस्करण) पी० बी० काने कृत 'हिस्ट्री ऑव् धर्म शास्त्र लिटरेचर' जि० २, भाग २ (पूना, १९४१), के कृत 'ऐस्ट्रोनोमिकल ऑब्जरवेटरी ऑव जयसिह', रे कृत 'ए डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑव नरदर्न इडिया' (अर्ली मिडीवल पीरियड) (कलकत्ता १९३६), रघुबीर सिंह कृत 'मालवा इन ट्राजीशन' (बम्बई, १९३६), 'सरदेसाई कमोमोरेशन वॉल्यूम' (१९३८), के० कानूनगो 'हिस्ट्री ऑव् दि जाट्स' (कलकत्ता, १९२५), वी० एन० रेऊ कृत 'ग्लोरिज ऑव् मारवाड एण्ड दि ग्लोरियस राठोर्स' (१९४३), सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री ऑव् दि मराठा पीपुल' जि० २, (बम्बई, १९४८), डा० मथुरालाल शर्मा कृत 'हिस्ट्री ऑव् दि जयपुर स्टेट' (जयपुर, १९६९), सरकार कृत 'फाल ऑव् दि मुगल एम्पायर', (जयपुर, १९६९), मेलेसन कृत 'एन हिस्टोरिकल स्केच ऑव् दी नेटिव स्टेट्स ऑव् इंडिया' (लन्दन, १८७५), अथर अली कृत 'मुगल नोबिलिटी अडर औरगज़ेब' (बम्बई, १९६६) है। वशावलिया, सेन्सस रिपोर्टस्, गजेटियर्स और इडियन हिस्ट्री काग्रेस की प्रोसीडिंग्ज तथा जर्नल ऑव् एशियाटिक सोसायटी ऑव् बगाल (१८७८, भाग ४) के लेख भी उपयोगी रहे है। इनका टिप्पणियो मे उल्लेख किया गया है।

•••

अनुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	टि० १, २	भा० उ०	मा० उ०
११	१८	परिवार महिलाओ	परिवार की महिलाओ
१३	६	अन्य मन्सकता	अन्यमनस्कता
१५	२१	वदारबख्त	बीदारबख्त
२५	७	यह लीला	इह लीला
२६	टि० १ पक्ति ४	ले आया	ले लिया
,,	टि० २	देखिए, पृ० ।	देखिए पृ० ३६,४२,४३
,,	टि० ३	देखिए, पृ० ।	देखिए पृ० ३३,३४,३६,४३
३४	५	जयसिह का आवेर खालसा करने का आदेश	जयसिह को आंबेर खाली करने का आदेश
३४	१४	तख्त-ए-खा	तख्त–इ–खाँ
३५	१५	दरबार से	दरवार मे
३७	टि० २	मे उद्दत	मे उद्धृत
४०	८–९	छत्रसाल, बुंदेला	छत्रसाल बुंदेला
४०	जयसिह के शाहू के नाम पत्र के लिए ड्राफ्ट खरीता (तिथि का उल्लेख नही है) ज. आ. देखिए ।		
४१	५	अली	खाँ
	७	सैयद हुसैन अली	सैयद हुसैन खाँ
४५	७ (नीचे से)	राव पृथ्वीसिह	रावत पृथ्वीसिह
४६	८ (नीचे से)	अन्त मे	उत्तार मे
४८	६ (नीचे से)	बाबू रामजाट	बाबूराम जाट
५०	१२	महाराणा के पास पत्र	महाराणा के पत्र
५३	१६	टौक	टोंक
५६	२	नियुक्ति	नियुक्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५९	८(नीचे से)	ज़िजिया	जिज़िया
६३	३(नीचे से)	मनब	मनसब
६४	९	आबेर के	आबेर से
६६	९(नीचे से)	राजा जयसिंह	राजा राजबहादुर
६८	४(नीचे से)	संधि ला देगा	संधि लाद देगा
७३	टि० २	पृ० १	पृ० ६७
७८	१५	गाढियों	गढियो
८०	२०	शाही मरातिव	माही मरातिव
८१	३	था जैसा	था। जैसा
८१	४(नीचे से)	प्रक्रिया	प्रतिक्रिया
८४	१४	प्रतिज्ञा	प्रतीक्षा
८६	२९	क्षुब्ध	क्षुद्र
८८	टि० १	इस पत्र के लिए पृ०....देखिए।	इस पत्र के लिए पृ० ९० देखिए।
८९	१२	महलो	महालो
८९	२४	आक्रामन्य	आक्रामक
८९	टि० २	रेड, ग्लोरीज	रेऊ, ग्लोरीज़
९४	२०	राम हुई	रस्म हुई
९५	५	ज़ालिम	सालिम
९६	७	आसिम अली	आलिम अली
९९	१६	सफीखा	खाफ़ी खां
१००	टि० २	बकाया	'वकाया'
	टि० ४	दफ्तर कोमवार	दस्तूर कोमवार
१०४	अन्तिम	याजिद खां	बायाज़िद खां
१०७	टि० ३	आगे देखिए पृ०।	आगे देखिए पृ० १२१–२२
१०८	१६	१९२१	१७२१
१०८	२१	मडोबा	महोबा
११०	१०	देवीसिंह ठठेरा	देवीसिंह धंधेरा
	११	महलो मे	महालो मे
	१२	ढढेरो	धंधेरो
११०	१८	इस छोटी	इन छोटी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११०	२५	नज्मुद्दीन अलीखां, निजावत अलीखां, शाह अली खॉ	नज्मुद्दीन अली खा निजावत अली खा, शाह अली खां
१११	३	लिए लिखवाए	लिए पत्र लिखवाएँ
१३३	७(नीचे से)	निजाम से भट	निज़ाम से भेट
१३७	१२	भावानीराम	भवानीसिंह
१४०	१२	कि सूचना मिली की	को सूचना मिली कि
१४१	टि० ३	सामिमसिह	सालिमसिह
१५०	३	हिगणो	हिंगणे
१६२	८	पुन: श्री	पुन्य श्री
१६५	५(नीचे से)	खण्डपी	खण्डणी
१६८	१३	सादत खां मुहम्मद खां, बंगश	सादत खां, मुहम्मद खा बंगश
१६८	टि० ३	केलनामा	कोलनामा
	टि० ४	१७४ मे	१७४२ मे
१७१	टि० १	स. ७९७	सं० १७९७
१९०	टि० २	परगना मलर	परगना मलारणा
२०९	२	जर्नादन	जनार्दन
२०९	१८	यज्ञोपावीत	यज्ञोपवीत
२१०	१७	विद्याध्यन	विद्याध्ययन
२१०	अन्तिम	थ	तथा
२११	२२	राजनीतिक समस्याओ	राजनैतिक समस्याओ